स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 13, ISSUE- 5 (MAY- 2021) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादक :

कामिनी कौशल

गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

प्रशासनिक सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
6 एच 30, जवाहर नगर,
श्रीगंगानगर-335001 (राजस्थान)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुद्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
बिहार।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	कामिनी कौशल	8–8
2.	अल्पना मिश्र की कहानी 'भय' में प्रेम का कुण्ठित रूप एक वासना के रूप में	कामिनी कौशल	9–12
3.	साहित्य में प्रेम : परम्परा एवं अवधारणा	डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह	13–21
4.	प्रेम की पीर का अमर ग्रन्थ जायसी कृत 'पदमावत'	डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह	22–26
5.	हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष	डॉ. अमनदीप कौर	27–32
6.	सुधा अरोड़ा के साहित्य में नारी चेतना	अनिता कुमारी	33–35
7.	रामायण में प्रेम के विविध स्वरूप	डॉ. अर्चना हजारिका	36–39
8.	मंगलेश डबराल की कविताओं में प्रणय भावना : एक अवलोकन	अरूंधति मोहन	40–42
9.	दलित साहित्य में प्रेम की पुकार	डॉ. आशीष कुमार	43–54
10.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर और प्रेम एक समानता के रूप में	भारती मुण्डा	55–58
11.	खोरठा कहानियों में प्रेम का स्वरूप	भुनेश्वर महतो	59–63
12.	भारत में मीडिया एक सामाजिक सरोकार के रूप में	दिलीप कुमार	64–67
13.	प्रसाद का प्रेम दर्शन : एक पुनर्मूल्यांकन	डॉ. मधु लोमेश	68–71
14.	बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रकृति – विषयक प्रेम	ममता रानी	72–75
15.	'टूटता वहम' कहानी-संग्रह में 'नयी राह की खोज' में सामाजिक चेतना	मनोज कुमार द्विवेदी	76–78
16.	मध्यकालीन काव्य में प्रेम का स्वरूप	डॉ. नागरत्ना एस्	79–83
17.	कलगी बाजरे की : प्रेम और प्रकृति का अटूट संबंध	निरूपमा. यू	84–86
18.	स्वतंत्रयोत्तर भारत के कथा-साहित्य में परिवर्तित ग्रामीण जीवन-मूल्य और सामाजिक आग्रह (संदर्भ सन 1947 से 1972 तक)	प्रीति सिंह, प्रो0 अशोक त्यागी	87–91
19.	लोक चेतना का स्वरूप एवं अवधारणा	राजेश सिंह	92–95
20.	भोजपुरी लोकगीतों में प्रेम-तत्व	डॉ. राम पाण्डेय	96–100
21.	श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रेम का स्वरूप	रमनदीप कौर	101–104
22.	उपन्यास साहित्य में प्रेम के विविध रंग	डॉ. रहिम मिश्रा	105–107
23.	मृदुला सिन्हा के साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप	रीना अग्रवाल, प्रो. दिनेश चंद्र चमोला	108–110

24.	रामायण में प्रेम के विविध स्वरूप	रीनू चतुर्वेदी, डॉ. सनकादिक लाल मिश्रा	111–113
25.	देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों में प्रेम व करूणा	डॉ. रिंकी सिंह	114–118
26.	रामायण में प्रेम के विविध सरूप	रितु चोपड़ा	119–123
27.	खोरठा नाटकों में प्रेम के स्वरूप	संजय रविदास	124–126
28.	मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष	शाहबाज आलम	127–130
29.	मध्यकालीन काव्य में प्रेम के स्वरूप	शाहिद हुसैन	131–134
30	यशपाल के उपन्यास साहित्य में प्रेम का स्वरूप	डॉ. शालिनी माहेश्वरी	135–138
31.	हरिशंकर परसाई की व्यंग्य–रचनाओं में प्रेम के विविध स्वरूप	श्याम लाल, डॉ0 कृष्णा शर्मा	139–145
32.	प्रेम एक सरोकार के रूप में : "सपनों की होम डिलिवरी" के संदर्भ में	डॉ. षीबा शरत.एस	146–148
33.	तुलसीदास के काव्य के प्रमुख संदर्भ और महत्ता	श्यामवीर सिंह	149–152
34.	समाज में नारी एक प्रेम के स्वरूप में	सुभाष कुमार नौहवार	153–155
35.	हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रेम का स्वरूप	सुरेंदर सिंह	156–159
36.	साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप	सुशील कुमार	160–163
37.	प्यार की बदनामी झेलनेवाली अभिशप्त नारी (अल्पना मिश्र की कहानी 'स्याही में सुर्खाब के पंख' के विशेष संदर्भ में)	श्यामलतिका. एस	164–167
38.	रामायण में प्रेम के विविध रूप	डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी	168–172
39.	किन्नर समाज में प्रेम की पुकार	विकास	173–176
40.	पारिवारिक संबंधों में प्रेम एक भावना	डॉ. विनोद श्रीराम जाधव	177–182
41.	आधुनिक समाज और मीडिया विमर्श के आयाम	डॉ. विपिन कुमार वी	183–185
42.	'बिना अभिव्यक्ति के प्रेम' की झलक : 'आओ तनिक प्रेम करें' नाटक के संदर्भ में	डॉ. मंजु रामचंद्रन	186–188
43.	प्रेम संदेश को मजबूत करती भारतीय सिनेमा की फिल्म 'गाइड'	विकास बेरवाल, डॉक्टर सुनैना	189–196
44.	डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कृत 'आनन्द सतसई' में प्रेम के विविध स्वरूपों का चित्रण	डॉ० नरेश कुमार सिहाग	197–200

सम्पादकीय–

प्रेम मनुष्यता की चरम अभिव्यक्ति है। हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में प्रेम का स्वरूप देखा जाता है। एक साहित्यकार इस प्रकृति के हर क्षण–क्षण में प्रेम को खोज ही निकालता है। और हर प्रेम का अपना एक वृहद आकार होता है। प्रेम की परिभाषा उतनी ही पुष्कर है जितनी जगत–नियंता की, तभी तो इस अहसास को बांधने के लिए आदि–अनादि काल से ऋषियों–मुनियों ने अकथ अगोचर, अगम्य, अरूप–सरूप, खरूप सब कुछ कहा और फिर भी कुछ नहीं कह पाए। प्रेम एक ऐसी अनुभूति है कि व्यक्ति लाख–लाख शब्द बनाकर भी इसकी अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से नहीं कर पाता।

एक साहित्यकार ही है जो इस अनुभूति को एक सहज भाव में बांध कर शब्दों में पिरोने का भरसक प्रयास करता है। प्रेम के बिना तो व्यक्ति का जीवन निर्रथक है। समाज का कोई कोना ऐसा नही जहाँ प्रेम वास न करता है और साहित्य तो समाज का ही दर्पण होता है। हिंदी साहित्य जगत तो वैसे भी प्रेम का सागर है।

इन्ही प्रेम के सागर की कुछ बून्दों को हमने इस पत्रिका के इस विशेषांक "हिंदी साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप" में पिरोनो का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक योजना "हिंदी साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप" के रचनाकार्य को आधार बनाकर की गई है।

मैं इस विशेषांक के लिए गुगनराम सोसाइटी प्रबंध समिति एंव समस्त महानुभवों का आभार प्रकट करती हूँ। "हिंदी साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप" पत्रिका के सफल प्रणयन के लिए समस्त सृजनात्मक विद्धानों का धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। जिनका सृजनात्मक सहयोग मुझे देश के विभिन्न राज्यों के शोध आलेख इस अंक के लिए प्रेषित कर मेरा हौसला बढ़ाया है। उसके लिए मैं विद्धानों का सहृदय से आभार प्रकट करती हूँ। हिंदी के अध्येताओ के लिए यह पुस्तक निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है। मैं गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) एवं गिना प्रकाशन भिवानी की हृदय से आभारी हूं जिन्होंने मुझे इस विशेषांक का प्रधान सम्पादक बनने का अवसर प्रदान किया। आशा है सुधी पाठकों के लिए पत्रिका का यह विशेषांक बहुउपयोगी साबित होगा।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

–कामिनी कौशल

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 9-12

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अल्पना मिश्र की कहानी 'भय' में प्रेम का कुण्ठित रूप एक वासना के रूप में

–कामिनी कौशल

शोद्यार्थी–एम0 एम0 एच कॉलिज, गाजियाबाद

प्रेम एक ऐसा अहसास जो शब्दों से बहुत परे है। लाखों ऋषि मुनियों ने व विषय विशेषज्ञों ने इस अहसास को शब्दों में बांधने की बहुत कोशिश की और वर्तमान में भी यह कोशिश निरन्तर चल भी रही है, फिर भी अब तक जितने प्रयास हुए प्रेम की अनुभूति को शब्दों मे पिरोने के लिए वे प्रयास पूर्ण रूप से प्रेम की अनुभूति की अभिव्यक्ति नही दे पाते हैं।

प्रेम एक ऐसा अहसास है कि जब अनुभूति में आए तो उसके लिए कोई शब्द नहीं होतें हैं। यह वह अहसास है जिसके लिए लाख–लाख शब्द बनाकर भी व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति में असमर्थ ही रहता है। प्रेम में प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओं में भिन्न–भिन्न विचारों का समावेश होता है। प्रेम परस्पर व्यक्ति के स्नेह से शुरू होता है। इस स्नेह में व्यक्ति भीतर ही भीतर स्वम् को खुश व बहुत खुश और सुखी होने की प्रवृति का अहसास पाता है। प्रेम शब्द में ऐसी साकारात्मक शक्ति है जिसके प्रभाव में व्यक्ति स्वम् को बहुत अच्छा व प्रसन्न महसूस करने लगता है।

प्रेम तो वेद, वेदान्तकाल से चली आ रही एक अनुभूति है जो परस्पर हृदयों में पलती है। प्रेम इस सृष्टि के हर जीव के हृदय में विराजमान है। यहाँ तक की मनुष्य ही नही पशु पक्षियों को भी प्रेम का पूर्ण अहसास होता है, पशु पक्षियों में भी एक लगाव जैसी प्रवृत्ति पायी जाती है। पशुओं में तो बहुत ज्यादा देखी जाती है तो जब इस अहसास से पशु पक्षी भी न अलग रह पाए तो मनुष्य कैसे इसे बढ़ावा न देगा।

प्रत्येक मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में प्रेम की पराकाष्टा जरूर देखने को मिलती है और ऐसा तो बिल्कुल प्रतित नही होता कि कोई व्यक्ति इस अहसास से बच पाया हो।

अब यदि इस प्रेम जैसे शब्द से बच निकलने का प्रयास करें तो क्या बचा जा सकता है नहीं, क्योकि प्रेम की पहली शुरूआत तो हम अपने माता–पिता से ही करते है। उन रिश्तों से करते है जो हमारे बारे मे भला सोचते हैं जो हमारे जीवन की सही राह व सही भविष्य के निमार्ण के लिए सोचते हैं। हमारे माता–पिता, भाई बहन के साथ–साथ ऐसा कोई भी व्यक्ति जो हमारी भलाई में हमारे साथ हो, हमारी खुशी में खुश हो और हमारे दुख मे दुखी। ऐसे ही व्यक्ति के साथ हम जो कुछ महसूस करते हैं वही प्रेम होता है जो हम अनुभूति करते हैं वही प्रेम है।

अब क्या अनुभूतियों पर किसी का पहरा हो सकता है? क्या अहसास किसी के रोके से इस दुनिया में रूक पाए हैं ? नहीं बिल्कुल नही। मनुष्य के जीवन में प्रेम नाम का आकर्षण किसी के रोके से नहीं रूक सकता चाहे वह माता–पिता से हो भाई–बहन से हो या फिर अन्य स्त्री या पुरूष से।

ऐसे ही प्रेम की अनुभूतियों की पाबंदी हमें अल्पना मिश्र जी की कहानी 'भय' मे देखने को मिली। भय कहानी मे लड़कियों को ऐसी चीजों से सामना कराया गया जिसको देखकर लड़कियाँ प्रेम के सपनें नहीं देखें और किसी वजह से देख भी लें तो देखती हुई सावधान रहें जैसा इस कहानी में दिखाया भी गया है। प्रेम की अनुभूति के साथ–साथ प्रेम का एक दृश्य यह भी दिखाया जिसमें लेखिका की दीदी व माँ लड़कियों को वास्तविक प्रेम के दर्शन कराती है। उनके हिसाब से इस वास्तविक दर्शन में प्रेम की बड़ी दुर्गती होती है। और इसी दुर्गती को समझाने के लिए लेखिका ने सिनेमा का सहारा लिया। फिल्म थी–'प्यार झुकता नही' इसमे हीरो और हीरोइन मिलते है। प्रेम बढ़ता है और इतना आगे पहुँचता है कि शादी भी होती है। परन्तु क्या प्रेम शादी तक ही सीमित है, नहीं। सभी नासमझ लड़कियों को यही दिखलाया जा रहा था कि प्रेम में देखो इस फिल्म की नायिका की पूर्ण रूप से दुर्गति होती दिखाई दे रही है। इस फिल्म की नायिका (पद्मिनी कोल्हापुरे) का मानसिक सन्तुलन तक बिगड़ जाता है। उसका दुःख व तकलीफे खूब बढ़ती हुई दिखाई गई है। इस फिल्म के अन्त तक आते–आते हो तो सबकुछ ठीक जाता है। परन्तु जो दुर्गति नायिका की हुई उसी को केन्द्र में रखकर लड़कियों को ये फिल्म दिखाई गई इनका मानना है कि असल जिंदगी में तो केवल दुर्गति ही देखने को मिलती है।

"सुन्दर सपने देखतीं लड़कियाँ सावधान की गयी। अन्त में प्रेम की जीत हुई यह तो मनगढन्त किस्सा है। असली सार तो वही है, पद्मिनी कोल्हापुरे की दुर्गति। उसके बाद सब कुछ टूट–फूटकर खत्म हो जाता है, असली जिन्दगी में।"[1] सभी लड़कियों ने इस पर पूरा विश्वास किया। इस सीखी हुई शिक्षा को ध्यान में रखा और सराहा और इस शिक्षा को अपने जीवन में उतारा।

क्या वास्तविक रूप में ऐसे प्रयासों से प्रेम पर कोई प्रतिबन्ध लग पाया है? नहीं इस कहानी में भी नहीं, फिर भी ऐसे ही प्रयास का एक और रूप हमें और देखने को मिलता है। ऐसी ही एक फिल्म का और सहारा लिया गया नाम था 'जूली' इस फिल्म को खुद लेखिका की अध्यापिका ने लेखिका की माँ से बच्चो को ये फिल्म दिखाने के लिए कहा। क्योकि इस फिल्म में जूली की बहुत बुरी दुर्दशा दिखाई गई है इनके अनुसार बढ़ती उम्र की लड़कियों को ये फिल्म जरूर दिखानी चाहिए ताकि ये प्रेम के घातक परिणामों को जान पायें। नैतिक शिक्षा लेने के लिए इस फिल्म को देखने के लिए कहा गया। और इसी उद्देश्य से यह फिल्म लड़कियों को दिखायी भी गई।

"देखी जूली की दुर्दशा।" यह कहने की माँ को जरूरत नही पड़ी। यह जूली की ह्रदयविदारक दुर्दशा ही थी जिसके आगे साहित्य में वर्णित सारे प्रेम सन्दर्भ निहायत काल्पनिक, झूठ और खयाली पुलाव मात्र साबित हो रहे थे। यहाँ दुख था और दुख का साक्षात् कारण था। तो माँ के कहे बिना इस फिल्म में छिपी नैतिक शिक्षा को हमने खुद ही ग्रहण कर लिया और माँ के पूछने के पहले ही बताया– "छिः ये लड़कियाँ प्रेम में पड़ती ही क्यो हैं?"[2]

माँ ने बेटी की कही गई बात पर प्रसन्नता प्रदर्शित कि, क्योंकि यही तो वे चाहती भी थी और उन्होने कहा थी कि 'जूली' फिल्म में तो थोड़ा बहुत प्रेम दिखाया भी गया है वास्तविक जीवन में तो ऐसा बिल्कुल नहीं होता और वास्तविक रूप में तो ये होता है। कि पढी–लिखीं लड़कियों को बहला फुसलाकर दिल्ली और बम्बई जैसे जगमगाते महानगरों में ले जाया जाता है। यहाँ पर पढ़ी लिखी लड़कियों पर ज्यादा जोर दिया जा रहा था क्योकि माँ की नजरो में बेटियाँ पढ़ी–लिखी थी और इस लिए भी जोर दिया जा रहा था कि वे स्वम् को एक पढ़ी लिखी कोटी में ही रखें।

"सो हम बहुत भयभीत हुए। कभी रोती हुई जूली हमारे सपनों में आती, तो कभी पढ़ी–लिखी तमाम लड़कियाँ आती–जाती अपनी बेवकूफियों पर पश्चाताप् करती बिलखती।"[3]

वास्तविक रूप में लेखिका इस कहानी में यहाँ तक यही कहना चाह रही थी कि लड़कियों प्रेम से बचो ये वो जंजाल है जिसमे तुम यही फस गई तो तुम्हारा जीवन बर्बादा हो जाएगा केवल दुर्गति और दुर्दशा बचेगी।

"तो निष्कर्ष यूँ निकला कि अच्छी लड़कियों। प्रेम से बचो। प्रेम एक छिछली भावुकता है, जो भविष्य में दुर्गति का कारण बनेगी। कोई सहारा नहीं देगा लड़कियों। इसलिए पढ़ो–लिखो और अपने भीतर के सहज आकर्षण को दबा डालो। लड़कियों! ध्यान से सुनों!"[4]

क्या भावुकता किसी से छीपी है? क्या भावनाएं किसी से दबी है? भय कहानी में लड़कियो की माँ इसी भाव को दबाने की बात करती है। और दबा डालने को कहती है। अपने भीतर के आकर्षण को जो कि असम्भव है। क्योकि कोई भी व्यक्ति अपने मन के भीतर की भावनाओं को यदि दूसरे के दबाब से दबाता है। अपनी भावनाओं को कुचलता है। तो ये तो एक शोषण हुआ, स्वम् अपने भीतर की इच्छाओं का, भावनाओं का शोषण। वे स्वम् जो चाहे ऐसा कुछ तो कर ही नही सकती।

"जब तक माँ–बाप कहें, पढ़ो, जब पढ़ाई बन्द करने को कहे, बन्द करो, जिसके साथ कहें, उसी के साथ जाओ। जिससे प्रेम करने को कहे, उसी से प्रेम करो।"[5]

इस कहानी में लेखिका अपनी इच्छाओं को प्रदर्शित करने पर बल नहीं देती, बल देती है। इच्छाओं को दबाने पर, बल देती है मन की बात न सुनने के लिए।

परन्तु प्रेम जैसी अकाक्षां किसी से छिप पाई है। प्रेम जैसा आकर्षण किसी के रोके से रूक पाया है। नहीं जैसा कि इस कहानी में प्रेम का एक विचित्र सा आकर्षण देखा गया और ये आकर्षण माँ के लाख–लाख प्रयासो के बाद भी नहीं रूक पाया।

इस धरा की किसी भी चीज़ को एक निश्चित समय तक ही दबा सकतें है। एक सीमा तक ही रोक सकतें है, जब ये दबाब जरूरत से ज्यादा हो जाता है तब ये एक दूसरा ही रूप ले कर सामने आता है वायु हो या जल प्रेम हो या आकर्षण जब जरूरत से ज्यादा दबाया जाता है तब एक नया रूप धारण करके एक सैलाब बनकर सामने आता है।

जैसा कि 'भय' कहानी में देखा गया दबा हुआ कुण्ठित प्रेम एक वासना बनकर सामने आता है। "प्रेम अंतर्मन की अभिव्यक्ति और अनुभूति है। प्रेम और वासना में वही फर्क है, जो कंचन और कांच में होता है। यदि हम प्रेम और वासना को एक साथ जोडकर देखें तो हमारा नुकसान हो सकता है, क्योकि तब प्रेम का अर्थ बदल जाएगा। यदि हम प्रेम की परिभाषा वासना की दृष्टि से करें, तो हमारा सारा आध्यात्मिक प्रेम नष्ट हो जाएगा। प्रेम का संबंध अध्यात्म, अंतर्मन और हृदय से है, जबकि वासना का संबंध हमारे बाहरी शरीर से होता है।"[6] और यही वासना का रूप देखने को मिला, हमें अल्पना मिश्र जी की कहानी 'भय' में।

इस लड़की का नाम था 'मृणाल' और रही बात आकर्षण की तो और किसी से नही अपनी ही चाची के बेटे विनय से। कमरे मे दोनो अकेले है। मृणाल के मन में कभी जूली आ रही थी तो कभी पद्मिनी कोल्हापुरे की रोती हुई आखें। मृणाल के मन में अपनी माँ द्धारा किए गए भरसक प्रयास धूम–धूम कर सामने आ रहे थे इतना सब जानते हुए भी न वो खुद को रोक पाई और न ही विनय को। बहुत–बहुत चाहते हुए भी वह इस दबा हुआ प्रेम जो कि वासना बन चुका था से बच नही पा रही इस आकषर्ण को दबा नही पा रही दोनों ही एक दूसरे के करीब और करीब आते चले गये। "अनन्त बेचैनियों में काँपती मैं उठ गयी। विनय भी उठ गया, कि बिल्कुल नाउम्मीदी में विनय ने अपने होंठ मेरे होंठों पर रख दिये।"[7]

घर, परिवार, समाज चाहे जितनी कोशिश कर ले परन्तु फिर भी प्रेम जैसे भाव, प्रेम जैसा आकर्षण किसी के दबाएं से नही दबता हाँ यह जरूर है कि यह रूप बदल–बदलकर सामने आता है कभी प्रेम, कभी आकर्षण तो कभी वासना यहाँ तक कि स्वम् भी व्यक्ति इस आकर्षण के बहाव से बच नही पाता है। मृणाल और विनय के बीच भी ऐसा ही कुछ पसरा हुआ था ऐसा ही भाव था फिर ऐसा ही आकर्षण था फिर कहे कि यही वह भाव है। जिसके लिए कोई शब्द नही

रचा जा सका।

"यह वह क्षण था, जिसके लिए लाख–लाख शब्द बनाकर भी मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति की शक्ति में असमर्थ रह गया था, कि यह वही क्षण था, जिसके लिए तमाम शोध के बाद भी ऋषियों, मुनियों ने अकथ, अगोचर, अगम्य, अरूप–सरूप खरूप, सब कुछ कहा और कुछ भी नही कह पाये। यह वही क्षण था, जो इतना चुपचाप चला आता है कि हम संभले।"[8]

यही है प्रेम की अनुभूति, जो लाख–लाख कोशिशों के बाद भी स्वम् के दबांए भी नही दबती, प्रेम तो एक बहाव है। एक स्नेह है और बहाव तो किसी के रोके से रूका ही नही है। हाँ इतना जरूर है कि रोकने से यह एक भयानक रूप बदलकर एक कुण्ठित रूप लेकर सामने आता है यही कुण्ठित रूप मृणाल में देखने को मिला। उसकी माँ के हजार–हजार कोशिश करने के बाद प्रेम तो दब गया परन्तु उसने मृणाल के हृदय में, मस्तिष्क में एक वासना का रूप ले लिया जो एक सैलाब बनकर विनय के सामने बिखर गई।

सन्दर्भ सूची :-

1. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 39, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
2. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 39, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
3. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 40, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
4. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 40, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
5. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 41, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
6. https://www.jagran.com
7. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 41, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली
8. अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त, भय पृष्ठ संख्या– 38, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 13-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में प्रेम : परम्परा एवं अवधारणा

–डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह

असि. प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, फ़ीरोज़ गाँधी कालेज रायबरेली (उ.प्र.)

सामाजिक विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ एवं असमानताएँ समय के साथ–साथ बढ़ती ही जा रही हैं। "सामाजिक स्तर पर मात्र औपचारिकता तथा व्यक्तिगत स्तर पर स्वार्थ ने मनुष्य को स्वापेक्षी बना दिया है। स्वार्थ से, लिप्तता की भावना से, कामवासना से और जीने की असहज गति से मनुष्य व्यथित है। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थ, प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ और आचार–प्रणालियाँ, इन परिस्थितियों से मनुष्य को बचाने में अक्षम हो रही हैं।"[1]

वैसे यह सच है कि – "प्रेम मानव हृदय की शाश्वत अनुभूति है। मानव मात्र को परस्पर एकसूत्र में बाँधने वाली भावना प्रेम है। निःस्वार्थ व निष्पक्ष भावना प्रेम है। यह भावना प्रीति की तृप्ति देने वाला आनन्द है। व्यावहारिक स्तर पर यह भावना लौकिक होते हुए भी आत्मिक स्तर पर अलौकिक है, आध्यात्मिक है। इस शाश्वत भावना की अभिव्यक्ति प्रत्येक काल, प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा में है। प्रेम आन्तरिक हृदय की अनुभूति है। जीवन के भावात्मक सूत्रों का निगूढ़ निदर्शन है। इसे विचारात्मक बन्धन में बाँधने पर इसकी मधुरिमा क्षीण हो जाती है। वाणी इसकी अनुभूति का बखान नहीं कर सकती, बुद्धि इस पर विचार व्यक्त नहीं कर सकती फिर भी प्रेम की अनुभूतियाँ, झंकृतियाँ अभिव्यक्ति पाकर अपना हृदय निदर्शन कर देती हैं। प्रेम इतना गहन और विशाल भाव है कि सृष्टि की समस्त क्रियाएं–प्रतिक्रियाएं तथा भावात्मक सरणियाँ इसमें लीन हो जाती हैं। जिस प्रकार शक्ति, ज्ञान आदि का सौन्दर्य उनके ऊपर उठने में है, उसी प्रकार प्रेम की पराकाष्ठा आत्मा में पर्यवसित होने में है। प्रेम स्वतः विभासित सौन्दर्य है जिससे किरणें फूटकर जीवन–जगत और विचार लोक के तत्त्वों को प्रकाशित करती है, प्रेम ही जीवन की चरम उपलब्धि है।"[2]

"प्रेम की अनुभूति चिरन्तन है, सनातन है। सृष्टि के आरम्भ के साथ ही इसका जन्म हुआ है। समय–समय पर इस प्रेम–सरणि से विविध धाराएँ, विविध रूपों में प्रवाहित हुई हैं। साहित्य समाज का प्रतिफलन है। अतएव समाज के इस अनिवार्य और महत्वपूर्ण रूप का, साहित्य में किसी न किसी रूप में वर्णन होता ही है।"[3] इस सर्वव्यापी और सार्वजनीन भाव की परम्परा भारतीय साहित्य में वैदिक काल से चलकर सतत् प्रवाहमान है जिसे निम्न खण्डों में विभक्त कर देखा–समझा जा सकता है –

1. वैदिक साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा
2. महाभारत व रामायण में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा
3. पुराण काल में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा
4. संस्कृत साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा
5. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा
6. हिन्दी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(क) आदिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(ख) भक्तिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(1) निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(2) निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(3) सगुण कृष्णाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(4) सगुण रामाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(ग) रीतिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(घ) आधुनिक काल के साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(1) भारतेन्दु युगीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(2) द्विवेदी युगीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(3) छायावादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(4) प्रगतिवादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(5) प्रयोगवादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(6) नई कविता में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

(7) समकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा

1. वैदिक साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

वैदिक साहित्य में प्रेम शब्द का प्रयोग न होने पर भी 'प्रिय', 'प्रिया', 'प्रेम', 'प्रेष्ठ' जैसे शब्द मिल जाते हैं जो इस भाव को व्यक्त करते हैं। ऋग्वेद में विवाह–बन्धन की पवित्रता तथा दाम्पत्य भाव एवं तन–मन का समर्पण भाव भी वर्णित है–"माँ विघ्न परिपन्थिनों य आसीदन्ति दम्पती सुगेर्भिदुर्गमतीताम्।"[4] यजुर्वेद में "मानवीय स्तर पर प्रेम भावना तथा सद्भावना मिलती है।" [5] अथर्ववेद में प्रेम केवल दाम्पत्य जीवन तक सीमित नहीं है, वरन् पारिवारिक और सामाजिक जीवन के प्रेम का आह्वान भी है।"[6] वैदिक साहित्य में प्रेम का नैतिक, संयमित तथा प्रवृत्तिमय रूप मिलता है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में पुरूरवा–उर्वशी आख्यान, वृहदारण्यक में च्यवन, भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान तथा उपनिषदों में ज्ञान और दर्शन का भण्डार है जिसमें प्रेम के साथ–साथ निवृत्ति का प्रचार किया गया है। वैदिक काल में प्रेम पारिवारिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर जीवन का उन्नायक और प्रेरक बन गया था।

2. महाभारत व रामायण में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

"महाभारतीय समाज में स्वच्छन्द प्रणय भावना का उन्मीलन प्रथम बार मिलता है। इस काल में प्रेम के क्षेत्र में जाति, कुल, वर्ण और लोक–मर्यादा का विचार शिथिल पड़ गया था। विवाह में आर्य–अनार्य का भेद नहीं रहा था, सौन्दर्य ने अधिक महत्व प्राप्त कर लिया था।"[7] महाभारत काल में प्रेम की स्वच्छन्दवृत्ति देखने को मिलती है। "बाल्मीकि रामायण का उद्भावन ही क्रौंच–प्रेमी युगल की वेदना के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है" – मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम् गमा शाश्वती समा। यत्र क्रौञ्च मिथुनादेखमवधी काममोहितम्।"[8]

3. पुराण-काल में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

पुराणों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'भागवत पुराण' में कृष्ण से सम्बन्धित कथाओं में 'वेणु गीत', 'मुरली महिमा', 'रासलीला' जैसी प्रेम–कथाओं को भक्ति से सम्बन्धित कर दिया गया है। पद्म पुराण में रामकथा और शकुन्तला की प्रेमकथा द्वारा प्रेम की उपासना पर बल दिया गया है। वामन पुराण में वामन भगवान की कथा के अतिरिक्त शिव–पार्वती के विवाह के माध्यम से प्रेम का चित्रण है। पुराण–काल में देवताओं के सन्दर्भ में भी प्रेम की महिमा का गान किया गया है। देव युगलों की समर्पणवृत्ति मानव के लिए प्रेरणास्रोत बनी।

4. संस्कृत साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :–

संस्कृत साहित्य की आरम्भिक स्थिति के समय तक हमें प्रेम की एक सुविकसित परम्परा मिलती है परन्तु उनमें अलौकिक भाव की ही प्रधानता रही है। संस्कृत के प्रथम महाकाव्यकार अश्वघोष के काव्य 'सौन्दरनन्द' तथा 'बुद्धचरितम्' में बौद्धमतों की स्थापना की सा प्रेम की संयोगात्मक–वियोगात्मक स्थितियों का चित्रण हुआ है।

कालिदास की रचनाओं ' 'मेघदूत', 'कुमारसम्भव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम', 'रघुवंश' और विक्रमोर्वशीयम्' में प्रेम का स्वस्थ उपभोग और प्रेम की गरिमा नाना रूपों में चित्रित है।"[9] "कालिदास की रचनाओं में प्रेम का चरमोज्ज्वल रूप मिलता है।"[10] माघ के 'शिशुपाल वध', श्रीहर्ष की 'रत्नावली', 'नागान्द' तथा 'प्रियदर्शिका' में भी प्रेम की उपासना है। 'नैषधीय चरित्रम्' में नखशिख वर्णन व प्रेम का स्थूल चित्रण है। भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम' में प्रेम की एकनिष्ठता तथा लोकोत्तर भावना स्थापित है। 'अमरूक शतक' में प्रेमी–हृदयों का उल्लास, हर्ष, वेदना सभी चित्र देखने को मिलते हैं।[11]

'आर्यासप्तशती' में भी श्रृंगार का संयोग–वियोग पक्ष, नागरी और ग्रामीण स्त्रियों की श्रृंगारिक चेष्टाएँ अंकित हैं। संस्कृत साहित्य के भक्तिसूत्रों में शिव–पार्वती, राधा–कृष्ण आदि की भक्ति कोटि तक पहुँची हुई श्रृंगारिक लीलाएँ स्वस्थ रूप में मिलती हैं। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' में भी श्रृंगार की विविध प्रेम लीलाएँ वर्णित है।" गीत गोविन्द की राधा का प्रेम निश्छल और अहेतक है। वह कृष्ण की पूर्ण गरिमा के साथ व्यक्त हुआ है।[13]

5. प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :–

विक्रम संवत प्रथम शतक की प्राकृत भाषा की अनेक गाथाओं में से सात सौ को चुनकर गाहासप्तशती या गाहासतसई के नाम से राजा हाल ने संग्रहीत किया जिसमें लौकिक जीवन का प्रेम चित्रित है। प्राकृत में स्वस्थ पारिवारिक एवं सामाजिक प्रेम भावना मिलती है।

इस काल में 'विलासवई कहा' तथा 'भविसयत्त कहा' में लौकिक प्रेम कथाएँ है। अब्दुल रहमान का 'संदेश रासक' विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान काव्य है। इसमें "हृदय की संवेदनशीलता, लौकिक प्रेम की एकनिष्ठता आदि को योगी की साधना के समकक्ष पहुँचाया है।" इसी प्रकार 'ढोला मारू रा दुहा' तथा 'नेमिनाथ चउपाई' भी विप्रलम्भ प्रधान काव्य है। मारवणी के ढोला के प्रति भेजे गए प्रेम सन्देश अति मार्मिक तथा गहनानुभूति से युक्त हैं।"[15] 'सिरिथूलिभद्रफागु' व 'वसन्तविलास फागु' में भी प्रेम चित्रण है। अपभ्रंश साहित्य में प्रेम की लौकिकता पर अलौकिकता की विजय दिखाने का प्रयास है।

6. हिन्दी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :–

"हिन्दी साहित्य में यह प्रेमधारा ठीक उसी प्रकार चली आई जैसे कि अपभ्रंश में थी। अपभ्रंश काल के रासो ग्रन्थों की परम्परा हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में मिलती है। अपभ्रंश काल की काव्य रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, रूप वर्णन, बारहमासा, प्रेम का वासनामय व पवित्र चित्रण हिन्दी में और अधिक निखर कर प्रस्तुत हुआ। हिंदी साहित्य के विविध कालखण्डों में प्रेम की की परम्परा एवं अवधारणा दृष्टव्य है।

(क) आदिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :–

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में खुमान रासो, पृथ्वीराज रासो, जयमयंक रास चंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ तथा विद्यापति पदावली जैसी रचनाओं में प्रेम का चित्रण है। नरपति नाल्ह के वीसलदेव रासों में प्रेम के संयोग विप्रलम्भ के अनेक चित्र है। इसमें रूठी हुई रानी राजमती की परदेश गये पति के प्रति प्रेम की कथा है। बारह वर्ष की प्रतीक्षा, बारहमासा–प्रेम संदेश व पुनर्मिलन अद्‌भुत है।"[16] चन्दरबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' में वीर तथा श्रृंगार का अद्‌भुत मिश्रण है। इसी कालखण्ड में विद्यापति की सरस पदावलियाँ है जिनमें प्रेम व श्रृगार की अद्‌भुत छटा है।"[17] हिन्दी साहित्य

के आदिकाल में श्रृंगार और वीर एक साथ पनपे हैं।

(ख) भक्तिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

भक्ति का प्रेम तत्त्व कामगन्धहीन तथा अहेतुक होता है। इस प्रेम में प्रभु के प्रति आत्म समर्पण मुख्य होता है। "भक्ति का नाम ही प्रेम रूपा है। "सा तस्मिन परम प्रेमरूपा अमृतारूपा च।"[18] भक्त को सभी प्रेममय लगता है गुण–अवगुण का ध्यान नहीं मात्र प्रेम ही प्रेम रमता है। आत्मरति का विरोधी अनुराग भक्ति है – "आत्मरत्याविरोधे नेति"[19] नारद भक्ति सूत्र के अनुसार ग्यारह आसक्तियाँ लौकिक स्तर पर प्रेम की विविध अवस्थाएँ हैं – 1. महात्म्यासक्ति 2. रूपासक्ति 3. पूजासक्ति 4. स्मरणासक्ति 5. दास्यासक्ति 6. सख्यासक्ति 7. कान्तासक्ति 8. वात्सल्यासक्ति 9. आत्मनिवेदनासक्ति 10. तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भगवदप्रेम की उत्तरोत्तर अवस्थाएँ हैं। भक्तिकालीन साहित्य की विविध काव्य धाराओं में प्रेम की परम्परा व अवधारणा भी दृष्टव्य है।

(1) निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

निर्गुण भक्त कबीर की भक्ति क्रान्तिकारी विचारों से समन्वित होते हुए भी प्रेममय रूप, प्रेम की पीर और कान्ताभाव से समन्वित है। "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ। पण्डित भया न कोय। एकहि अक्षर प्रेम को पढ़ै सो पण्डित होय।" यथा – "हरि मेरा पीव भाई/हरि मेरा पीव। तथा "दुलहिन गावौं मंगलाचार" आदि। इसी प्रकार उनमें वात्सल्याभक्ति – "हरि जननी मैं बालक तोरा।" कबीर ने 'विरहा है सुलतान' कहकर इसी प्रेम को वाणी दी है तथा दास्य भक्ति – "कबीर सुता राम का मुतिया मेरा नाऊ" कहा है।[20] दादूदयाल के प्रेम में आत्मसमर्पण का भाव अधिक है। पंजाब के संत कवियों में भी प्रेम का तत्त्व निहित है।

(2) निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

सूफी कवि मुल्ला दाउद कृत चांदायन में लोरिक चंदा की प्रेमकथा का ही वर्णन है। चांदायन में चांदा श्रृंगार वर्णन खण्ड में चांदा के रूप की प्रशस्ति बड़ी मनोरम है। वैसे यह तो पूरा महाकाव्य ही प्रेमाधारित है। 'चांदा लोर पुनदर्शन खण्ड' में मुल्ला दाउद कहते हैं –

"सुरजि रइनि महिं गएउ लुकाई। चंद्र जोति निसि आगे आई।
खोलिनि नीरू वारि सिर पिया। मकु मोहि महं लारिकु सिया।।"[21]

प्रेम के पीर के सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी 'पदमावत' में पदमावती के सौन्दर्य का अलौकिक चित्रण करते हैं वहीं नागमती के विरह वर्णन को बारहमासा के माध्यम से व्यक्त करते हैं। यथा –

"कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
अबहुँ बेलि पुनि पलुहै, जौं पिउ सींचै आई।।"[22]

इसी प्रकार वे कहते हैं –

"मानुष प्रेम भयउ बैकुण्ठी नाहित काह छार एक मूठी।।"
भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला।।

जायसी ने रानी व नागमती के विरह–वर्णन के माध्यम से वियोग का जो वर्णन किया है वह अनेक खूबियों के कारण पूरे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है।"[23] इसके अतिरिक्त कुतुबन की 'मृगावती', मंझन की 'मधुमालती' में भी भारतीय प्रेम कथाएँ अपने उदात्त रूप में चित्रित हैं।

(3) सगुण कृष्णाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

हिंदी कृष्ण काव्य परम्परा में तो मुख्य रस ही श्रृंगार है। 'अष्टछाप' के कवियों में सढयभाव है जिसके चित्रण में माधुर्य की प्रधानता के कारण श्रृंगार का चित्रण अनिवार्य हो गया। चैतन्य सम्प्रदाय में गोपीभाव से कृष्ण के प्रति

अनुरक्ति व्यक्त की गयी है। सखी सम्प्रदाय में अधिक श्रृंगारिक चित्रण है क्योंकि यहाँ कृष्ण बाल–गोपाल न होकर सतत् केलि में रत हैं। वात्सल्य सम्राट महाकवि सूरदास की रचनाओं में गोपियाँ पवित्र भाव से मग्न हो कृष्ण सौन्दर्य में खो जाती हैं। यहाँ राधा–कृष्ण का प्रेम बचपन से पल्लवित होकर शैशवावस्था से युवावस्था को प्राप्त हुआ है उनकी प्रेम आतुरी इतनी है कि कृष्ण राधामय और राधा कृष्णमय हो गयी है। यथा – राधा–माधव, माधव–राधा, कीर–भ्रम गति होई जो गई।।"[24] "बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजे/जे वैलता लगति तन शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुजैं।।"[25] "मधुकर! स्याम हमारे चोर/मन हरि लियो माधुरी–मूरति चितै नयन की कीर/पकर्यो तेहि हिरदय उर अंतर प्रेम–प्रीति के जोर।।" गए छड़ाय छोरि सब बंधन दे गये हंसनि अकोर। सोवत ते हमउ चकि परिहैं दूत मिल्यों मोहि भोर।। मूर स्याम मुसकनि मेरो सर्वस लै गए नंद किशोर।।"[26] हिंदी के पहले कवि सूरदास हैं जिन्होने भागवत के भ्रमर गीत प्रसंग को लेकर रचना की है।

इसी परम्परा में नंददास ने 'भंवरगीत' लिखा है। नंददास में सगुण प्रेम की महत्ता, आराध्य के प्रति निश्छल प्रेमभाव है –

प्रेम प्रेम सों होय, प्रेम सो पारहिं जैसे/प्रेम बन्ध्यों संसार प्रेम परमारथ पैहें/एकै निश्चय प्रेम को जीवन्मुक्ति रसाल/सांचो निश्चय प्रेम को जाते मिलैं गोपाल।"[27] नंददास के भंवरगीत में गोपियों की उलाहने खूब हैं – "कोई कहै री सुनौ और इनके गुन आली/बलि राजा पै गये भूमि मांगन बनमाली। मांगत बामन रूप धरि नापत करी कुदांव/सत्य धर्म सज छांड़ि कै धर्यौ पीठ पै पाँव/लोथ की नाव पै।"[28] स्वामी हरिदास के राधा–कृष्ण भी प्रेमरस में ही निमग्न रहते हैं।

(4) सगुण रामाश्रयी शाखा में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

सगुण राममार्गीय कवियों का प्रेम–वर्णन मर्यादित और संयमित रहा है। गोस्वामी तुलसीदास के राम और सीता तथा अन्य युगल पात्र भी शालीन प्रेम और सत्वागुण प्रेम से युक्त हैं। तुलसी के राम और सीता प्रेम के आवेगों में भी मर्यादा बनाये रखते हैं यथा – "राम को रूप निहारति जानकी/कंकण के नग की परिछांही/तौ सबै सुधि भुलि रहीं, कर टेकि रहीं पल टारत नाहीं।।" इस परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट मत है कि– "रामहिं केवल प्रेम पियारा/जान लेहुं जो जाननिहारा।।" इसी परिप्रेक्ष्य में देखें मानस की यह पंक्तियाँ– "करहि आरती बारहि बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा।।/भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावर अगनित भाँती।।"[29]

मीराबाई की मधुराभक्ति नारी के प्रेम का अनन्य भाव है। प्रियतम कृष्ण की रूप–माधुरी पर मुग्ध मीरा उनके प्रति पूर्णतः समर्पित हैं – मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई" विरह से प्रारम्भ होकर विरह में ही समाप्त हो जाने वाली यह प्रेम भावना अद्वितीय है।"[30] सम्पूर्ण भक्तिकाल में स्वान्तः सुखाय के साथ मानवता का व्यंजक स्वर है जिसमें हृदय की पवित्रता पर बल दिया गया है। इनकी प्रेमानुभूतियाँ अति प्रगाढ़ व दिव्यानुभूतियों से युक्त है।

(ग) रीतिकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :-

प्रेम की एकनिष्ठा व पवित्रता रीतिकालीन साहित्य में आकर विलासिता और कामलिप्सा में लिप्त हो गयी। कविगण आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के चक्कर में नारी के वाह्य स्थूल चित्रण में उलझ कर रह गये – आगे के कवि रीझिहैं तौ कविताई/न तु राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है।" यहाँ प्रेम केवल काम बनकर रह गया। जहाँ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में मांसलता के चित्र उभरे हैं वहीं रीतिमुक्त कवियों ने आंतरिक सौंदर्य को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। रीतिकालीन कवियों का रूप वर्णन व विरह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। बिहारी–"कहत नटत रीझत खिलत, मिलत खिलत लजियात। भरे भवन में करत हैं नैननि ही सौं बात।।" कहते हैं। रीति परिपाटी पर केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम, चिन्तामणि, पदमाकर, गंग आदि हैं। वहीं रीतिमुक्त परम्परा में आलम, बोधा, घनानंद, ठाकुर आदि का काव्य

अपनी प्रेम श्रेष्ठता को ही दर्शाता है।

रीतिमुक्त कवियों ने – "यह प्रेम को पंथ कराल महां/तलवार की धार पै धावनो है।" लिखा है।

"अति सूधो सनेह को मारग हैं जहां नेकु सयानय बांक नहीं" यहीं कविता में व्यक्त हुआ है। एकपक्षीय प्रेम की पीर का जैसा वर्णन यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। ये कवि प्रेम में चतुराई को जरा भी स्थान नहीं देते। बोधा कहते हैं – "हमको नहचाहै कि चाहै नहीं, हम चाहिहै वाहि विथा हरहैं।" आलम कहते हैं – "आनन्द अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान, कै यह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान।।"

वहीं इस कालखण्ड के रसखान एक ऐसे कवि हैं जिन्होने प्रेम पुष्पों की प्रेम वाटिका से चुन–चुनकर माला पिरोई है। कृष्ण के प्रति रसखान की भक्ति प्रेमनिष्ठ है। रसखान निष्काम प्रेम को महत्व देते हैं। वे प्रेम से ही प्रेम की उत्पत्ति मानते हैं तथा प्रेम के विस्तार का क्षेत्र भी प्रेम को ही मानते हैं – "जाते उपजत प्रेम सोई, बीज कहावत प्रेम/जामें उपजत प्रेम सोई, क्षेत्र कहावत प्रेम।।/जातें पनपत, बढ़त अरु, फूलत फलत महान/सो सब प्रेमहि प्रेम यह, कहत रसिक रसखान।।"[31] रीतिकाल स्थूल प्रेम का संस्पर्श लिए हुए है। जिसमें प्रेमभावों के दमन का कुचक्र नहीं है अपितु श्रृंगारिक वृत्तियों की खुली धूप है।

(घ) आधुनिक काल के साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :–

आधुनिक काल में प्रारम्भ में श्रृंगार का रूप भक्ति के भाव में ब्रजभाषा के माध्यम से प्रकट होता रहा। कालान्तर में भाषा ब्रज से खड़ी बोली तथा भाव भक्ति श्रृंगार से देशप्रेम और मानवता में परिवर्तित होता गया। आधुनिक काल के विविध कालखण्डों में प्रेम की परम्परा एवं आवधारणा दृष्टव्य है।

(1) भारतेन्दु युगीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :– भारतेन्दु काल में अतीत के गौरव गान ने वर्तमान की प्रेरणा बन कवियों की वाणी से गूँजना प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नीलदेवी में लिखते हैं –"कहां करुणानिधि केशव पिए। जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोए"[32] 'सत्य हरिश्चन्द्र में लिखते हैं – "चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार। पै हद श्री हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार।।"[33] वहीं 'चन्द्रावली' नाटिका में भारतेन्दु की ब्रजमाधुरी का लालित्य प्रेमभाव की उत्कट अभिलाषा, विरहोन्माद की विकटता का सजीव दृश्य स्थापित करती है – दोनो नीकै निररवि निहारि रैन अरि को फल आजु लहौरी।/जुगल रूप छवि अमित माधुरी रूप–सुधा–रस सिन्धु बहौरी।"[34] भारतेन्दु ने प्रेम की महत्ता का चित्रण इस नाटिका में विस्तार से किया है। 'सती प्रताप' ने भारतेन्दु जी जय–जय सावित्री महरानी।/प्रेममयी निजु पति के पद में छाया सी लपटानी।/सती मंडली भूषण है, है इनकी प्रेम–कहानी।"[35] लिखते हैं। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र देशवासियों के प्रति अपने प्रेम को दर्शाते हैं – रोअहुं सब मिलिकै आवहु भारत भाई।/हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"[36] कोउ न पकरत मेरो हाथ।/बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ।"[37]

'अंधेर नगरी' प्रहसन भारतेन्दु ने बनारस में नेशनल थियेटर के लिए एक दिन में 1881 में लिखा था जो काशी के दशाश्वमेघ घाट पर उसी दिन अभिनीत भी हुआ था। इस प्रहसन से प्रचलित हुआ – "अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।"[38] भारतेन्दु युग में हरि के स्थान पर हरिजनों से प्रेम करना सिखलाया गया। भारतीय संस्कृति का प्रेम पनप कर साहित्य में अवतरित हुआ।

(2) द्विवेदी युगीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :– युग प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस युग में नैतिकता पर इतना अधिक जोर दिया कि सरस श्रृंगार का पूर्णतः बहिष्कार कर दिया गया फिर भी 'जगन्नाथ दास रत्नाकर' का ब्रजभाषा काव्य 'उद्धवशतक', वियोगी हरि का 'प्रेमशतक', प्रेम पथिक महत्वपूर्ण हैं। वहीं मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' उर्मिला के विरह–वर्णन की अनुपमेय कृति है। यहाँ सखि दीपक भी जलता है और पतंगा भी जलता

है–दोनों ओर प्रेम पलता है कहा गया है। देखे–मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,/जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप।।/आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग्य/हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।।"[39] 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया' में भी प्रेम का उदात्त रूप चित्रित है। हरिऔध जी कृत 'प्रियप्रवास' में राधा–कृष्ण का रूप लोक सेविका व लोक सेवक का है। उनका प्रेम अपने विरह के रुदन विलाप को छोड़कर जनहित में लगा हुआ है। द्विवेदी युगीन साहित्य में प्रेम जनजीवन से चलकर राष्ट्रव्यापी हो गया।

(3) छायावादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :- द्विवेदीयुगीन अतिनैतिकतावादी प्रवृत्ति को छायावादी साहित्यकारों ने नकार दिया। इस दौर में सबसे पहले क्रांतिकारी कवि महाप्राण 'निराला' हुए जिन्होने 'जूही की कली' लिखकर बिगुल बजा दिया–विजन वन वल्लरी पर सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न जूही की कली शिथिल पत्राक में दृग बन्द किये।"[40] इसके साथ ही जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा आदि कवियों ने स्वीकारोक्ति दे दी। प्रेम की पवित्र गंगाजल सदृश धारा को इन कवियों ने अपनाया। प्रसाद जी 'प्रेम पथिक' में लिखते हैं – प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा।/तब तुम प्रियतम स्वर्गे–बिहारी होने का फल पाओगे।।"[41]

प्रसाद जी कृत 'आँसू' में इसका चरमोत्कर्ष दिखता है–जो घनीभूत पीड़ा सी मस्तक में स्मृति सी छाई। दुर्दिन में आँसू बनकर आज बरसने आई।।" कामायनी में प्रसाद जी श्रद्धा–मनु के माध्यम से उदात्त प्रेम का चित्रण करते हैं–

"हे अनन्त रमणीय! कौन तुम?/यह मैं कैसे कह सकता हूँ।"
समर्पण लो सेवा का सार/सजल संस्मृति का यह पतवार।
आज से यह जीवन उत्सर्ग/इसी पद तल में विगत विकार।।[42]

महाप्राण 'निराला' की प्रारम्भिक रचनाओं–'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका' आदि में प्रेम व श्रृंगार की भावनाएँ चित्रित हैं वहीं परवर्ती ग्रन्थों–'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' में यह स्वर मंद पड़ गया है। रेखा, शेफालिका, जूही की कली, मौन रही हार आदि कविताओं के प्रेम की परिव्याप्ति है। प्राणधन को स्मरण करतें (गीतिका), विफल वासना, स्मृति चुम्बन (परिमल), वे गए असह दुःखभर आदि कविताओं में विरह–वर्णन का चित्रण महाप्राण निराला जी ने दिया है।

महीयसी महादेवी वर्मा की प्रेमानुभूति अलौकिक है। उनकी प्रणय साधना में लौकिकता है ही नहीं। उनकी 'नीहार' में प्रेमास्पद का आकर्षण, पीड़ा की अनुभूति है। 'रश्मि' में प्रेम का दार्शनिक रूप, 'नीरजा' में विरह–वेदना, 'सान्ध्य गीत' में आत्मदृष्टि, 'दीपशिखा' में प्रेम साधना की गति का स्वस्थ प्रवाह दिखता है। "मैं नीर भरी दुःख की बदली" व युग–युग प्रतिपल प्रतिक्षण प्रियतम का पथ आलोकित करने की दृष्टि महादेवी वर्मा जी की ही रही है। 'वे अपने को उस चिरन्तन का अंग मानती हैं।"[43] प्रेम व मस्ती का काव्य लिखने वाले हरिवंश राय बच्चन जी का 'मधुकलश', 'मधुबाला' और 'मधुशाला' महत्वपूर्ण है। इन संग्रहों में अल्हड़पन व मदिरा की मस्ती व मर्माहत की पीड़ा है। छायावादी कविता में अतीन्द्रियता का रूप व पारलौकिकता के साथ–साथ मांसलता का संस्पर्श रहा है।

(4) प्रगतिवादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :- राजनीति में जो मार्क्सवाद है साहित्य में वही प्रगतिवाद है परन्तु यह कालखण्ड केवल राजनीतिक प्रतिक्रिया की साहित्यिक अभिव्यक्ति ही नहीं वरन् दीन–दुखियों के प्रेम व दर्द की अभिव्यक्ति है। प्रगतिवादी कविता में स्वस्थ सामाजिक और पारिवारिक प्रेम व्यक्त हुआ है। प्रगतिवादी प्रेम प्रवृत्ति मानवता के उत्थान के पूर्णतः परिपूर्ण है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी लिखते हैं – मेरे उर में जो निहित व्यथा/कविता तो उसकी एक कथा।"[44] दाम्पत्य जीवन की मिठास से परिपूर्ण अकेला बैठ जाता हूँ/तुम्हारी याद आती है/तरसता हूँ मिले फुरसत तुम्हारे गीत गाऊँ मैं/कभी झगड़ों, कभी रूठो–ठिठोली कर मनाऊँ मैं।"[45] प्रगतिवादी साहित्यकार पारिवारिक प्रेम में अत्यधिक खोया रहा है।

(5) प्रयोगवादी साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :- नवीन सौन्दर्य बोध व अनुभूति के नाम पर

प्रयोगवादी जनजीवन से कट गए। प्रयोगवाद में प्रयोग के नाम पर अश्लीलता, नग्नता व कामुकता का भी चित्रण हुआ है। इन कवियों की दृष्टि में प्रेम की मांसल अनुभूति और वासन का विष ही अमृत है।"[46] कामवासना, अंह भाव, काम कुण्ठा, क्षणिक अनुभूति यहाँ खूब है। नये प्रयोग करने वाले भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि कवियों ने तारसप्तक के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवादी कवि मण्डली की स्थापना की। प्रवर्तक अज्ञेय जी लिखते हैं – "प्रेम को चिर ऐक्य कोई/मूर्ख होगा तो कहेगा।"[47] "हम नदी के द्वीप हैं।/हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।/वह हमें आकार देती है।"[48] "जो दर्द है/वह बड़ा है, मुझी से/सहा नहीं गया। कहा नहीं गया।"[49] प्रयोगवादी व्यक्तिवादी कुण्ठाओं और दमित कामवासनाओं की नग्न अभिव्यक्ति को महत्व देता रहा है। प्रयोगवाद में मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, शकुन्तला माथुर, शमशेर बहादुर सिंह सभी ने प्रेम पर लिखा है।

(6) नई कविता में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :– अत्याधुनिकता का दम्भ भरने वाली नई कविता में कहीं–कहीं जुगुप्सित कुण्ठाओं और दमित वासनाओं पर वैज्ञानिक बोध का झीना आवरण डाल अर्थ शून्य अभिव्यक्तियाँ भी की गयी हैं। सन् 1954 से डॉ. जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रयोगवादी कवियों का अर्द्धवार्षिक संग्रह 'नई कविता' के नाम से प्रकाशित हुआ। कवियों ने प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्ति का प्रयास किया। भारतभूषण अग्रवाल व गजानन माधव मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रेमभाव–लोक परिवेश से संलग्न व कलात्मक अभिव्यंजना संपृक्त है। डॉ. जगदीश गुप्त, अजित कुमार, डॉ. देवराज, रवीन्द्रनाथ त्यागी, दूधनाथ सिंह, शान्ति मेहरोत्रा, ठाकुर प्रसाद सिंह, नईम, उमाकान्त मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर आदि सभी ने प्रेम पर लेखनी चलाई है। नयी कविता के कवि कैलाश बाजपेयी लिखते हैं – जो भी जहाँ भी है/अब बीमार है/सभी को किसी न किसी तरह का/बुखार है।"[50] निश्चित ही नई कविता जीवन का सत्य लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरी है।

(7) समकालीन साहित्य में प्रेम की परम्परा एवं अवधारणा :– अपने समय व समाज के प्रति वफादार होना ही समकालीनता है। देखें–नवगीतकार सत्य नारायण (पटना–बिहार) लिखते हैं – "शब्द हैं हम/लौट आयेंगे तुम्हारे पास/तुम आवाज तो दो।"[51] नवगीतकार अवध बिहारी श्रीवास्तव लिखते है :– जितना खिड़की से दिखता है उतना ही सावन मेरा।"[52] समकालीन साहित्य में काम की कुण्ठाओं की जगह शुद्ध–प्रेम का चित्रण है। मेरा तो मंतव्य है कि हरिदर्शन व आत्मदर्शन दोनों के लिए प्रेम अनिवार्य है जिसका चित्रण आज अत्यावश्यक है।

समग्रतः कह सकते हैं कि प्रेमभाव मानव की निधि है जो उसे अलौकिक वरदान सा मिला है। प्रेम साहित्य में रति नामक स्थायी भाव के साथ चलता है। यह भाव साहित्य को सुमधुर व सरस बनाता है। अध्ययन–अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यह प्रत्येक काल की प्रत्येक विधा की रचनाओं में विद्यमान है। वैदिक काल से लेकर समसामयिक रचनाओं तक में यह अनिवार्यतः उपस्थित है। प्रेम इतना गहन व विशाल भाव है कि सृष्टि की समस्त क्रियाएँ–प्रतिक्रियाएँ तथा भाव–सरणियाँ इसी में लीन रहती हैं।

संदर्भ सूची :–

1. दिनकर की उर्वशी का प्रेम–दर्शन : डॉ. ललिता अरोड़ा, प्रस्तावना से
2. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों में मध्यवर्गीय संवेदना : डॉ. रिंकी सिंह, पृ.सं. 233
3. दिनकर की उर्वशी का प्रेम–दर्शन : डॉ. ललिता अरोड़ा, उपक्रम से
4. ऋग्वेद 10/85/32
5. यजुर्वेद 36/18 तथा 17/17
6. अथर्वेद 3/30/9–1
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं. 164

8. बाल्मिकी रामायण – 1/1
9. दिनकर की उर्वशी का प्रेम–दर्शन : डॉ. ललिता अरोड़ा, पृ.सं. 122
10. कालिदास की लालित्य योजना : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 03
11. अमरूक शतम् – श्लोक 82
12. आर्या सप्तसदी – आर्या 397
13. मध्यकालीन प्रेम साधना : परशुराम चतुर्वेदी, पृ.सं. 19
14. संदेश रासक : 86, हिन्दी साहित्य का उद्‌भवकाल : डॉ. वासुदेव सिंह, पृ.सं. 204
15. ढोला मारू रा दूहा : सं. रामसिंह और नरोत्तम स्वामी, दो. 239/3
16. वीसलदेव रासो : सं. माताप्रसाद गुप्त, पृ.सं. 5/98
17. विद्यापति : डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृ.सं. 84–85
18. नारद भक्ति सूत्र
19. शांडिल्य भक्ति सूत्र
20. कबीर ग्रन्थावली : गोविन्द त्रिगुणायत
21. चांदायन (155) : सं. माता प्रसाद गुप्त, पृ.सं. 151
22. जायसी ग्रन्थावली (पदमावत) : सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नागमती विरह वर्णन खण्ड से)
23. जायस और मलिक मुहम्मद जायसी समग्र : डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह, पृ.सं. 296
24. ब्रजमाधुरी सार : वियोगी हरि, सूरदास, पृ.सं. 21–22
25. भ्रमरगीत सार पृ.सं. 8
26. सूरदास और उनका भ्रमरगीत सार : लेखक डॉ. श्रीनिवास शर्मा, पृ.सं. 188
27. ब्रजमाधुरी सार : वियोगी हरि, नंददास, पृ.सं. 60
28. सूरदास और उनका भ्रमरगीत सार : डॉ. श्रीनिवास शर्मा, पृ.सं. 10
29. श्री राम चरित मानस (बालकाण्ड) : गोस्वामी तुलसीदास (मूल गुटका साइज), पृ.सं. 193
30. मीरा की भक्ति भावना : डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, निबंध प्रभाकर–सं. तनसुख राम गुप्त, पृ.सं. 211
31. ब्रजमाधुरी सार : वियोगी हरि, रसखान, पृ.सं. 158
32. नील देवी : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
33. सत्य हरिश्चन्द्र : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
34. चन्द्रावली नाटिका : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
35. सती प्रताप : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
36. भारत दुर्दशा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संजय बुक सेन्टर वाराणसी), पृ.सं. 51
37. भारत दुर्दशा : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (वि.वि. प्रकाशन वाराणसी), पृ.सं. 03
38. अंधेर नगरी : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद), पृ.सं. 29
39. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, पृ.सं. 211 (साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी)
40. जूही की कली : निराला
41. प्रेम पथिक : प्रसाद
42. कामायनी : प्रसाद
43. महादेवी का काव्य सौन्दर्य : डॉ. हुकुमचन्द्र, पृ.सं. 40
44. हिल्लोल : शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ.सं. 22
45. शिवमंगल सिंह 'सुमन' समग्र, पृ.सं. 94
46. तारसप्तक द्वितीय : सं. अज्ञेय, पृ.सं. 172 (गुनाह का गीत : धर्मवीर भारती)
47. इत्यलम् : अज्ञेय, पृ.सं. 116–117
48. हरी घास पर क्षण भर : अज्ञेय, पृ.सं. 65
49. बावरा अहेरी : अज्ञेय, पृ.सं. 65
50. देहांत से हटकर : कैलाश बाजपेयी, पृ.सं. 53
51. नई सदी के नवगीत भाग–एक : डॉ. ओम प्रकाश सिंह
52. नदी सदी के नवगीत भाग–एक : डॉ. ओम प्रकाश सिंह

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 22-26

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेम की पीर का अमर ग्रन्थ जायसी कृत 'पदमावत'

–डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह

असि. प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, फ़ीरोज़ गाँधी कालेज रायबरेली (उ.प्र.)

जायस नगर जिनकी धर्मनगरी, प्रेम जिनका मूलमंत्र व ईश्वरोपासना जिनका लक्ष्य था ऐसे प्रेम–प्रवण महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी की अमर कृति का नाम पदमावत है। यह ग्रन्थ सूफी प्रेममार्गी काव्य–परम्परा में सर्वोपरि स्थान व महत्ता रखता है। "हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'प्रेमाख्यान' शब्द साधारणतः सूफी कवियों द्वारा रचित उन प्रेम प्रधान काव्यों के लिए प्रयुक्त होता आया है, जिनमें इन कवियों ने किसी लोक–प्रचलित प्रेम प्रधान कथा को अपना कर अप्रत्यक्ष रूप से अपने धार्मिक विश्वासों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'प्रेमाख्यान' शब्द का शाब्दिक अर्थ है – प्रेम का आख्यान अथवा कथा।" (जायस और मलिक मुहम्मद जायसी समग्र, पृ.सं. : 282–283)

हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य परम्परा :–

भारतीय साहित्य में प्रेमकथा काव्यों की रचना बहुत प्राचीन काल से होती चली आयी है। प्रत्येक युग में इन कथाओं के माध्यम से कवियों ने अपनी धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं का प्रचार–प्रसार किया है। ग ग अब तक की गयी खोजों के आधार पर इस परम्परा में लगभग 37 कवियों तथा उनकी 55 कृतियों के नाम प्राप्त हुए हैं।" (जायस और मलिक मुहम्मद जायसी समग्र, पृ.सं. 283–284)

कुछ प्रसिद्ध कृतियों उनके रचनाकारों के नाम अधोलिखित हैं – 1. असाइत कृत हंसावती–1370 ई. 2. मुल्ला दाउद कृत चंदायन–1379 ई. 3. दामोदर रचित लखमनसेन पदमावती कथा–1409 ई. 4. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा–1501 ई. 5. गणपति–माधवानलकाम कन्दला–1727 ई. 6. जायसी कृत पदमावत–1520 ई. 7. मंझन कृत मधुमालती–1545 ई. 8. उसमान कृत चित्रावली–1615 ई. 9. पुहकर रचित रसरतन–1618 ई. 10. दुखहरण कृत पुहुपावती–1669 ई. 11. नूर मुहम्मद कृत इन्द्रावती तथा अनुराग बाँसुरी–1707 ई. 12. बोधा रचित माधवानलकामकन्दला–1752 ई. 13. चतुर्भुजदास कृत मधुमालती–1780 ई. 14. मेवाराम कृत नलदमयन्ती चरित्र–1796 ई. 15. मृगेन्द्र कृत प्रेम पयोनिधि–1855 ई आदि (जायस और मलिक मुहम्मद जायसी समग्र, पृ.सं. 284)

परशुराम चतुर्वेदी जी लिखते हैं कि – "इन प्रेमगाथाओं के माध्यम से सूफियों का जन सम्पर्क स्थापित करना बहुत सरल हो गया और इनकी रचना द्वारा हिंदी के लिए एक ऐसे साहित्य का सृजन भी आरम्भ हो गया जिसने उसके वाङ्गमय की समृद्धि में बहुत बड़ी सहायता की।" (हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान, पृ.सं. 22)

इस परम्परा की सवोत्कृष्ट व आदर्श रचना जायसी कृत पदमावत मानी जाती है, क्योंकि इनमें अधिकांश रचनाएं लोकरंजन व श्रृंगार चित्रण के लिए प्रणीत हुई हैं जबकि पदमावत का दार्शनिक पक्ष भी अत्यन्त उच्चकोटि का है। "मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचना पदमावत में बतलाया है कि उन्होंने उसे जायस में आकर लिखा था, परन्तु किस अन्य स्थान से यहाँ पर आये थे इसकी ओर वे कोई संकेत कहीं पर देते हुए नहीं जान पड़ते। जायस को उस स्थल पर उन्होने धर्मस्थान भी कहा है, परन्तु अपनी 'आखिरी कलाम' नाम की रचना में उन्होंने जायस को अपना निजी स्थान भी बतलाया

है और उसका आदि नाम 'उदयान' का उल्लेख कर उसके पूर्व इतिहास का परिचय देने की भी चेष्टा की है। इस प्रकार उस नगर के प्रति उनके आकर्षण एवं उनके नाम 'मलिक मुहम्मद' के आगे जुड़े हुए 'जायसी' शब्द से भी उनका उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध जान पड़ता है।" (सूफी काव्य संग्रह–परशुराम चतुर्वेदी, पृ.सं. 117)

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ (तहवाँ) आइ कवि कीन्ह बखानू।। (पदमावत)

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर का नाव आदि उदयानू।। (आखिरी कलाम)

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–परम्परा के परिप्रेक्ष्य में डॉ. हरिकान्त श्रीवास्तव जी का मानना रहा है कि – "हिंदी साहित्य के इतिहासकारों और विद्वानों ने प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा को सूफी मुसलमानों से ही सम्बद्ध माना है।" सूफियों के ग्रन्थ यद्यपि हिंदी में लिखे गये, किंतु उनके आन्तरिक विचार भारतीय नहीं हैं, वे फारसी काव्य की परम्पराओं से प्रभावित हैं।" (भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ.सं.–01 प्रवेशिका)। परन्तु पदमावत के अध्ययन–अनुशीलन पर ज्ञात होता है कि जायसी हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की बातों से भली–भाँति परिचित है उनके सृजन की जितनी भी प्रशस्ति की जाये, कम है।

जायसी कृत पदमावत में प्रेम का स्वरूप :– "मलिक मुहम्मद जायसी की रचना पदमावत सूफी प्रेम गाथाओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है।" (पृ.सं. 123)। पदमावत महाकाव्य में जायसी ने प्रेम की ही मानव जीवन का लक्ष्य मानते हुए अनेक स्थलों पर प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। जायसी अलौकिकता की ओर उन्मुख लौकिक प्रेम के अमर गायक है। इनकी प्रेम संबंधी मान्यताएँ सूफीमत की मान्यताओं के बहुत समीप है। पदमावत महाकाव्य अथ से इति तक प्रेम की महिमा का गुणगान है। जायसी की दृष्टि में प्रेम मानव जीवन की सबसे बहुमूल्य वस्तु है, यही प्रेम यदि मनुष्य में न हों तों निश्चित ही वह राख के ढेर के समान होता। मिट्टी का मानव प्रेम के बल पर ही बैकुण्ठवासी बनता है अर्थात परम सुख प्राप्त करता है –

मानुष प्रेम भएउ बैकुंठी। नाहित काह एक मूठी। (पदमावत)

जायसी की दृष्टि में तीनों लोकों, चौदह भुवनों में प्रेम से बढ़कर सुन्दर और कोई वस्तु है ही नहीं –

तीनि लोक चौदह खंड सबै परै मोहिं सूझि।

प्रेम छाँड़ि किछु और न लोना जौं देखौं मन बूझि।। (पदमावत)

प्रेम एक सुरा है जिसे पी लेने वाले व्यक्ति को न तो मृत्यु से भय होता है और न जीवन की बाधाओं सेय परन्तु प्रेम–साधना अत्यन्त कठिन है, इसमें साधक को अपना सिर तक उत्सर्ग कर देने के लिए उद्यत रहना पड़ता है। प्रेम के बीहड़ पथ पर वही चल सकता है, जो संसार से उदासीन होकर योगी, यती और तपस्वी तथा सन्यासी बन सकता हो–

ओहि पथ जाइ जो होई उदासी। जोगी जती तथा सन्यासी।। (पदमावत)

प्रेम के इस ऊँचे पद तक जो भी पहुँच जाता है, वह अमर हो जाता है, उसे फिर से लौटकर मृणमय शरीर नहीं धारण करना पड़ता है –

प्रेम पंथ जो पहुँचे पारा। बहुरि न आइ मिलै एहि छारा।। (पदमावत)

प्रेम के पर्वत पर सिर के बल चढ़ना पड़ता है उस तक पहुँचना कोई साधारण कार्य नहीं है –

प्रेम पहार कठिन बिध गढ़ा। सों पै चढ़ै सीस सों चढ़ा।। (पदमावत)

ऐसा व्यक्ति जिसके घर में दस पंथ है, अर्थात् जो इन्द्रियों के प्रभाव में हैं, जिसके शरीर रूपी घर में पाँच चोर (काम, क्रोध, तृष्णा, मद, माया) निवास करते है, प्रेम के मार्ग पर नहीं चल सकता –

तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घटहि मांहि दस पंथा।।

काम क्रोध तिस्ना मद माया। पाँचौ चोर न छाड़हि काया।।

इस प्रकार पदमावत में जायसी ने पग–पग पर प्रेम की महिमा का गुणगान किया है। जायसी का परमात्मा परम सौन्दर्यमय है, अतः वह प्रेम स्वरूप है। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, सभी पर परमात्मा अपनै सौन्दर्य की छाया डालता है, अतः जायसी की दृष्टि में अखिल सृष्टि ही प्रेममयी है। अद्‌भुत सौन्दर्यमय परमात्मा की प्राप्ति एकमात्र प्रेम की साधना द्वारा ही हो सकती है।

मनुष्य की आनन्दमयी एवं सच्ची प्रेमानुभूति का जीता–जागता वर्णन प्रस्तुत करना प्रेमाख्यानक कवियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। जायसी इस लक्ष्य सिद्धि में सबसे सफल कवि रहें। इनकी पदमावत ललित मानवीय प्रेम एवं ईश्वरीय प्रेम की सच्ची गाथा है। जायसी का रोम–रोम प्रेम की महिमा से उद्‌दीप्त है, शरीर के कुरूप होते हुए भी उनका हृदय प्रेम की आनन्दानुभूतियों से पूर्ण है। सचमुच वे प्रेम के सच्चे कवि थे – वे स्वयं कहते भी थे –

मुहम्मद कवि जो प्रेम का, ना तन रकत न मांसु।
जेइ मुख देखा तेइ हंसा, सुना तो आए आंसु।। (पदमावत)

जायसी का शरीर प्रेम से ही बना है, रक्त, मांस, मज्जा से नहीं। यही कारण है कि जायसी जैसे सूफी कवियों के प्रेम–चित्रण सेय धार्मिक विवादों से संत्रस्त मध्ययुगीन मानवता को बहुत सांत्वना मिली। प्रेम के इन कवियों को हिन्दू और मुस्लिम दोनों मतावलम्बी ध्यान से सुनते और प्रभावित होते रहे। जायसी की यह पंक्ति –

"मानुष प्रेम भएउ बैकुण्ठी। नाहिं त छार एक मूंठी।" प्रेम की महत्ता का प्रमाण बन जाती है।

जायसी कृत पदमावत का मूल प्रतिपाद्य प्रेम :– जायसी के काव्य में प्रेम के आदर्श रूप का चित्रण हुआ है। चूँकि सूफी साधना प्रेम को केन्द्र मानकर चली है। अतएव पदमावत का कवि अपने काव्य में एकान्तिक प्रेम को ही अधिक महत्व देता है, सामाजिक चित्रणों को कम। जहाँ कहीं उसे सामाजिक प्रेम के चित्रणों का अवसर मिला, वहाँ भी वह अपनी एकनिष्ठता में खोया रहा। रत्नसेन के लिए पदमावती और पदमावती के लिए रत्नसेन परस्पर आकर्षण के केन्द्र हैं। दोनों बस एक–दूसरे की ओर ही उन्मुख हैं। जायसी को कई अवसर ऐसे मिले जहाँ वे एकनिष्ठ प्रेम से परे हटकर समाजनिष्ठ प्रेम का चित्रण कर सकते थे, परन्तु ऐसा करना सम्भवतः उन्हे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा पहुँचाता। पदमावत में ऐसे तीन स्थल हैं –

1. रत्नसेन का योगी बनकर जाते समय उसकी माँ का विलाप।
2. पदमावती की विदाई के अवसर पर उसकी सखियों एवं परिजनों के प्रेम का चित्रण।
3. नागमती–विरह

1. रत्नसेन जब पदमावती की प्राप्ति के लिए योगी बनकर जाने लगता है, तो उसकी माँ अत्यन्त दुखी होकर विलाप करते हुए सामने आती है –

विनवै रतन सेन कै माया। माथे छात, पात निति पाया।।
विलसहु नौलख लच्छि पियारी। राज छांड़ि, जिनि होहु भिखारी।।
निति चन्दन लागै जेहि देहा। सोतन देख सरत अब खेहा।।
सब दिन रहेउ करत तुम भोगू। सो कैसे साध बतप जोगू।।
कैसे धूप सहब बिन छाँहा। कैसे नींद परिहि भुइं माहा।।
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा। कैसे पाँव चलब तुम पंथा।।
कैसे सहब खिनहिं खिन भूखा। कैसे खाब कुरकुरा रूखा।।
राजपाट, दर, परिगह, तुम्ह ही सौं उजियार।
बैठि भोग रस मानहु, कै न चलहु अँधियार।। (पदमावत)

परन्तु माँ की इन बातों से अप्रभावित रत्नसेन पद्मावती की खोज में जाने को उद्यत है, वह अपनी माँ से कहता है–

मोहि यह लोभ सुनाउ न माया। काकर सुख, काकर यह काया।।
जो निआन तन होइहिं छारा। माटिहि पोखि मरै को मारा।।

x x x x

देखि अंत अस होइहिं, गुरु दीन्ह उपदेश।
सिंघलदीप जाब हम, माता देहु अदेश।। (पदमावत)

2. समाजनिष्ठ प्रेम–चित्रण का दूसरा अवसर जायसी को पदमावती की विदाई के समय मिला। इस अवसर पर कवि ने समाजनिष्ठ सखी–प्रेम, मातृ–प्रेम, परिवार–प्रेम, मातृभूमि प्रेम की व्यंजना करनी चाही है, परन्तु पदमावती प्रिय के मादक एवं तीव्र प्रेम के समक्ष इन सभी को नगण्य समझती है –

रोवहिं मातु पिता औ भाई। कोउ न टेक जो कंत चलाई।।
रोवहिं सब नैहर सिंघला। लेइ बजाइ के राजा चला।।

x x x x

भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौ भएउ गुरेरा।। (पदमावत)

3. समाज प्रेम–चित्रण का तीसरा स्थल–नागमती विरह है। यह प्रेम–चित्रण एकनिष्ठ होते हुए भी समाजनिष्ठ है। अतः नागमती का करुणा की स्थिति तक पहुँचा हुआ दारुण–विरह वर्णन व्यर्थ ही रहा। नागमती के रुदन का क्या महत्व है, जब रत्नसेन ही उस पर ध्यान नहीं देता। यह स्थिति इसलिए आयी कि कवि एकनिष्ठता का दुराग्रही है। रत्नसेन की दृष्टि में पदमावती ही सब कुछ है – माँ, पत्नी, परिजनों का प्रेम कुछ भी नही है, पदमावती भी इसी दृष्टिकोण की अनुगामिनी है।

कथा के उत्तरार्द्ध भाग में कवि लोकजीवन की कुछ अभिव्यक्तियों को सामने लाता है – इसमें कुछ उत्साह के प्रसंग है, कुछ क्षोभ के, कुछ शौर्य के तथा कुछ छल प्रपंच के। परन्तु इन सबका उद्देश्य भी पदमावती और रत्नसेन के प्रेम को पुष्ट करना ही रहा है। उदाहरण के लिए गोरा–बादल की वीरता के प्रसंग को लीजिए – यह प्रसंग स्वतंत्र रूप से गोरा और बादल के लिए नहीं आयोजित किया गया। गोरा–बादल का सारा प्रयास पदमावती और रत्नसेन की रक्षा करना रहा है।

इस प्रकार पदमावत के विस्तृत कथा–पट पर केवल एकनिष्ठ प्रेम का ही राज्य है, इसकी कथा एक विशुद्ध प्रेमगाथा है, लोकगाथा नही। इस सम्बन्ध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का अभिमत उल्लेखनीय है –

"उसका (जायसी की कथा का) लोकव्यापी उद्देश्य नही है। रामकथा (जो पूर्ण जीवनगाथा है) में राम का उत्साह केवल सीता की मुक्ति के लिए नही है, वह देव ऋषि–रक्षा के लिए भी है। स्पष्ट है कि पदमावत में निरूपित प्रेम सर्वथा एकान्तिक एवं लोक वाह्य चाहे न हो, वह जीवन को उसकी समग्रता से ग्रहण करने वाला नही है। सत्य तो यह है कि पदमावत श्रृंगार प्रधान काव्य है और उसका बीज भाव प्रेम ही है। यह कथा प्रिय की अद्वैतता को सिद्ध करने वाली है, लोकमंगल का विधान करने वाली नही। समग्र जीवन का विधान करने वाली एक लोकमंगल की दृष्टि से लिखी गई कथा का बीज भाव करुणा ही हो सकता है, क्योंकि लोकमंगल का विधान करने वाली वृत्ति तो करुणा ही है।"

पदमावत महाकाव्य में जायसी ने प्रेम को ही मानव–जीवन का लक्ष्य मानते हुए अनेक स्थलों पर प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनकी दृष्टि में 'प्रेम गगन से ऊँचा है और प्रेम का ध्रुव आकाश में विद्यमान ध्रुव से भी उच्च है–

ज्ञान दिस्ति सौ जाइ पहूँचा। प्रेम अदिस्त गगन ते ऊँचा।।

ध्रुव ते ऊँच प्रेम ध्रुव अवा। सिर देइ पाँव देइ से सो छुआ।। (पदमावत – आचार्य शुक्ल)

समग्रतः कहा जा सकता है कि जायसी प्रेम की पीर के सच्चे गायक है। उनके काव्य में प्रेम का जैसा पावन एवं विशुद्ध रूप देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। निःसंदेह प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य जायसी कृत पदमावत है।

संदर्भ सूची :-

1. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य : डॉ. हरिकान्त श्रीवास्तव 1961 ई., हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय–बनारस–1
2. हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान : परशुराम चतुर्वेदी, 1962 ई. हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा.लि., बम्बई–4
3. सूफी–काव्य–संग्रह : परशुराम चतुर्वेदी – तृ.सं. शक् 1880 ई. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
4. जायस और उनका पदमावत : राजनाथ शर्मा, वि.सं. 1981, विनोद पुस्तक मंदिर–आगरा
5. जायसी ग्रंथावली : सं. माता प्रसाद गुप्त, सं. 1951 ई., हिन्दुस्तान एकेडमी प्रयाग
6. जायसी ग्रंथावली : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
7. जायसी : विजयदेव नारायण, साही सं. 1983, हिन्दुस्तान एकेडमी प्रयाग
8. जायस और मलिक मुहम्मद जायसी समग्र : डॉ. आजेन्द्र प्रताप सिंह, वान्या पब्लिकेशन कानपुर, प्र.सं. 2020 ई.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 27-32

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष

–डॉ. अमनदीप कौर

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा, यमुनानगर।

हिन्दी साहित्य की प्रेमाख्यान परम्परा में सूफी प्रेमाख्यानों का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य में सूफी साहित्य का समय लगभग चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के मध्य माना गया है। सूफी साहित्य परम्परा को विभिन्न विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा है, जैसे – प्रेममार्गी शाखा प्रेम काव्य, प्रेम कथानक काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, सूफी काव्य आदि। इन नामों से यह ज्ञात होता है कि इस साहित्य परम्परा में प्रेम तत्त्व की प्रधानता है। सूफियों का प्रेम तत्त्व परम्परागत भारतीय श्रृंगार भावना से थोड़ा भिन्न है। सामान्य श्रृंगार विषयक साहित्य में विवाह, दाम्पत्य एवं सामाजिक जीवन की मर्यादाओं को स्वीकार करने वाले पारिवारिक प्रेम का चित्रण किया जाता रहा है। लेकिन सूफी साहित्य में प्रेम के शुद्ध स्वच्छन्दतापूर्ण दृष्टिकोण, सौन्दर्य भावना, साहसपूर्ण क्रिया–कलाप एवं समाज विमुख प्रणय भावना का चित्रण हुआ है। इस प्रवृति को विश्व साहित्य में 'रोमांस' अर्थात 'स्वच्छन्द प्रेम' कहा जाता है। जब कोई भी समाज परम्पराओं, रुढ़ियों और मर्यादाओं से अत्यधिक जकड़ जाता है, तब उसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरुप स्वच्छन्दता या उन्मुक्तता का आना स्वाभाविक है। इसी के परिणामस्वरुप विभिन्न भाषाओं के साहित्य में स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृतियों का चित्रण होता रहा है। हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यानक साहित्य को भी विश्व के इसी रोमांस साहित्य की एक शाखा के रुप में देखना चाहिए। सूफी साहित्य परम्परा की शुरुआत सन् 1370 ई॰ में मुल्ला दाऊद के 'चंदायन' से होती है। इस धारा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं। जायसी के अतिरिक्त कुतुबन (मृगावती), मंझन (मधुमालती), उस्मान (चित्रावली), कासिमशाह (हंस जवाहिर) आदि महत्वपूर्ण रचनाकार है। सूफी काव्यधारा में इन कवियों ने प्रेम को साधना का मार्ग बताया है। इस धारा के साधक परमात्मा को पत्नी एवं आत्मा को पति के रुप में स्वीकार करते हैं। सूफी साधक ईश्वर के साथ भय का नहीं, बल्कि प्रेम का संबंध स्थापित करते हैं। इश्कमजाजी से इश्कहकीकी की यात्रा में विश्वास रखते हैं। इनके यहां प्रेम तत्त्व सर्वोपरि हैं।

सूफी साधकों का प्रेम 'प्रच्छन्न' के प्रति है। सूफियों ने अपने प्रबन्ध काव्यों में जिस प्रेम का परिचय दिया, वह पूर्ण रुप से अलौकिक होते हुए भी लौकिक था। सूफी अपनी प्रेम व्यंजना साधारण नायक .नायिका के रुप में करते हैं। प्रसंग सामान्य प्रेम का ही रहता है, किन्तु उसका संकेत 'परम प्रेम' का होता है। सूफी साहित्य में लौकिक और अलौकिक प्रेम दोनों साथ. साथ चलते हैं। प्रस्तुत में अप्रस्तुत की योजना होती है। सूफी प्रबन्ध साहित्य में लौकिक पात्रों के मध्य लौकिक प्रेम की व्यंजना करते हुए भी अलौकिक की स्थापना करने का दुरुह प्रयास किया गया है।

प्रेम का आदर्श पक्ष वह है, जिसका प्रस्फुटन विवाह के पश्चात होता है। इसका विकास जीवन क्रम के साथ उत्तरोत्तर होता चलता है। जीवन की गहन और विषम परिस्थितियों में भी प्रेम की गम्भीरता तथा गूढ़ता बढ़ती ही जाती है। इस प्रेम में एकनिष्ठता की भावना के साथ ही कर्त्तव्य की दृढ़ भावना का भी समन्वय रहता है। प्रेम न तो मात्र वासना तृप्ति का ही साधन है और न कर्त्तव्य कसौटी। कर्त्तव्य और भावना का सहर्ष समन्वय ही प्रेम है।

प्रेम का एक अन्य पक्ष गुण–श्रवण, चित्र–दर्शन, स्वप्न–दर्शन या साक्षात् दर्शन से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार के प्रेम में नर और नारी मिलन का प्रयास करते हैं और अधिकांश अवसरों पर उनका मिलन हो भी जाता है। सूफी साहित्य में इस प्रकार के प्रेम की प्रधानता है। इसमें प्रेम की गम्भीरता एवं शुचिता का अभाव नहीं होता, किन्तु इसकी अपेक्षा विवाह के पश्चात होने वाले प्रेम में कर्त्तव्यनिष्ठा अधिक मिलती है। प्रेम के इस स्वरुप का परिचय सूफी प्रेमकथाओं में मिलता है। लगभग सभी नायक–नायिका, जो परमात्मा का स्वरुप है, रुपगुण श्रवण सुनकर अथवा स्वप्न में या साक्षात् देखकर उसके विरह में व्याकुल हो जाते हैं, और घर–परिवार त्याग योगी बन जाते हैं। गुण–श्रवण के द्वारा प्रेम भावना जाग्रत होने वाली कथाओं के अन्तर्गत पद्मावत, हंसजवाहिर, अनुराग बाँसुरी आदि कथाएँ आती है। 'छीता' प्रेमाख्यान में गुण. श्रवण से आकर्षण एवं इसके पश्चात साक्षात् दर्शन से प्रेम जागृत होता है। चित्र दर्शन से प्रेमोद्भूत होने वाली कथाओं में चित्रावली, रतनावति आदि कथाएँ आती है। स्वप्न दर्शन के द्वारा प्रेम जाग्रत होने वाली कथाएँ अधिक हैं। कनकावती, कामलता, इन्द्रावती, प्रेमदर्पण आदि प्रेमाख्यान इसके अन्तर्गत आते हैं। साक्षात् दर्शन द्वारा प्रेम जागृति का वर्णन मधुमालत, मधुकर–मालति एवं प्रेमरस आदि में मिलता है।

सूफी साहित्य में प्रेम और रुप का चिर संबंध दिखाया गया है। वह परमात्मा सौन्दर्यमय है। उसका रुप इस जगत में व्याप्त है। रुप स्वयं प्रेम को आकर्षित कर लेता है। 'प्रेमरस' के रचयिता 'शेख रहीम' ने इसे सिद्ध भी कर दिया है। 'मुल्तान अविद' ने युद्ध में प्रेमसेन को मृत्यु के घाट उतारकर जब महल में प्रवेश किया तो वह 'चन्द्रकला' का सौन्दर्य देखकर मंत्रमुग्ध हो गया और उसने सोचा कि जब यह मनुष्य इतना अधिक सुन्दर है, जो परमात्मा का केवल प्रतिबिम्ब मात्र है, तो वह जो सबका रचयिता है, वह कितना सुन्दर होगा। इसी भावना से व्याकुल होकर 'मुल्तान अविद' परमरुप का वियोगी, प्रेमी होकर चल पड़ा। इस सृष्टि का कारण 'प्रेम' है। प्रेम के वशीभूत हो परमसत्ता ने सृष्टि की रचना की। प्रेम और रुप का अनन्य संबंध है। जिस प्रकार रुप से प्रेम को प्रेरणा मिलती है, उसी प्रकार रुप और प्रेम के उद्भूत हो जाने पर विरह का अनुभव होना स्वाभाविक है। कवि उसमान इन्हीं तत्त्वों को सृष्टि का मूल मानते हैं :–

'आदि प्रेम विधि ने उपराजा, प्रेमहि लाल जगत सब साजा।
प्रेम किरन ससि रुप जेऊँ, पानि प्रेम जिमि हेम, हि विधि जहं जहं जानियहु, जहां रुप तहं प्रेम।।'

सूफी साधकों ने प्रिय के सौन्दर्यमय रुप की कल्पना 'मधुबाला' या 'साकी' के रुप में की है। जो अपने रुप की मदिरा से जगत में प्रेम उकसाती है। उसके रुप सौन्दर्य का पान करके प्राणी सुधबुध खोकर 'बावला' या 'मतवाला' हो जाता है। इसी तथ्य को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस सुन्दरी बाला के हाथ में सुराही एवं प्याला है। वह तुम्हें मदपान कराके सारी चिन्ताओं से मुक्त करके मतवाला बना देगी :–

'है घन हाथ सुराही प्याला,
दै मद तुम्हैं करैं मतवाला।।'[2]

इस जीवन में उसकी रुपमाधुरी का पान किये बिना जीवन व्यर्थ है।

सूफी कवि कासिमशाह ने 'हंसजवाहिर' में परम सौन्दर्यशाली परमात्मा को प्रेम का आलम्बन बताया है और जीवात्मा को आश्रय। जीवात्मा, परमात्मा से बिछुड़कर सदैव दुःखी रहा करती है। पहले जीवात्मा और परमात्मा में भेद न था, किन्तु जगत में उत्पन्न होकर दोनों में बिछोह हो गया। यही कारण है कि उसे परमात्मा के सौन्दर्य का आभास मात्र होते ही उसके सुप्त प्रेम की चिंगारी यदि हृदय में सुलग गई तो बुद्धि और तर्क नष्ट हो जाता है। प्रेम की अग्नि सुलगते ही सारे संशय, तर्क और जिज्ञासा शान्त हो जाती है, प्रेम मार्ग प्रशस्त हो जाता है :–

'भुला सबै जगत का धन्धा,
पड़ा जो आन प्रेम का फन्दा।।'[3]

प्रेम जिस प्रकार बरबस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सच्चे प्रेम की लगन भी बरबस बढ़ती जाती है। प्रेम की निश्चयात्मकता के कारण प्रिय प्राप्ति की दुरुहता, प्रयास के कष्ट, त्याग एवं आपा मिटाने की भावना दृढ़ होती जाती है। प्रेमी की साध्य केवल प्रिय प्राप्ति होता है। वह किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करता, यहीं कारण है कि जीवन के सुख–ऐश्वर्यों का लोभ उपस्थित होने पर वह पथ विचलित नहीं होता। राजकुंवर 'इन्द्रावती' में इसी प्रकार अपने प्रेम की एकाग्रता का परिचय देता है, 'जिसके प्रेम ने मुझे बावला बना दिया है, जिसने मुझे सुख–ऐश्वर्य से विमुख कर दिया है, उसके अतिरिक्त ओर किसी वस्तु से मेरा कोई संबंध नहीं।'[4] पद्मावत में ऐसी ही निष्काम भावना का अनुभव करके राजा रत्नसेन समुद्र के बीच में भी मग्न हो रहा था।

नूरमूहम्मद ने 'इन्द्रावती' में प्रेमानुभूति को आनन्ददायक बताया है, लेकिन उन्होने विरहानुभूति के कष्टों का भी वर्णन किया है। कवि के अनुसार सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर निरन्तर बढ़ता जाता है। आरम्भ में प्रेमानुभूति आनन्ददायक होती है, किन्तु विरह होते ही जिन कष्टों का सामना करना पड़ता है, वे प्रेम मार्ग को अत्यंत दुरुह बना देते हैं। प्रेम मार्ग की दुरुहता उसकी गति अवरुद्ध करने में असमर्थ होती है। तीन सौ सत्तर मन सिर पर बोझ रखकर एक पैर से चलना जितना कठिन है, उतना ही कठिन प्रेम मार्ग पर अग्रसर होना है :–

'सत्तर सिर मन तीन सै, पांव एक सें जाहि,
प्रेमी को दुख देव सो, प्रेम पन्थ यह आहि।।'[5]

प्रेम मार्ग के पथिक को जीवन का मोह भी विचलित नहीं कर सकता। 'इन्द्रावती' को प्राप्त करने के लिए पहले समुद्र से प्रणमोती निकालना आवश्यक था, जिसके प्रयास में बहुत से व्यक्ति से प्राण गंवा चुके थे। अतः लोगों ने 'इन्द्रावती' के सिर पाप का बोझ रख कार्य की दुरुहता समझाने का प्रयास किया तो साधक राजकुंवर का उत्तर था कि यह सब दोष साधक की अयोग्यता का है। जो कोई भी प्रेम–पथ पर अग्रसर होता हैए वह अपने पृथक अस्तित्व एवं अंहत्व की चाह नहीं रखता। उसका एक मात्र लक्ष्य 'मरण' या 'नफ्स' का नाश होता है।

सूफी कवि नूरमुहम्मद ने 'अनुराग बाँसुरी' में भावनाओं के परिष्कार की बात की है, कि अंह के अतिरिक्त, प्रिय की महानता साधक को प्रेम मार्ग से यदा–कदा विरत करती है। लोक दृष्टि भी राजा–रंक के प्रेम संबंध की अवहेलना करती है। किन्तु साधक ऐसी शंका का निवारण कर लेता है। उत्तम का ध्यान करने से मनुष्य की भावनाएं उच्च होती है। निम्नतम भावनाओं का भी आलम्बन महान होने पर उन भावनाओं का परिष्कार होता है :–

'कहा कुंवर उत्तम के नेहा, दाऊ जगत लहै यह दहा,
उत्तम ध्यान धरै मन दुरपन, निर्मल होई विलोकै दरसन।।'[6]

सूफी साधक प्रेम को सब कुछ मान, अन्य भावों की उपेक्षा करते हैं। वे भली–भांति जानते हैं कि प्रेम सब रसों का मूल है। इश्क या प्रेम ही इस जगत का सार है। प्रेम के उत्पन्न हो जाने पर संसार का सारा ज्ञान उसके सम्मुख तुच्छ हो जाता है। जब जीव का गुरु प्रेम हो जाता है, प्रेम के ज्ञान से चित्त में जो प्रकाश होता है, उसके सम्मुख जगत ज्ञान तुच्छ है। यह सारा संसार प्रीति एवं दया के वशीभूत है। प्रीति के फन्दे ने सारे संसार को फंसा रखा है। नूरमुहम्मद की भांति शेख रहीम भी प्रेम और दया को कर्मकाण्ड और ज्ञान से श्रेष्ठ समझते हैं। यदि दया और प्रेम का स्थान हृदय में नहीं है, तो हृदय कंकड के समान मूल्यहीन है। जब दया, प्रेम का निवास हृदय में हो जाता है तो वहां अर्न्तयामी की प्रतिष्ठा स्वयं हो जाती है। हृदय काबा एवं कैलाश के समान पवित्र हो जाता है :–

'दया प्रेम जेहि हिय बसे, सो काबा कैलास।
अन्तरजामी आप रब, करे हीएं पर बास।।'[7]

सूफी सदैव हृदय शुद्धि का ध्यान रखते है और भावना को तर्क की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते हैं। वे सारे कर्मकाण्ड,

कर्त्तव्य, भावना या बुद्धि–विलास को त्यागकर हृदय में निरन्तर उसका ध्यान किया करते हैं। हृदय में बसी मूर्ति को भी ये कण–कण में व्याप्त देखते हैं। हृदय और नैनों की मूर्ति में कोई अन्तर नहीं होता :–

'जब एक मूरति हिए समाली, दूसर कहां बिलौके ज्ञानी।।'[8]

सूफियों का विश्वास है कि प्रेम का मार्ग सत्य का मार्ग है। प्रेम का आविर्भाव प्रत्येक हृदय में नहीं होता। वह हृदय धन्य है जिसमें प्रेम की चिंगारी सुलगती है। प्रेम ज्ञान किसी सौभाग्यशाली के हृदय में ही जाग्रत होता है :–

'सरग बूंद सब हांहि न मोती।
सब घर विरह दई नहीं जोती।।'[9]

सूफी साहित्य में विरह का बड़ा महत्व है। प्रेम की भांति, सूफी विरह को भी मूल पदार्थ मानते हैं। विरह के कारण ही प्रेम का अस्तित्व है। विरह ही प्रेम का सार है। प्रेम तीव्र, गम्भीर एवं अहेतुक होने के साथ ही त्याग एवं समर्पण की भावना से युक्त होता है। जो प्रेम के मार्ग में प्राणों का भी त्याग कर सके, वही सच्चा प्रेमी है। कवि मंझन भी स्वीकार करते हैं कि जिस व्यक्ति में अपना सीस उतारकर हाथ में लेने की सामर्थ्य हो, वही इस मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। प्रेम और रुप का चिर संबंध है। सूफी प्रेम कथाओं में प्रेम का आविर्भाव रुप–दर्शन या गुण–श्रवण से हुआ है। रुप और प्रेम के इस अविच्छिन्न संबंध का भी एक रहस्य है। मनुष्य, जिसे इन कवियों ने सौन्दर्य का आधार माना है, वह ईश्वर की प्रतिछवि है :–

''देखो निरख परख मोहि काया, मैं कत अहो अहो वह छाया।।''[10]

परम सौन्दर्यशाली परमात्मा के सौन्दर्य पर मोहित जाना, कर्ता के अनिर्वचनीय रुप के बलिहारी जाना है। यही कारण है कि सूफी साधक इश्कमजाजी की अवहेलना नहीं करते। लोकप्रेम उपेक्षणीय नहीं है, बल्कि लौकिकता एवं सांसारिकता त्याज्य है। कवि नसीर कृत 'प्रेमदर्पण' में युसूफ के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर सौदागर की पुत्री में स्वभावतः उसके रचयिता का परिचय पाने की जिज्ञासा जाग उठी थी :–

''अचरज रुप अति तोर मनोहर, देखत के जिया जाय।
कौन है इहकर सिरजनहारा, दियो न मोहि बताय।।'[11]

इस जिज्ञासा की शान्ति शेख रहीम ने बड़ी सफलता से की है, कि जिस प्रकार मूर्ति की सुन्दरता कलाकार की कुशलता का परिचय देती है। उसी प्रकार 'मानव सौन्दर्य' परमेश्वर के अनन्त सौन्दर्य का परिचय देता है। निष्कर्ष यह है कि इस सुन्दर सृष्टि का निर्माणकर्ता परमेश्वर अद्वितीय है। सौन्दर्य, शक्ति एवं शील में कोई उसका उपमान नहीं। इस प्रकार सूफियों का प्रेम परमप्रेम प्राप्ति का सोपान है।

सूफी साहित्यकारों ने लौकिक प्रेम में भी अलौकिकत्त्व का समावेश किया है। भावनाओं का उच्च आधार या आलम्बन ही भावनाओं को उच्च एवं महान बनाता है। हृदय की इच्छाओं एवं भावनाओं को परमतत्त्व को समर्पित कर देने से ही उनका परिमार्जन और उन्नयन हो जाता है। कवि नूरमुहम्मद ने इस तथ्य की व्याख्या की है :– 'राजकुंवर, चेता माजिन से कहता है कि मैं जोगी हूँ, किन्तु प्रेम पन्थ का जोगी होने के कारण उत्तम की ही भीख ग्रहण करता हूँ। सत्य है, जिसके हृदय में महान व्यक्ति का प्रेम है, वही व्यक्ति ऊँचा है। जो नीचों से स्नेह करता है, वही नीच है।'[12]

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम लौकिक पक्ष से अलौकिक की ओर अग्रसर होता है। सूफी साधक जगत के सारभूत सत्य 'परमसत्ता' को ससीम एवं असीम दोनों मानता है। जीव, जो ससीम एवं न्यूनतम ये युक्त है, परमात्मा को उपलब्ध करना चाहता है। इसी प्रेम के स्वरुप को व्यक्त करने के लिए सूफियों ने परमसत्ता को कण–कण में व्याप्त दिखाया है। उन्होने लौकिक प्रेम में अलौकिकत्त्व की प्रतिष्ठा की है तथा मानवीय प्रेम का आध्यात्मीकरण किया है। सूफी काव्य में मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा आध्यात्मिक प्रेम के सोपान रुप में मिलती है।

सूफी सिद्धान्त के अनुसार, जीव और परमात्मा में पारमार्थिक अन्तर नहीं है। परमात्मा और जीव का संबंध अति प्राचीन है। कवि 'मंझन' जीव और परमात्मा के इस प्रेम संबंध को स्पष्ट स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा, पृथ्वी और गगन पहले एक थे, तभी विलग होने के बाद से जगत का कण–कण उससे मिलने को आतुर है। सारा संसार उसके विरह से पीड़ित है :–

'धरती गगन मिले हुत दोऊ, केइ निनार के दीन्ह बिछोह।।'[13]

सूफी कवियों के अनुसार, जीवन में प्रेम की व्याप्ति ही आनन्द है। जगत की सृष्टि प्रेम के कारण ही हुई। प्रिय प्राप्ति की कठिनता के कारण सूफी प्रेम में भी परकीया प्रेम की भांति तीव्रता एवं व्यग्रता होती है। सगुण और निर्गुणोपासकों की भांति वह परमात्मा को व्यक्त भी मानता है और अव्यक्त भी। सूफियों का 'कल्व' केवल भावनाओं का ही संस्थान नहीं, प्रत्युत ज्ञान और भाव चित्र भी इसी में अंकित होते हैं। सूफी साधकों का प्रेम ऐकान्तिक और भावविहल है। सूफी प्रेम और दया को आवश्यक समझते हैं। शेख रहीम का कथन है कि किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय का अनुयायी हो, उसे दया–धर्म नहीं छोड़ना चाहिए :–

''सबसे कहौं दोउ कर जोरे, क्षमा कियो सब औगुन मोरे।
तजो न दया धरम तुम, चाहै जो मत होय।।'[14]

क्योंकि जिस मत में दया धर्म होता है, वहीं परमेश्वर निवास करता है। एक अज्ञात कवि ने अपने खड़ी बोली प्रेमाख्यान 'कामरुप की कथा' में इश्क की नदी को सदैव उबलते देखने की चाह की है। सूफी प्रेम का विवेचन करते हुए फरीदुद्दीन अतार ने कहा है – 'प्रेमिका का प्रेम अग्नि है और बुद्धि केवल धुआँ। जैसे ही प्रेम प्रज्ज्वलित हो उठता है धुआँ विलीन हो जाता है' :–

'इश्के जानां आतशतां अक्ल दूद।
इश्क कामद दूर गुरेज़द अक्ल जूद।।'[15]

सूफी साहित्य में प्रेम के बहुप्रयुक्त रुपकों में चकोर और चन्द्रमा, कमल और सूर्य, राग और हिरण मुख्य है। इन रुपकों से प्रेम के भिन्न गुणों एवं स्वरुपों का परिचय मिलता है। चकोर और चन्द्र, कमल और सूर्य के रुपक स्पष्ट करते हैं कि काल, स्थान एवं स्तर का अन्तर प्रेम में मान्य नही है। राग और हिरण का रुपक तन्मयता, तल्लीनता तथा समर्पण का आदर्श है। सूफियों ने अपने ग्रन्थों की रचना हिन्दी भाषा और फारसी लिपि में की। इनके प्रेमाख्यानों पर भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा एवं फारसी की मसनवी काव्य शैली का प्रभाव है।

सूफी साहित्य में प्रेम के शुद्ध स्वच्छंदतापूर्ण दृष्टिकोण, सौन्दर्य भावना, साहसपूर्ण क्रिया–कलाप एवं समाज–विमुख प्रणय भावना का चित्रण हुआ है। इसलिए सूफी साहित्य की विशिष्टता को प्रारम्भ में फारसी प्रभाव या सूफी प्रभाव की देन कहते हुए अभारतीय कहा गया। लेकिन आगे चलकर यह माना गया कि स्वच्छंदता, सौन्दर्य, सहस, कल्पना आदि से मिश्रित प्रणय भावना किसी भाषा विशेष, देश विशेष या सम्प्रदाय विशेष की विशेषता न होकर एक ऐसी सार्वजनिक प्रवृति है, जो हर भाषा और हर देश के साहित्य में समय–समय पर अभिव्यक्त होती रही है। इस प्रवृति को विश्व साहित्य में 'रोमांस' अर्थात 'स्वच्छंद प्रेम' कहा गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम की गति विषम से सम की ओर है। प्रेम की स्थापना साध्य के रुप में न होकर साधन के रुप में है। सूफी साधक, एक ओर जहां प्रेम की एकनिष्ठता और हृदय की शुद्धि पर विश्वास करता है, वहीं वह प्रिय और उसके प्रेम को प्राप्त करने के लिए जिक्र, फिक्र, नमाज, जियारत, हज्ज, जक़ात, सौम, रोजा आदि ऐसी क्रियाओं में भी विश्वास करता है। हृदय की शुद्धि, शारीरिक कष्ट साधना और शरीयत के नियमों का समन्वय ही सूफी प्रेम साधना का स्वरुप है। जिसके मूल में उदारता एवं हृदय की स्वच्छता विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. उसमान– चित्रावली, पृ. 13
2. नूरमुहम्मद– इन्द्रावती, पृ. 78
3. कासिमशाह – हंसजवाहिर, पृ. 72
4. नूरमुहम्मद– इन्द्रावती, पृ. 83
5. नूरमुहम्मद–इन्द्रावती, पृ. 44
6. नूरमुहम्मद – अनुराग बाँसुरी, पृ. 168
7. शेख रहीम– प्रेमरस, पृ. 117
8. नूरमुहम्मद– अनुराग बाँसुरी, पृ. 134
9. मंझन – मधुमालत, पृ. 96
10. कासिमशाह – हंसजवाहिर, पृ. 154
11. नसीर – प्रेमदर्पण, पृ. 52
12. नूरमुहम्मद– इन्द्रावती, पृ. 44
13. जायसी – पद्मावत, पृ. 44
14. शेख रहीम – भाषा प्रेमरस, पृ. 60
15. ईरान के सूफी कवि, पृ. 170

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 33-35

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुधा अरोड़ा के साहित्य में नारी चेतना

–अनिता कुमारी

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सातवें दशक की चर्चित कथा लेखिकाओं में सुधा अरोड़ा जी का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होने नारी संघर्ष को मुखरित करने का सार्थक प्रयास किया है। 'हेल्प' संस्था से जुड़कर महिलाओं की समस्याओं को नजदीक से उन्होने देखा है उनके साथ बहुत साल काम किया, उनकी तकलीफ को बहुत नजदीक से समझा। उनकी समस्याओं को देखा, परखा और अपने विचारों को साहित्य में व्यक्त कर लोगों तक पहुँचाया। पुरूषात्मक सत्ता के बोझ तले नारी 20वीं शताब्दी में भी घुटन का अनुभव कर रही है किंतु आज नारी शिक्षित होने के कारण अब वह पुरूष के पैरों तले दबने के लिए मजबूर नही है। समाज में नारी की भी अपनी स्वतंत्र पहचान एवं सत्ता है।

सुधा अरोड़ा जी ने अपने वैचारिक लेखन को कार्य रूप में भी परिणत किया है इसलिए उनकी संस्मरणात्मक पुस्तकों में यदि नारी के भोगे यथार्थ का वर्णन है तो साथ ही साथ समाज सेवी संस्थाओं के अनुभवों से प्राप्त सच्ची घटनाओं का भी वर्णन है। यदि सुधा अरोड़ा के समस्त साहित्य के आधार पर नारी के विभिन्न रूपों और उससे संबंधित समस्याओं का विवेचन किया जाये तो उनके साहित्य के आधार पर अलग–अलग रूपों को प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि हम शिक्षित वर्ग के पुरूषों और नारी के संबंधों को देखे तो पुरूष द्वारा नारी को दी जाने वाली मानसिक हिंसा के उदाहरण देखने को मिलते है। वहीं दूसरी ओर निम्न स्तर नर जीवन यापन करने वाली नारी शारीरिक हिंसा की भयावह स्थिति से जूझ रही है। हिंसक पुरूष अपनी तमाम कुंठाओं को अपनी पत्नी को प्रताड़ित कर निकालने की कोशिश करता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'ताराबाई चॉल : कमरा नंबर एक सौ पैंतीस' के पति–पत्नि के बीच संबधों में एक ओर क्रूरता है तो दूसरी ओर घृणा।'' हमेशा की तरह उसके मरद ने सहवास के बाद आदतन बीड़ी सुलगाई थी और आखिरी कश खींच कर उसके बाएँ वक्ष पर जलती सलाई सा चुभो दिया था।'' यह एक हिंसक पुरूष की प्रताड़ना का चरम है। सुधा अरोड़ा की कहानियों की नायिकाएँ जब अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करती है, परिवार और विवाह का विरोध करती है तो वे केवल पुरूष–वर्चस्व से ही विद्रोह नही करतीं बल्कि परम्परा से चली आ रही है तमाम रूढ़ियों से भी संघर्ष करती है। 'स्वप्न जीवी' कहानी की नायिका 'चित्रा दी' आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वैवाहिक जीवन के संस्कारों के प्रति उसके मन में आक्रोश है वह कहती है – ''हिन्दुस्तानी लड़कियों के दिमाग ही मजबूत नही होते है। वह एकनिष्ठ बनती है। पूछो भला ! वह उधर विदेशी लड़की के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा है और यह उसके नाम को रो रही है। जिसके साथ इतने महीने 'टेंशन' में काट दिए उसके भावुकता? ''नारी धैर्य व साहस की प्रतिमूर्ति है किन्तु उसकी यह सहिष्णुता धीरे–धीरे विद्रोह में बदल रही है।

सुधा अरोड़ा जी ने मध्यम वर्ग की स्त्रियो का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है कैसे उसे पुरूष वादी समाज में दबाया जाता है। पुरूष चाहता है कि महिला कम से कम खर्च पर घर चलाए। घर के साथ रख रखाव में तालमेल हो, साज – सज्जा ऐसी हो कि घर के आईने में उसकी आदर्श गृहिणी की छवि साफ नजर आए। पुरूष काम करता, पैसा कमाता

घर की पूरी जिम्मेवारी महिलाओं को सौंप देता है। यहॉ यह भी देखा जाता है कि महिला द्वारा घर–खर्च में किए गए रूपयों का हिसाब–किताब पुरूष कैसे रखता है और महिला के हाथो खर्चो का सारा हिसाब डायरी पर लिखवाता और फिजूलखर्ची पर लाल निशान लगा देता है – ''जैसे इतनी सी दूर पैदल क्यों नही आई ऑटो के सात रूपये क्यों खराब किए? या पैकेट बंद आटा क्यों लिया? गेहूँ लेकर पिसवाने से पॉच किलो में पन्द्रह रूपये बचते है।'' आदि कहानियों में प्रयुक्त ऐसे जुमले है जिनका प्रयोग मौके–बे–मौके वह अपनी पत्नि से करता दिखता है।

सुघा अरोड़ा जी ने बेटी और बहू के फर्क को बहुत अच्छी तरह से दिखलाया है। कैसे बहू के साथ अपने ही घर में पराये की तरह व्यवहार किया जाता है। घर की बेटी 8 बजे भी उठे एक माँ को सब सही लगता है पर वही उनकी बहू 8 बजे उठे तो उसे बुरा लगता है। बहू की बुराई सभी के पास करेगी क्योंकि वह दूसरे की बेटी होती है उसके मन में इसका क्या प्रभाव होगा कितना दर्द होगा उससे कोई लेना देना नही है। सुधा अरोड़ा जी ने बहुत ही सुन्दर वर्णन 'बेटी' संज्ञा, 'बहू' सर्वनाम' नामक कहानी में किया है। यह पहचानना कतई मुश्किल नहीं है कि कौन सा संवाद किसके लिए कहा जा रहा है। आप अपने पड़ोसन के घर जाते है, एक ही उम्र की दो लड़कियाँ है – एक अनब्याही बेटी है और एक ब्याह कर लाई बहू। दोनो के लिए अलग–अलग संबोधन है, अलग–अलग मापदंड है। बेटी 'संज्ञा' है जिसका एक नाम है। घर में एक बहू भी है जो नाम होते हुए भी 'यह – वह', 'इस उस' के सर्वनामों से जानी जाती है – ''अपनी गुड्डी तो इतना बढ़िया खाना बनाती है कि पूछो मत खाने वाला उंगलियॉ चाटता रह जाए ..... गुड्डी के ऑफिस में सब उसकी तारीफें करते है, मजाल है कि काम आधा छोड़ कर उठ जाए। कई बार तो गुड्डी को घर आते–आते दस बजे जाते है ..... अभी सो रही है, एक रविवार ही तो मिलता है सोने के लिए। शुरू से ही बड़े लाड़ प्यार में पली है हमारी गुड्डी .....। '' घर में बेटी के लिए सब जायज है उसे पुरी आजादी दी जाती है। पर यही आजादी एक बहू चाहे तो उसे तो मना ही है। बहू को तो घर का सारा काम करके फिर बाहर काम भी देखना पड़ता है। पति–बच्चों की जिम्मेवारी भी संभालनी पड़ती है। बहू को बेटी जैसा स्थान घर में प्राप्त नही है।

यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है। सुधा अरोड़ा जी ने मध्यम वर्गीय परिवार की घटनाओं को बहुत ही सुन्दर ढंग से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। यहाँ नायिका (चित्रा) अपने पसंद से शादी करती है। उसका एक बेटा और सास है। उसका छोटा परिवार सुखी परिवार था पर पुरूष यानी दिवाकर इन सब रिस्तों के सिवा एक दूसरी औरत के साथ भी संबंध रखता है। जिससे परिवार में हमेशा तनाव का माहौल बना रहता है।

यह एक उदाहरण है पुरूष के उच्छश्रृंखल व्यहार का जहाँ से पत्नि से संबंधों में ईमानदारी की अपेक्षा है लेकिन स्वंय के लिए सारी छूट है। पत्नि से कहता है – ''तुझसे मेरी खुशी देखी नहीं जाती थी। मैं खुश था तो तेरी छाती पे सांप लोट रहा था। तेरा घर ,तेरी जगह, तेरा ओहदा सब सुरक्षित था। तेरी मिसेज मल्होत्रा होने की सीट रिजर्व थी यहॉ। उस पर कोई डाका नहीं डाल रहा था, फिर तुझे क्या परेशानी थी, किस बात की तकलीफ थी तुझे? मैं तुझे छोड़ तो नही रहा था।'' अर्थात इसकी नाराजगी पत्नी के उस व्यवहार से है जहॉ उसे आपति है पति के दूसरी औरत से नाजायज संबंध पर। ऐसी कहानियों को देखने से लगता है कि सुधा अरोड़ा पुरूष के ऐसे व्यवहार क्षुब्ध है और नारी को आवाज उठाने के लिए सशक्त करना चाहती है।

सुधा अरोड़ा जी ने नारी–विमर्श पर विचार करते हुए नारी के एक और रूप का वर्णन किया है जहॉ नारी ही नारी की दुश्मन बन जाती है। 'बड़ी हत्या छोटी हत्या' कहानी की सास पुरानी परंपरा का निर्वाह करती हुई अभी – अभी जन्मी पोती की हत्या इसलिए करवाती है क्योंकि वह लड़की है। बेटियों के पैदा होते ही गला दबा कर मार देना पुराने जमाने के लिए आम बात थी जिसका वर्णन इस प्रकार है – ''सास ने चिलम सरकाई और बंधी मुट्ठी के अंगुठे के नीचे झटके से फेककर मुट्ठी खोल कर हथेली से बुहारने का इशारा कर दिया दबा दो।'' इसी प्रकार यहीं कहीं था घर' में

– उपन्यास की सुजाता को अपनी सास के वैयक्तिक अहं के कारण बहुत कुछ झेलना पड़ता है। सास को सास का रौब दिखाना है। – इसका वर्णन सुधा अरोड़ा जी ने बहुत ही मार्मिक रूप से किया है – ''नई नवेली सास का ओहदा संभालती श्रीमती जुनेजा ने दमकते चेहरे से हक जताते हुए अपनी बहू से कहा। सुजाता उर्फ रेणुका और नरेन्द्र जुनेजा एक कतार में सारी बड़ी–बूढ़ियों को मत्था टेकते आगे बढ़ जाए।'' अर्थात सुजाता की इच्छा का सम्मान नही किया जाता है बल्कि आदेश दिया जाता है कि सभी के पॉव छूना उसका कर्तव्य है।

इस प्रकार सुधा अरोड़ा जी स्त्री जीवन के विविध पक्षों को बड़ी संवेदनशील दृष्टि से देखा परखा और अत्यन्त सादगी के साथ अभिव्यक्त किया। उन्होने निम्न वर्ग से लेकर मध्यम एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों की मनः स्थितियों को बहुत ही सुक्ष्म दृष्टि से समाज के सामने प्रस्तुत किया हैं सुधा अरोड़ा जी ने अपनी भाव पूर्ण दृष्टि से महिलाओं को दृढ़ विश्वास, मजबूती और आत्मबल की ओर अग्रसर किया।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. ताराबाई चॉल : कमरा नंबर एक सौ पैंतीस, एक औरत की नोटबुक – पृ0 49, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली – 2015
2. काँसे का गिलास पृ0 – 102
3. यह भिक्षापात्र विरासत में देने के लिए नहीं है ..... सुधा अरोड़ा, आम औरत जिंदा सवाल – पृ0 – 43, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2018
4. 'बेटी' संज्ञा, 'बहू' सर्वनाम आम औरत जिंदा सवाल पृ0 – 54 सुधा अरोड़ा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
5. यह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है :– सुधा अरोड़ा, यहीं कहीं था घर पृ0 –156 सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण – 2010 दूसरा संस्करण – 2016
6. बड़ी हत्या, छोटी हत्या, सुधा अरोड़ा एक औरत की नोट बुक, पृ0 – 60 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2015
7. यहीं कहीं था घर – पृ0 – 135 सुधा अरोड़ा, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2010, दूसरा संस्करण – 2016

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 36-39

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामायण में प्रेम के विविध स्वरूप

–डॉ. अर्चना हजारिका

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, नॉर्थ लखीमपुर कॉलेज, लखीमपुर, असम–पिन कोड– 787031

महर्षि वाल्मीकि जी को शत–शत प्रणाम जिन्होंने रामायण जैसा ग्रंथ लिखकर आने वाले पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त किया। रामायण भारत की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। रामायण प्रेम की एक अद्‌भुत कहानी है। इसमें हमें प्रेम के विविध स्वरूप का वर्णन मिलता है। रामायण मूलतः संतान और माता–पिता के प्रेम, भातृ प्रेम, स्त्री–पुरुष के प्रेम तथा स्वदेश प्रेम की भावना से पूर्ण एक अनोखा ग्रंथ है, जिसने सदियों से सभी पाठकों को आकर्षित किया है। इसीलिए इस ग्रंथ के रचनाकाल से लेकर अब तक इसके महत्व में, गरिमा में कोई कमी नहीं आया है।

रामायण में उपलब्ध प्रेम के विविध स्वरूप केवल भारत के लिए ही नहीं पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय है जो इस प्रकार है :–

पति-पत्नी का प्रेम :-

भारतीय संस्कृति में राम–सीता की जोड़ी को आदर्श जोड़ी माना जाता है। पति और पत्नी के संबंध में जितनी श्रेष्ठता राम–सीता को मिलती है वह अन्यत्र मिलना कठिन है। राम और सीता की प्रेम कहानी के सामने दुनिया के बाकी सब प्रेम कहानी फ़ीकी है। उनका प्रेम शारीरिक प्रेम नहीं बल्कि आत्मिक प्रेम है। उनके प्रेम में एक दूसरे के प्रति आदर है सम्मान है । पत्नी को अपनी अर्धांगिनी मानने के साथ साथ उसके बिना खुद को अधूरा मानने का आदर्श भी इस अद्‌भुत प्रेम कहानी में मौजूद है। जब श्रीराम को पिता दशरथ ने वन जाने का आदेश सुनाया तब राम अकेले ही वन की और निकले परंतु सीता इसके लिए तैयार नहीं हुई और वह भी अपने पति राम के साथ ही वन गमन के लिए तैयार हुई। राम ने वन में होने वाले कष्टों का वर्णन करते हुए साथ ले जाने से मना किया। तब सीता ने पति श्रीराम को समझाया कि एक स्त्री के लिए तो उसका स्वामी ही सब कुछ है। उसका हर रिश्ता–नाता सिर्फ उसके पति से ही है तो पति के बिना राजकीय सुख का क्या फायदा?

अस्य प्रसादादाशंसे लोके अस्मिन्सूमहद्यशः।
धर्मावाप्ति च विपुलामर्थसिद्धि च केवलाम।।
सोहं प्रियतमं रामं शयानं मह सीतया।
रक्षिप्यामि धनुष्पाणिः मर्वतो ज्ञातिभिईतः।।

राम और सीता के प्रेम का और भी सुंदर रूप का दर्शन तब होता है जब वे दोनों वन में होते हैं। वनमार्ग पर चलते चलते सीता थक कर जब जमीन पर बैठ जाती है तब अपनी पत्नी की दशा देखकर श्रीराम के आँखों में आँसू आ जाते है। फिर मार्ग पर चलते चलते जब सीता के पैरों मे कांटे चुभते है तब राम सीता को प्यार से बिठाकर पाँव से काँटे निकालते है। पति राम से अपने प्रति यह प्रेम देखकर सीता भाव–विह्वल हो उठती है।

अपनों के प्रति श्रीराम का व्यवहार अत्यंत कोमल और सहानुभूतिपूर्ण है। सीता के प्रति श्रीराम के प्रेम भावना के

वर्णन में आदि कवि वाल्मीकि ने राम के मानसिक तत्व का सूक्ष निरीक्षण प्रस्तुत किया है। वन में सीता श्रीराम पर आश्रित है ,परंतु श्रीराम उनकी रक्षा नहीं कर पाये। सीता राम की पत्नी, अर्द्धांगिनी, सहचरी है और शास्त्र में कहा गया है कि अपनी पत्नी की रक्षा करना पति का पहला धर्म है। परंतु राम अपने कर्तव्य के पालन में असफल रहे। सीता श्री राम की प्रियतमा है। परम सुख की साधिका है। परंतु सीता के वियोग में राम का हृदय शोक में डूबा हुआ है इसीलिए वे सीता के साथ बिताए हुये मधुर आनंदमयी क्षणों को याद करते है। यह सीता के प्रति राम के हृदय में जो प्रेमानुभूति है उसका ही उदाहरण है :–

इयां सा यतकृते रामश्चतुर्तिः परितपाते।
कारुणोनानृशंगसोन शोकेन मद्नेन चा।।
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेती मद्नेन च।।[1]

रामायण में सीता एक आदर्श भारतीय नारी का प्रतीक है। सीता के मन में भी राम के अलावा किसी दूसरे पुरुष के लिए कोई स्थान नहीं है। रावण के बार–बार कहने पर भी सीता ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जिस कारण सीता भारतीय नारी के लिए महान आदर्श का प्रतीक बन जाती है।

चरणेनापि सबोन न स्पृशेयां निशाचरम।
रावनं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम।।[2]

अर्थात, "इस निशाचर रावण से प्रेम करना तो दूर की बात है, मैं इसे अपने पैरों से नहीं, नहीं बाए पैर से भी स्पर्श नहीं करूंगी।" राम–रावण के युद्ध का मूल कारण ही प्रेम है।

राम–सीता के अलावा लक्ष्मण और उर्मिला भी पति–पत्नी के प्रेम का सुंदर उदाहरण है। अपने पति के प्रति प्रेम के कारण ही उर्मिला राजमहल में रहकर भी चौदह साल तक एक तपस्विनी जैसा बिताती है अपना जीवन। उन सभी राजकीय सुखों का वह त्याग करती है जिनसे उसका पति लक्ष्मण भी वंचित है। ठीक उसी प्रकार अपनी पत्नी उर्मिला के प्रेम के कारण ही लक्ष्मण बन में सूर्पनखा के प्रेम को ठुकराते है।

भातृ–प्रेम :–

भातृ प्रेम का अनन्य निदर्शन रामायण के अलावा अन्य कहीं मिलना अत्यंत दुर्लभ है। रामायण में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चारों भाईयों का एक दूसरे के प्रति जो प्रेम है वह अद्भुत, अनोखा और बेमिसाल है। लक्ष्मण भातृ प्रेम का प्रतीक है। श्रीराम के वन गमन के समय लक्ष्मण भी बड़े भाई राम के साथ वन जाने के लिए तैयार होते है तब श्री राम भाई लक्ष्मण को समझाते है कि तुम राजमहल में रहकर माता सुमित्रा, कौशल्या और कैकयी की रक्षा करना। परंतु राम के अनेक समझाने पर भी लक्ष्मण नहीं माने और अपना प्राण त्यागने की बात करने लगते है। अंत में श्रीराम लक्ष्मण को अपने साथ ले जाने के लिए मान जाते है। श्रीराम के प्रति प्रेम भावना के कारण ही लक्ष्मण अपनी पत्नी उर्मिला को भी त्याग कर चौदह साल के लिए बन चले जाते है ताकि वन में वे बड़े भाई की रक्षा कर सके। लक्ष्मण के भातृ प्रेम को देखकर राम ने अपने मन के उद्गार को इस प्रकार व्यक्त की है :–

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च वांधवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।[3]

अर्थात, "मनुष्य को देश देश में पत्नी और मित्र तो मिल सकता है, परंतु मेंने ऐसा देश नहीं देखा जहां तुम जैसा भाई मिल सके।

पिता दशरथ द्वारा श्रीराम को वन गमन का आदेश देने की संदेश सुनकर लक्ष्मण अत्यंत क्रोधित हो जाता है और

वह अपने पिता को ही दण्ड देना चाहते है और भातृ राम से कहते है –

"कौन राजा स्त्री की बात सुनकर धर्मनीति को नष्ट करते है? हे राम, तुम्हारे शत्रु भी तुम्हें देखने के बाद तुम्हें प्रेम करने लगते है – परंतु हमारे ये स्त्रीवश पिता ने तुम्हें वनवास में भेज दिया। हे भ्राता, चलिये हम एक साथ मिलकर राजा से सिंहासन छीन लेते है और खुद राज्य का शासन संभालते है। किसमे इतनी हिम्मत है कि हमारा सामना करे? जो भी हमारे सामने आयेगा उसका अंत मैं करूंगा। आप बस आदेश दीजिये।"[4] लक्ष्मण भातृ प्रेम के कारण ही कुछ क्षण के लिए अपने संस्कार तथा मर्यादा को भी भूल जाता है।

भरत भी भातृ प्रेम का सुंदर उदाहरण है। राम के वन गमन के बाद भरत चाहता तो अयोध्या नागरी का राजा बनकर सुखमय जीवन बिता सकता था लेकिन भरत ने ऐसा नहीं किया। भरत ने अपने बड़े भाई श्रीराम के चरण पादुका को ही राजसिंहासन में रखकर राजकार्य को संभालते है। भरत, लक्ष्मण के अलावा राम के चरित्र में भी भातृ प्रेम का निदर्शन परिलक्षित होता है। राम महाप्रतापी राजा थे, साहसी थे। अगर वे चाहते तो पितृ आदेश का पालन न कर अपने भाई भरत को दंडित कर राज्य पर शासन कर सकते थे परंतु उन्होंने भरत के प्रति प्रेम भावना के कारण ऐसा कुछ नहीं किया।

माता-पिता और संतान का प्रेम :-

रामायण माता–पिता और संतान प्रेम का उत्कृष्ट निदर्शन है। माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी तीनों ही अपने पुत्रों से प्रेम करते है माता कैकयी के हृदय में बड़े बेटे राम के लिए अत्यंत स्नेह और प्रेम की भावना थी और वह राम की गुण गाती रहती थी। इसीलिए जब मंथरा ने राम के राज अभिषेक के बारे में कहा तो कैकेयी आनंदित हो उठती है और मंथरा से कहती है – "मंथरा तुम मेरे लिए शुभ संदेश लेकर आई हो। तो पुत्र राम के राज अभिषेक कल ही होगा? इससे आनंद की बात और क्या हो सकती है, ये लो। और कुछ चाहिए तो कहो।"[5] यह कहकर कैकेयी ने अपने गले से एक हार निकालकर मंथरा को दे दिया। कैकयी श्रीराम को अपने बेटे भरत से भी ज्यादा प्रेम करती थी परंतु कुटिल मंथरा के कोप से कैकयी ने पारिवारिक एकता और सौहार्द को नष्ट कर दिया और प्रिय पुत्र राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास भेज दिया।

रामायण में राजा दशरथ का चरित्र एक आदर्श महाराजा, पुत्रों को प्रेम करने वाले स्नेहशील पिता और अपने वचनों के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति के रूप दर्शाया गया है। पुत्र प्रेम के कारण ही कौशल्या ने बार बार राम को वन जाने से रोका। पुत्र प्रेम के कारण ही राम का वियोग न सह पाने पर राजा दशरथ का प्राणांत हो जाता है।

राम अपने पिता दशरथ से बहुत प्रेम करते थे। प्रेम भावना के साथ–साथ उनके मन में पिता के प्रति अपार श्रद्धा तथा आदर भी था। पिता के एक वचन श्रीराम के लिए अपने प्राणों से बढ़कर था। पिता के प्रति प्रेम भावना के कारण ही राम पितृ के वचन को निभाने के लिए वन गमन के लिए तैयार हुए। अगर श्रीराम चाहते तो वे उस कष्टमय जीवन को स्वीकार न कर सुखमय राजकीय जीवन जी सकते थे, लेकिन नहीं उन्होंने ऐसा नहीं किया। बिना कुछ कहे वे चौदह साल तक तपस्वी बनकर वन में रहे। अतः हम कह सकते है कि श्रीराम पूर्ण रूप से पितृ प्रेम का ही प्रतीक है।

स्वदेश प्रेम :-

लंका नागरी से अयोध्या वापस आने के बाद राम ने सीता की अग्नि परीक्षा ली। यह अग्नि परीक्षा क्यों लिया गया और किसके लिए लिया गया? प्रजा के लिए। अपने देश के प्रजा के लिए। अपने देश के प्रजा को संतुष्ट करने के लिए राजा होने के वावजूद भी श्रीराम ने अपनी पत्नी सीता को एक साधारण नारी की तरह दंडित किया। राम अपने देश से, अपने प्रजा से बहुत प्रेम करते थे। अपने प्रजा को सुखी रखना वे अपना कर्तव्य मानते थे। लंका नगरी से अयोध्या वापस आने के वाद जब राज्य के प्रजागण में सीता के चरित्र के संबंध में संदेह का आभास मिला, तब श्रीराम प्रजा के

हित के लिए सीता का परित्याग करते है, उनका तिरस्कार करते है :–

करू पुमांगस्तु कुले जातः स्त्रियां परगृहोषीता।
तेजस्वी पुनरादद्यात सुह्रल्लोभेन चेतसा।।
रावनांक – परिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यात कुलं व्यपदिशन्महत।।[6]

अर्थात, जो स्त्री बहुत लंबी समय तक दूसरों के घर में रहती है, कौन से संभ्रांत, तेजस्वी पुरुष प्रेम के मोह माया के कारण उस स्त्री को फिर से अपनायेगा? रावण ने तुम्हें गलत नज़र से देखा है, तुम्हें गोद में लिया है। अतः मैं तुम्हें फिर से अपनाकर अपने कुल की गरिमा को, अपने महान वंश के सम्मान को कलंकित नहीं कर सकता।

इस प्रकार हमें रामायण में प्रेम के अनेक स्वरूपों का वर्णन मिलता है, जो अनंतकाल तक सबके लिए अनुकरणीय है। इसके अलावा भी रामायण में प्रेम का अन्य एक सुंदर निदर्शन है भक्त हनुमान तथा जटायु का प्रभु श्रीराम के प्रति प्रेम जो मूल रूप से आध्यात्मिक है। इनका प्रेम भी भक्तों के लिए सदा अनुकरणीय है। इन्हें श्रीराम के सबसे श्रेष्ठ भक्त माना जाता है।

रामायण भारतीय सभ्यता का प्रतीक है। भारतबर्ष के कोटी कोटी जनता के लिए, शिशु के लिए रामायण सिर्फ एक कहानी नहीं है। कोई भी मनुष्य अपने जीवन के सत्य घटनाओं के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त करते है उससे कई गुणा ज्यादा ज्ञान की उपलब्धि होती है रामायण से। भातृ प्रेम के आदर्श के रूप में लक्ष्मण और भरत का चरित्र, सेवक आदर्श के रूप में हनुमान का चरित्र, सती और पतिव्रता नारी के रूप में सीता का आदर्श आनेवाले पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है।

सूत्र निर्देश :–

1. रामलभाया पं०, वाल्मीकीय – रामायाणम (अयोध्या – कांडम), प्रकाशक – रिसर्च डिपार्टमेंट, डी. अ. भी. कॉलेज, लाहोर, प्रथम संस्करन, सन 1928 पृष्ठ– 217 ।
2. देव गोस्वामी, श्री हरमोहन, संस्कृत साहित्यर बुरंजी (History of Sanskrit Literature), प्रकाशक – बुकलेंड, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 54
3. वही, पृष्ठ– 54
4. वही, पृष्ठ– 54
5. राजागोपालाचारी, चक्रवर्ती, कथा – रामायण (अनुवाद– प्रदीप शइकिया), वनलता प्रकाशन, बारहवां संस्करण, 2018, पृष्ठ– 52
6. देव गोस्वामी, श्री हरमोहन, संस्कृत साहित्य बुरंजी (History of Sanskrit Literature), प्रकाशक – बुकलेंड, गुवाहाटी, प्रथम संस्करन, पृष्ठ– 54
7. राजागोपालाचारी, चक्रवर्ती, कथा – रामायण (अनुवाद– प्रदीप शइकिया), वनलता प्रकाशन, वारहवा संस्करन, 2018, पृष्ठ– 74।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 40-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मंगलेश डबराल की कविताओं में प्रणय भावना : एक अवलोकन

–अरूंधति मोहन

शोधछात्रा, हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम, केरल–695581

प्रेम एक ऐसी अनुभूति है, जिससे पाने वाला पागल बन जाता है।

"हे री
मैं तो
प्रेम दीवानी
मेरो दर्द
न जाने कोई!
घायल की गति
घायल जाने
जो कोई घायल होय।" –मीराबाई

प्रस्तुत पंक्तियाँ कृष्ण भक्ति में विलीन होकर रहने वाली बावली कवयित्री मीराबाई की है। मीराबाई कहती है मैं तो प्रेम दीवानी है। मेरे दर्द को कोई जानता है। घायल की दर्द केवल घायल व्यक्ति को ही जानता है। मंगलेश डबराल अधुनातन हिंदी साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रेम की प्रतिष्ठा अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। कवि के अनुसार प्रेम को विविध रंग होते हैं। प्रेमी और प्रेमिका इन विविध रंगों में डूब जाते हैं। साथ ही प्रेम रूपी अनुभूति विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न रूप का धारण करती है। 'तुम्हारा प्यार 'कविता में कवि की पंक्तियां इस प्रकार है :–

"तुम्हारा प्यार लड्डू का थाल है
जिससे मैं खा जाना चाहता हूं
तुम्हारा प्यार एक लाल रुमाल है
तुम्हारा जिससे मैं झंडे सा फहराना चाहता हूं
तुम्हारा प्यार एक पेड़ है
जिसकी हरि ऑटो से मैं तारों को देखता हूं।[1]

प्रेम की मधुर स्मृतियों में डूबने वाला व्यक्ति खुद को खो बैठता है। कभी–कभी प्रेमी और प्रेमिका के बीच छोटी सी चीजों पर झगड़ा हो जाते हैं। कमजोर व्यक्तियों के लिए तब प्रेम एक पत्थर है। जिन्होंने उस पत्थर को टुकड़ों में विभाजित किए बिना उड़ा है, वह सफल बन जाएगा। यदि उस पत्थर को टुकड़ों में विभाजित करेंगे, तब प्रेम एक हत्याकांड बन जाएगा। कवि कहते हैं :–

"वह कोई बहुत बड़ा मीर था
जिस ने कहा प्रेम एक भारी पत्थर है

कैसे उड़ेगा तुझ जैसे कमजोर से
मैंने सोचा
इससे उड़ाओ टुकड़ों टुकड़ों में
पर तब वह कहां होगा प्रेम
वह तो होगा एक हत्याकांड।"[2]

प्रेम में डूबे हुए व्यक्ति एक काल्पनिक संसार में जीता है। यह सपना देखता रहता है और दुख से उबरने के लिए प्रेम की कल्पना करता है। प्रेमिका को देखने के लिए कवि को एक बार कल्पना करना पड़ा और उसी क्षण वह पास आ जाती है।

"मैं तुम्हारी कल्पना की
ताकि तुम्हें देखने के लिए
फिर से कल्पना न करनी पड़ी।"[3]

जीवन की भाग दौड़ में प्रेमी और प्रेमिका ऊब हो चुके है। रात हो जाने पर पहाड़ का दरवाजा खुलता है। उस दरवाज़े से प्रेम अंदर प्रवेश करता है।' पुनर रचनाएं' नामक कविता में कवि प्रकृति को उद्दीपन के रूप में पाकर प्रेम का वर्णन करते हैं :–

"रात में घुलता है पहाड़ का दरवाजा
रातों में घूमती है पहाड़ की खिड़की
वहां से आराम से प्रवेश करता है प्रेम।"[4]

प्रेम की अभिव्यक्ति कभी–कभी मौन उनके सहारे भी व्यक्त करते हैं। प्रेम की अनुभूति होती तो आदमी चुप हो जाएगा और शब्दों को छोड़ देंगे।

"प्रेम होगा तो हम कहेंगे कुछ मत कहो
प्रेम होगा तो हम कुछ नहीं कहेंगे
प्रेम होगा तो चुप होंगे हम
प्रेम होगा तो हम शब्दों को छोड़ आएंगे।"[5]

प्रेमी व्यक्ति दिमाग से नहीं दिल से सोचते रहते हैं। उसके अंदर में राग आलाप विराजमान है और शरीर बर्फ से ढक गए हैं। मंगलेश जी कहते हैं –

"जब बर्फ गिरेगी और सन्नाटा होगा
हम कहेंगे यह प्रेम है।"[6]

प्रेम दो व्यक्तियों के बीच का ऐसा पुल है जिसको विश्वास रूपी धागे से जोड़ देते हैं लेकिन एक तरफा प्रेम में व्यक्ति विश्वासघात करता है। वह अभिनय करेगा और दूसरा अपना सर्वस्व न्योछावर कर के ईमानदारी से उसके पीछे–पीछे चलेगा। 'स्त्रियां' नामक कविता में ऐसी स्थिति का वर्णन है।

"देखो उस स्त्री को एक पुरुष से प्रेम करते हुए
उसका चेहरा याद आता है
वह कितने लंबे समय से करती आ रही है प्रेम
उसके पीछे पीछे चलती है।"[7]

प्रेम में चुम्बन भी एक अंग है। 'चुंबन' नामक कविता में मंगलेश जी की राय में चुंबन के पीछे मनुष्य जाति का

इतिहास भी होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मंगलेश जी की कविताओं में प्रेम भावना सुरक्षित है। क्योंकि पुरुष हो या स्त्री हो दोंनो की प्रेम संकल्पना के बारे में कवि भावविभोर हो जाते हैं। कवि खुद एक प्रेमी है। उन्होंने सफल और असफल दोंनो प्रेमों पर अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। उनकी राय में प्रेम विहीन मानव जीवन जेल के समान है। प्रेम का पाठ नामक कविता के ज़रिए उन्होंने प्रेम का तथ्यात्मक अध्ययन किया है।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि मंगलेश जी कविता में प्रणय की भावना यथार्थबोध के सहारे चित्रित किया है। उसमें प्रेम की पीर है बिहारी के दोहों के समान। प्रेम की पुकार है, साथ ही प्रेम की आध्यात्मिक स्वरूप भी मौजूद है।

संदर्भ :-

1. मंगलेश डबराल की प्रतिनिधि कविताएं, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ सं 32
2. वही, पृ सं, 44
3. वही, पृ सं, 68
4. वही
5. वही, पृ सं 69
6. वही, पृ सं 71
7. वही, पृ सं 77

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 43-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित साहित्य में प्रेम की पुकार

–डॉ. आशीष कुमार

सह आचार्य समाजशास्त्र, एस.जी.जी. राजकीय महाविद्यालय, बाँसवाड़ा

सारांश :

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्य में तद्युगीन समाज का प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक स्थिति किसी–न–किसी रूप में परिलक्षित होती है। उसमें सामाजिक जीवन, व्यवस्था, सामाजिक समस्या तथा उस पर उपायों की चर्चा होती है। जाति–व्यवस्था, मानवीय असमानता, शोषण के प्रति विद्रोह इत्यादि स्थितियों को चित्रित करने वाला साहित्य, समाजवादी समाज रचना एवं प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित है। वर्तमान समय में नारी विमर्श और दलित विमर्श बहुचर्चित विषय हैं। वर्तमान में ही नहीं अपितु महात्मा फूले, शाहू, अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों ने भी सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है। शोषित, अपमानित दलित अस्मिता, अधिकार की रक्षा के लिए संघर्ष करने लगा। सामान्यतः दलित समाज के जीवन से जुड़ी रचना – 'दलित साहित्य'। जाति–व्यवस्था को नकारने वाला, शोषित मानव की व्यथा बताने वाला साहित्य 'दलित साहित्य', दबे कुचले लोगों की वाणी दलित साहित्य, विद्रोही, संघर्षरत मानव की आत्मवेदना दलित सा हित्य है। दलित द्वारा लिखी गई दलितों की मर्मवेदना को दलित साहित्य माना गया है। इसके विपरीत गैर दलितों द्वारा परानुभूति के बल पर शोषित मानव का किया अंकन भी दलित साहित्य ही है।

दलित साहित्य को व्यापक रूप से परिभाषित करते हुए प्रसिद्ध दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं – 'दलित साहित्य का बिन्दु विवेकहीन नहीं है बल्कि उसकी अन्तः चेतना का हिस्सा है जो समकालीनता की अवधारणाओं को दृढ़ता प्रदान करता है। वह जड़ता के विरूद्ध समय की जरूरत के साथ प्रतिबद्धता और बदलाव की प्रक्रिया के प्रति सचेत है। इसलिए एक नई चेतना का उन्मेष दलित साहित्य की अवधारणाओं का विशिष्ट अंग है। इसी आधार पर दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र विकसित हो रहा है। जाति–व्यवस्था का विरोध करते हुए हिराडोम, रैदास, कबीर जैसे भक्तों, कवियों ने अपनी बोली में रचनाएँ लिखी। महात्मा फूले, शाहू, अंबेडकर जैसे समाज सुधारकों ने समाज–व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया। शोषित, अपमानित दलित अपनी अस्मिता और अधिकार के लिए संघर्ष करने लगा। महाड़ आन्दोलन, मिर्चपुर कांड, कालाराम मंदिर प्रवेश, मनुस्मृति जलाना, माणगाव परिषद् दलित छात्रावास एवं आरक्षण सुविधा आदि इसके प्रमाण है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार से दलित अपनी व्यथा, चिंता एवं अपनी स्थिति को शब्द बद्ध करने लगा और इस प्रकार साहित्य का सृजन आरंभ हुआ। हजारों बरसों से दबी भाव धाराएँ, लावा बनकर भ्रष्ट व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए कार्यरत हैं, समता, समानता, बंधुता का प्रचारक साहित्यकार समाज तथा सामाजिक अस्मिता से जुड़ा रहा।

प्रमुख शब्द : दलित अस्मिता, सौंदर्यशास्त्र, दलित साहित्य, उद्घोष, जाति–व्यवस्था।

भारत में दलित साहित्य का उदय :

भारतीय संस्कृति की प्राचीन समय से चली रही सामाजिक वर्ण व्यवस्था को समझने के लिए हमें ओर के उक्त

विचारों से प्रेरणा मिलती है। हिंदूओं के ग्रन्थ में स्वर्ग की जो संकल्पना की गई है, वह यही है कि बिना श्रम के तमाम तरह के ऐश्वर्य के साधना पाना उर्वशी, रंभा जैसी अप्सराओं के कामुक नृत्यों को देखना ही हमारे देवताओं का एक मात्र स्वर्गलोक रहा है। जिस में श्रम करनेवालों को सदैव तुच्छ हेय दृष्टि से देखा गया। दलित साहित्य के प्राचीन संस्कृति कालीन रचनाकारों की रचनाओं एवं सामाजिक स्थिति का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि महर्षि वाल्मिकी के युग में वर्ण व्यवस्था ऐसी थी कि एक वर्ण का व्यक्ति अपने गुणों के आधार पर दूसरे उच्च वर्ण में पहुंच सकता था। ऋषि–विश्वामित्र, वशिष्ठ, शंबूक आदि इसके दृष्टांत हैं। स्वयं वाल्मिकि ने श्री रामचन्द्र कि संतानों का लालन–पालन किया शिक्षा–दीक्षा दी।[1]

हिंदूओं में सर्वश्रेष्ठ और अपने को कुल श्रेष्ठ माननेवाले सर्वाधिक शिक्षित ब्राह्मणों के पास आज तक इस बात का कोई उत्तर नहीं है कि उनके जैसे उच्च जाति के मौजूद होने के बावजूद तथकथित अवतारी पुरुषों श्री राम, श्रीकृष्ण, महावीर, गौतमबुद्ध उनकी जाति छोडकर अन्य जातियों में क्यों जन्म लिया? श्री कृष्ण ने स्वयं उनके नाम से रची गई गीता में कहा है कि मैं संसार के प्रत्येक चर–अचर प्राणियों में मौजूद हूँ। एकलव्य के अंगूठे का बलिदान आज भी सभी दलित पिछडी आदिवासी जाति के लोगों को अंगूठा छाप बनाकर लिया जा रहा है। महाभारत से लेकर गौतमबुद्ध के जन्म तक इस देश कि सामाजिक स्थिति में लगता है कि धीरे–धीरे ये दलित शोषण के बीज अंकुराते रहे। गौतमबुद्ध के प्रादुर्भाव के पश्चात् तो समाज के कठमल्लों ने एक जेहाद ही छेड़ दिया। बौद्ध धर्म का राजनैतिक संरक्षण हटते ही हिंदू समाज के इस तयकथित उच्च वर्ग ने मानव–समानता के इस धर्म को माननेवालों की पकड़–पकड़कर हत्याएं शुरु कर दी। उनके धर्मस्थल मिटाए गए और बौद्ध धर्म को इस देश से खदेडकर निकाल दिया और बौद्ध धर्म माननेवालों को बुद्ध कहकर अपहास करते रहें।

हमारे समाज की यह विडंबना रही है कि–जिस ने भी समाज सुधारक सन्त महा मानव ने सही रास्ता दिखाया हमने उसे लेकर तुरन्त मिथक रच डाले और उसे अवतारी पुरुष मानकर उसकी पोंगा–पूजा करने लगे। दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फूले आदि संतों के लगातार संघर्ष के कारण और अंग्रेजों द्वारा शिक्षा के द्वार सभी को खोल दिए जाने के कारण सामाजिक जीवन में धीरे–धीरे चेतना जाग्रत हुई। भारतीय समाज में आदिकाल से वैदिक धर्म का वर्चस्व रहा है। जिन्होंने अपनी इच्छानुसार समाज को व्यवस्था दी। जिस में कुछ बातें सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य रहीं।

भारतीय समाज में आदिकाल से वैदिक धर्म का वर्चस्व रहा है। जिन्होंने अपनी इच्छानुसार समाज को व्यवस्था दी। जिसमें कुछ बातें सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य रही जो भेदभावमूलक तथा शोषण को बढ़ावा देने वाली थी। सवर्ण–असवर्ण के बीच में ऊँच–नीच और अस्पृश्यता आदि की भावनाएं ऐसी ही थी। इसी आधार पर अंत्यजों का शारीरिक बौद्धिक एवं आर्थिक शोषण भी किया जाता था। कहना न होगा यहाँ का बौद्ध धर्म इसी की प्रतिक्रिया में आया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने समतामूलक दृष्टि की स्थापना की। चौरासी सिद्धों में सिद्ध सरहपाद का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। अपने समय में इस विद्वान सवर्ण ने असवर्ण स्त्री से विवाह किया। भेद–भाव दूर करने का यह इनका पहला प्रयास दिखाई देता है। यह तो इन के हृदय की साहित्यिक भावना मानी जा सकती है। परन्तु जब तक वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक का अध्ययन दलित चेतना विषयक सामग्रि को ध्यान में रखकर नहीं किया जाएगा, तब तक दलित साहित्य के इतिहास का सम्यक निरीक्षण व परिक्षण नहीं किया जा सकता है। देखना आवश्यक है कि दलित चेतना का आरंभ संस्कृत वङ्मय में कहाँ से होता है और वहाँ से पालि एवं सिद्ध नाथों के साहित्य से होती हुई यह परम्परा सन्तों तक कैसे पहुँचती है और सन्तों के उसी स्वर से लेकर महात्मा फुले और गाँधी विनोभा और डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे विद्वान किस प्रकार समाज सुधार में जुटते हैं और वहाँ से विकसित होता हुआ यह समाज अब कहाँ तक आ पहुंचा है। सम्प्रति दलित साहित्य का इतिहास क्रमानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।[2]

संस्कृत वाङ्गमय :

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि की शुरुआत संस्कृत वाङ्गमय से ही होती है। संस्कृत वाङ्गमय के अंतर्गत वैदिक साहित्य उपनिषद, रामायण, महाभारत स्मृतियों तथा पुराणों में दलित चेतना स्पष्ट झलकती है। वेदों में तो सैंकडों ऐसे मन्त्र आए हैं, जो समतामूलक दृष्टि अपनाए हुए हैं :–

''सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवाव है

तेजस्वीना वधित मस्तु मा विद्वषा व हैं।''

अर्थात् हम सब मिलकर अपनी रक्षा करें। सब मिलकर भोजन करें। सब मिलकर वीर्यवान बनें। हमें तेजस्वीता प्राप्त हो। हम सब आपस में द्वेष न करें। महाभारत में बहुत सी ऐसी कहानियाँ प्राप्त होती हैं जो अन्याय, अत्याचार, शोषण, पर आधारित है। जैसे अर्जुन के भाई भीम, के साथ हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कज अपने दूसरे भाईयों के साथ समान प्रतिष्ठा और सम्मान न प्राप्त कर सका। उपनिषद् तथा रामायण पुराणों में भी तमाम ऐसे प्रसंग आए हैं, जिन में दलित चेतना बलवती है। उपनिषद् वर्णित यह आर्थिक सूची कितनी काम्य और वरेण्य है। जहाँ ईश्वर को साक्षी मानकर पूंजी के समान वितरण–आहरण पर बल दिया गया है तथा किसी का स्वाह का हरण न करने की बात कही गई हैं।

''ईशावास्यमिदं सर्व र्चात्कच्च जगत्यां जगत् तेन व्यक्तत्येन भुंजी था। मां गुधाः कस्यास्विद धनम्।[3]

इशोपनिषद स्मृतियों में भी दलित चेतना पर काफी कुछ देखने को मिलता है। मनुस्मृति के प्रणेता मनु ने तो जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं छोडा है जिस–जिस पर अपनी लेखनी न चलाई हो। दलितों के लिए मनु द्वारा निर्धारित नियम काफी सख्त है। समस्त मनुस्मृति जातियाँ, अस्पृश्यता इत्यादि विषमताओं पर कठोर नियमों का निर्धारण करती हैं। भारतीय समाज की युगों पुरानी धरोहर और संस्कृति के भण्डार संस्कृत वाङ्गमय दलित चेतना से भरे पड़े हैं। इनसे दलित साहित्य के इतिहास और उसके प्रभाव को स्पष्ट समझा जा सकता है।

पालि-प्राकृत तथा अपभ्रंश :

संस्कृत साहित्य से चलकर दलित चेतना`पालि–प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में आई। बौद्ध धर्म लगभग सभी सामाजिक विसंगतियों पर ध्यान आकृष्ठ करता है। अन्धविश्वास, जातीयता, वर्णव्यवस्था ज्ञान की महत्ता आत्मा की शुद्धता पर बल, समता कर्म की प्रधानता इत्यादि पर पालि–प्राकृत अपभ्रंश साहित्य में व्यापक प्रकाश डाला गया है। महात्मा बुद्ध समाज में व्याप्त भेद–भाव आडंबर तथा–अनाचार को देखकर अत्यंत दुःखी रहते थे इसीलिए उन्होंने स्पष्ट कहा।

"न जच्चा होती ब्राह्मणों। न जब्या होती कस्सलों। कम्मान होती ब्राह्मणों। कम्मान होति कस्सओं।''[4]

अर्थात् जन्म से कोई भी व्यक्ति महान् नहीं बनता है। यह मात्र कर्म है जो व्यक्ति को महान् बनाता है।

सिद्व एवं नाथ साहित्य :

सिद्ध एवं नाथ साहित्य को दलित साहित्य के विकास के रूप में देखा जा सकता है। सिद्ध सरहपाद, कृष्णपाद, शान्तीपाद, चटपटनाथ, चिन्तामणिनाथ, तथा भरत जी आदि नाथों ने अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों का विरोध अनवरत किया। गोरखनाथ शूद्रों को भी शिक्षा देने के पक्षपाती थे। गोरखनाथ और कई सिद्ध निम्न जाति के थे। इस से ज्ञात होता है कि नाथ पंथ में जाति के आधार पर कोई भेद भाव नहीं था। ज्ञान तीलक में वे कहते हैं कि –

''बैसन्दर मुनि मुषि ब्रह्मा जो होते सुद्र पढाऊँ बानी।

असंवेद विधि बहमा जग निपजा मेने जुगति जमाया पानी।।''5

सिद्ध सरहपाद जी ने भी वर्ण जाति और बाह्याडम्बर का विरोध किया है।

"वर्ण अचान प्रमाण रहित अच्छर भेद आत

को पूजह कहं पूजपाई जासु आदि ने अन्त।।

सन्त साहित्य :

कबीरदास, रैदास, मलूकदास, नवलदास आदि लग–भग सभी सन्त कवियों ने दासता, अस्पृश्यता शोषण तथा सार्वजनिक स्थानों पर दलितों के प्रवेश, जातीयता, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड का विशेष ज्ञान की महत्ता तथा सामान्य जन भाषा को महत्व इत्यादि पर व्यापक प्रेकाश डाला है।

"का करों जाति का करों पांती
राम का भजन करें दिन राती।"[6]

सन्तों की दृष्टि में जाति–पाति, मानव–मानव के बीच में विषमता पैदा कर समाज से समाज को तोडने का काम करती है। शोषण के विरुद्ध सन्तों का काव्य एक तीखा अस्त्र है। सन्त चरनदास जी कहते हैं कि –

''एकन पग पनही नहीं एक चढे सुख पाल।''

सन्त अज्ञानता को समस्त पाप कर्मों का मूल मानते हैं। कबीरदास जी ने तो स्पष्ट कहा था –

''बिना ज्ञान को जोगन फिरै लगाप्ये खैह।''

स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सन्त साहित्य दलित चेतना विषयक सामग्री से भरा पड़ा है। सन्तों की दृष्टि इस क्षेत्र में व्यापक लगती है। सन्त एक स्वच्छ समाज की परिकल्पना रखते थे।

परवर्ती हिंदी साहित्य :

इस हिंदी उपन्यास, हिंदी कहानी तथा हिंदी कविता इन तीन भागों में बाँटा जा सकता है। हिंदी उपन्यास के अंतर्गत प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, सियाराम शरणगुप्त, रामदरश मिश्र, जगदीशचन्द्र, विश्वप्रसाद सिंह, इत्यादि तमाम ऐसे उपन्यासकारों को रखा जा सकता है, जिन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर अपनी लेखनी चलाई है। हिंदी कविता–क्षेत्र में एकलव्य, शबरी, शंबूक, जैसे खण्डकाव्य के अतिरिक्त निराला, पंत, हरिऔध, मैथिलीशरणगुप्त, बच्चन इत्यादि कवियों के काव्यों का विवेचन तो किया जा सकता है, इन सब के साथ ही वर्तमान समय में डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमि, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. कुसुम वियोगि, प्रेम कपाडिया, डॉ. एन. सिंहातार परमार, कीर्ति चौधरी, डॉ. सोहन पाल इत्यादि भी दलितों के कल्याणार्थ बराबर लिखते चले आ रहे हैं। परवर्ती हिंदी दलित साहित्य की कविताओं ने भी दलित चेतना के क्षेत्र में अग्रणि भूमिका निभाई है। प्रेमचन्द, गिरिराजशरण, सूरजपाल चौव्हान, ओमप्रकाश वाल्मिकी तथा मोहनदास नैमीशराय इत्यादि कहानीकारों की कहानियाँ व दलित चेतना पर आधारित हैं।

स्वामी विवेकानंद, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, विनोबा भावे, डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण इत्यादि मनीषियों ने भी जातियता, अस्पृश्यता, शोषण इत्यादि पर काफी कुछ लिखा है। डॉ. बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर ने तो अपने दैनिक जीवन में इन सामाजिक विसंगतियों को काफी भोगा था। इन सब का एक मात्र उद्देश्य समतामूलक समाज की स्थापना कर दलितों को उचित न्याय दिलाना था।

निष्कर्षत : यह कह सकते हैं कि भारत में दलित साहित्य का इतिहास काफी प्राचीन है। यह आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। आदिकाल, मध्यकाल के साथ–साथ वर्तमान काल में भी इसकी संपूर्ण प्रवृत्तियाँ विद्यमान है। वर्तमान परिस्थितियों में निश्चित ही दलित साहित्य के भविष्य को उज्ज्वल कहा जा सकता है। हिंदी दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास[7]

साहित्य और समाज का बडा ही अटूट रिश्ता है। साहित्यकार जिस सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांकृतिक परिवेश में पलता–बढता है उसका प्रभाव निश्चित रूप से उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। भारतीय समाज जातियों में विभक्त है। हिंदू धर्म शास्त्रों सभी निचली जातियों और स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार बन्द कर दिए थे। जिन्होंने इस व्यवस्था के विरुद्ध में विद्रोह करने का प्रयास किया। उनके हाथ जिव्हा या सर काट दिए। इसी वजह से भारतीय

साहित्य में उच्चतम वर्ण यानी ब्राह्मणों की साहित्यिक तानाशाही चलती रही। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में महाराष्ट्र के क्रान्तिकारी समाज सुधारक महात्मा ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणशाही की सांस्कृतिक साजीश का घिनौना रूप बेनकाब किया। इन्ही महात्मा को, क्रान्तिकारी सन्त कबीर को तथा गौतम बुद्ध को गुरु मानकर बीसवीं शताब्दी के प्रथम प्रहर में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दलितों के मुक्ति संग्राम का बिगुल बजाया। उनके विचारों और मुक्ति आंदोलनों ने दलित मानस में जाग्रति का बीज बोया। वह सोचने–समझने लगा और अपने शोषण और जानवर से भी बढकर जिंदगी के कारण उसके संवेदनहीन शरीर में प्राण संचार हुआ। स्वाभीमान और मानवोचित अधिकारों के संदर्भ में एक नई चेतना जागी। दास्यमुक्ति का संघर्ष शुरु हुआ और इसी स्वतंत्रता आन्दोलन ने उसकी सृजनात्मक ऊर्जा को फूटकर बाहर अपने तक विकसित किया।

शोषण व्यवस्था के प्रभावि पहरेदार आत्मा परमात्मा को वह आदमी दीन–हीन पंगु और मूल्यहीन बननेवाले मानव कि 'मानव प्रतिष्ठा' की क्षति पहुँचाने वाले समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दर्शन का निषेध कर उस पर करार प्रहार करता है। वह अन्याय अत्याचार और शोषण के खिलाफ विद्रोह की आवाज बुलन्द करता है। वह मानवता को कलंकित करनेवाले समूचे सामाजिक सांस्कृतिक धरातल को ध्वस्त कर समता, स्वतंत्रता और बंधुता पर आधारित समाज के लिए प्रतिबद्ध है।

आम आदमी की आवश्यकता और उसकी वेदना–संवेदना को दलितों की आवश्यकता और उनकी वेदना–संवेदना के साथ एकाकार करके देखना और मानना भ्रामक है। जो भोगता है वही जानता है और जो जानता है वही कह सकता है। दलितों ने जो कुछ भी भोगा और जिया है दलित साहित्य उसी असमानता व अन्याय और उत्पीडन की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। यह भोगा हुआ यथार्थ ही दलित साहित्य को अन्य साहित्य से अलग करता है। यदि दलितों की अनुभूति और संवेदनाएँ भी दूसरे लोगों की तरह ही होती तो दलित साहित्य की अलग से न कोई पहचान होती और न उसकी आवश्यकता होती। किंतु आज दलित साहित्य की अपनी एक अलग पहचान है। इस का तात्पर्य यह है कि दलित का दुःख उसकी पीडा उसके अभाव और उत्पीड़ता दूसरे लोगों से अलग है। उसकी छटपटाहट और आक्रोश अलग है। उसका संघर्ष और स्वप्न भी अलग है। भाषा और अंदाज भी अलग होगा। उसके मिथक और मान्यताएं भी अलग होंगी जो निश्चित रूप से परम्परागत मान्यताओं से भिन्न होगी।

साहित्य का सौन्दर्य नारी सौन्दर्य की तरह है। नारी सौन्दर्य के दो रूप है। 2. बाह्य सौन्दर्य 2. आन्तरीक सौन्दर्य बाह्य सौन्दर्य में उनका रंग–रूप नयन, नक्श साज श्रींगार और वस्त्र–आभूषण आदि आते हैं। जबकी आन्तरिक सौन्दर्य में उसका आचरण, स्वभाव, विनम्रता, सौम्यता और उसकी कार्यकुशलता आते हैं। बाह्य सौन्दर्य जहाँ क्षणिक होता है, वही आन्तरिक सौन्दर्य स्थायी होता है। इसलिए समग्रता में बाह्य सौन्दर्य की उपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण और उपयोगी है। यदि किसी सुन्दर स्त्री का चाल–चलन ठीक नहीं है। वह घर में क्लेश रखती है। बर्बादी करती है। किसी की सेवा सम्मान नहीं करती है तो उसकी सुन्दरता किस काम की? दलित साहित्य गोरी–चमडी और आकर्षक नयन–नकाशवाली कुंठित गर्वित या फूहड स्त्री नहीं है। वह सामान्य रूप–रंग की वह सुघड़ सुशील औरत है जो सब की सेवा सम्मान करती है। सब को प्यार देती है। सब को सुख देती है और स्वयं सुखी रहती है। जो परिवार को उल्लास से भर देती है। इन्ही आन्तरिक गुणों के कारण उसका व्यक्तित्व पुष्प की भाँति खिला रहता है। यही उसका सौन्दर्य है। और यह सौन्दर्य ही स्थायी है। क्योंकि उपयोगी है।

साहित्य का असली सौन्दर्य इस बात में नहीं है कि उसकी भाषा कितनी प्रांजल है, शिल्प कितना उत्कृष्ट है या उसकी कलात्मकता कितनी उच्चकोटि की है बल्कि उसका असली–सौन्दर्य इस बात में है कि वह जीवन से कितना जुडा है। मानवीय समस्या और संवेदनाओं को कितना महत्व प्रधान करता है तथा सामाजिक परिवर्तन और विकास में कितना

सहायक और उपयोगि है। उपयोगिता सर्वोच्च मूल्य है और लोकोपयोगि होना साहित्य की अनिवार्य शर्त है। दलित साहित्य इस शर्त पर खरा उतरता है। दलित साहित्य केवल वही बात कहता है जो मानव के लिए हितकर है और समाज और राष्ट्र की एकता अखण्डता और मजबूती के लिए आवश्यक है। दलित साहित्य बौद्धिक विलास या मनोरंजन का साधन नहीं। सामजिक परिवर्तन की एक मुहिम है। दलितों को उनकी अस्मिता की पहचान कराने का एक माध्यम है। इसलिए इस में रसवत्ता का होना अनिवार्य नहीं है। दलित समाज एक भूखा समाज है। भूखा पेट शब्दिक रस का आनंद नहीं ले सकता। उसे रोटी का उपाय चाहिए। अपमान और जिल्लत से उबरने की शक्ति चाहिए रसों का आस्वादन उसे हो सकता है। जिस का पेट भरा हो तथा मन–मस्तिष्क सब प्रकार की चिन्ताओं से रहित हो। अपने अपमान से पीडित और पेट की क्षुधा से ग्रस्त व्यक्ति को नहीं। अंधेरी कोठरी में कैद व्यक्ति को स्वादिष्ट व्यंजन नहीं, मुक्ति का मार्ग–चाहिए।

भारतीय संस्कृति में मूलतः अद्वैत को प्रविष्ठा मिली है। यहाँ कि एकात्मकता जीव मात्र में ही अभेद दर्शन करती है। फिर मानव–मानव बीच में भेद का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। हमारे वैदिक ऋषियों ने अपनी विश्व दृष्टि का परिचय देते हुए एकत्व की भावना को बल प्रधान किया। किंतु जाने कहा कैसे निहित स्वार्थीयों एवं संकीर्ण मानसिकतावाले लोगों ने भेद का बीज बोया। अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को निकृष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया। दुर्भाग्य यह है कि इस भेद का बीजारोपण वैदिकयुग में ही हुआ। इसी नाते वहाँ– कर्मकाण्डियों को ऊँचा दर्जा दिया गया और ज्ञान मार्गियों को वेद बाह्य घोषित कर दिया। पहले के कुछ पूज्य ऋषि अंत्यजों की श्रेणि में डाल दिए गये। सवर्ण–असवर्ण, ऊँच–नीच, का यह संघर्ष जहाँ से प्रारंभ होता है वही दलित चेतना का जन्म होता है।

डॉ. वानखेडे के अनुसार– "दलित लेखकों द्वारा दलित के विषय में लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। डॉ. वानखेडे ने संकुचित अर्थ के आधार पर केवल उन्हीं लोगों को दलित साहित्यकार की श्रेणी में रखा है जो स्वयं दलित है। किंतु इस परिभाषा द्वारा लिखे गए सभी प्रकार के साहित्य को दलित साहित्य नाम देना है या सिर्फ पीड़ा आक्रोश और विद्रोह के साहित्य को दलित साहित्य मानना है।

श्री बुद्धशरण हंस भी केवल पीड़ा की अभिव्यक्ति को दलित साहित्य नहीं मानते बल्कि उसका पीड़ा में पर्यवासन आवश्यक मानते हैं। उन्होंने लिखा भी है "दलित साहित्य कोई मर्सिया नहीं है जो दलितों की दीनता और दुर्दशा पर लिखा पढ़ा जाए। दलित साहित्य को दलितों की दुर्दशा का शोक साहित्य नहीं बनने देना है। दलित साहित्य की शक्ति और प्रेरणा का साहित्य बनाना है। दलित साहित्य को दलितों की दुर्दशा का शोक साहित्य नहीं बनने देना है। दलित साहित्य को शक्ति और प्रेरणा का साहित्य बनाना है। दलित साहित्य शक्ति का स्त्रोत संदेशों की सरीता बने ऐसा प्रयास दलित साहित्यकारों को करना है।"[9]

दलित साहित्य सदियों से पद दलित लोगों की अभिव्यक्ति का साहित्य है। इसका यह मतलब कतई नहीं कि दलित साहित्य में कोई कला या सौन्दर्य नहीं है। उसका अपना सौन्दर्य है। कभी उस सौन्दर्य को परखनेवाली आँखों की है। डॉ. धर्मवीर जी एक और जगह अपना मत इस तरह बयान करते हैं कि– "जहाँ तक दलित साहित्य में सौंदर्यशास्त्र का सवाल है मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह एक समय विशेष की बात है। दलित मनुष्य भी एक यूरे मनुष्य के रूप में जन्म लेता है और जन्म लेता वह दलित और द्विज के द्वन्द्व से ऊपर होता है। मनुष्य के रूप में दलित का अपनी सृष्ठि से सीधा संबंध है। यह ब्रह्माण्ड में चांद और सितारे आकाश और पाताल सूर्योदय और सूर्यास्त, फूल और पत्तियाँ और छाँव सभी कुछ देखना चाहता है। वह फूल को सुन्दर कहना चाहता है, लेकिन उसी समय द्विजशिकारी ने उसकी छाती में तीर गाड़ दिया है। यही कारण है कि अभी हम दलित मनुष्य का रुदने और आक्रोश ही देख रहे हैं। मुझे याद आ रहा है ऐसी स्थिति में द्विजों ने क्या कहा है– "भूखे पेट न भजे गोपाला यह ले अपनी कण्ठी माला।" पेट भरा होने पर ईश्वर की आराधना में दिजों ने नवधा– भक्ति की खोज की है। यदि दलितों की भूख शान्त हो तो वे अठारह प्रकार की

भक्ति की खोज कर सकते हैं।''[10]

इन मतों का विश्लेषण करने पर प्रतीत होना है कि दलित साहित्य पारंपरिक सौन्दर्य शास्त्र को अपनाने की अपेक्षा अपनी प्रकृति और रुचि के अनुसार किसी नवता का आकांक्षी है। अर्थात् वह नये–सौन्दर्य शास्त्र की मांग करता है। साहित्य सदैव एक अच्छे मनुष्य एवं एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए सचेष्ट रहता है। इस के लिए वह सह–अस्तित्व समानता, स्वतंत्रता एवं लोकप्रिय न्याय के सिद्धान्तों को व्यक्ति जीवन एवं समाज जीवन के नियमक मूल्यों के रूप में अपनाता है और दूसरे से अपने इन अधिकारों की सुरक्षा की अपेक्षा भी करता है। इस प्रकार साहित्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता और अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। यही उसकी सार्थकता है। हिंदी साहित्य में भक्त कवियों से लेकर आधुनिक काल के अनेक कवियों एवं प्रेमचन्द जैसे अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से शोषितों एवं दलितों के प्रति होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष का स्वर बुलन्द किया। किंतु स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने समाज के शोषितों एवं दलित वर्ग में एक ऐसी चेतना जगाई कि उसकी वजह से इस वर्ग में धीरे–धीरे अपने अस्थित्व को पहचानने की नयी सोच उभरी। यह सोच मात्र सोच ही नहीं वरन् समाज में आक्रोश बनकर प्रकट हुआ और हो रहा है। आज इस दलित एवं शोषित वर्ग में अपने अस्थित्व और अस्मिता के प्रति विशेष सजगता है। और इस सजगता में अभिव्यक्ति की विशेष छटपटाहट है। जो संवेदनात्मक धरातल पर दलित साहित्य के रूप में व्यक्त हो रही है।

दलित शब्द आज अपने आप में एक संस्कृति का परिचायक बन गया है। यह दलितों के सत्वबोध का परिचायक शब्द है। जिसे उच्चवर्ग के लोगों ने दस्यु, राक्षस, अवर्ण, निषाद, पंचमर, चण्डाल और अंग्रेजों ने डिप्रस्टक्लास। गाँधीजी ने हरिजन, भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति आदि पर्यायों से विभूषित किया। अपनी संस्कृतिक अभिव्यक्ति दलितों का जन्म सिद्ध अधिकार है। अपनी सांस्कृतिक सत्ता को प्रतिष्ठित करता ही दलित साहित्य का लक्ष्य है।

कला और साहित्य यहाँ सिर्फ माध्यम नहीं एक जरुरत भी है। क्योंकि दलित कला और साहित्य को उनके ही आचार–विचार एवं सौद्धान्तिक आचारण के धरातल पर अपनी भूमिका अदा करनी है। दलित साहित्य भी समानता का साहित्य है। अतः हम कह सकते हैं कि हमारे पूर्वजों का एक संस्कार है। उनकी अपनी कलाभिव्यक्ति है। साहित्य है। जीवन रीति है और संघर्षबोध है लेकिन आज के बदलते परिवेश के अनुसार अपनी संस्कृति से शक्ति अर्जित कर आज की समस्याओं को हमारे अधिकारों को साहित्य रूप देना दलित साहित्यकारों का कर्तव्य है। इसके लिए अपनी भाषा, बिम्ब, प्रतीक, शैलि आदि अपने ही ढंग से अलसग प्रस्तुत करनी चाहिए। प्रकृति की चर और अचर वस्तुओं की समृद्धि के लिए पूर्वजों की तरह हम भी गा सकते हैं। अर्थात् समृद्धि हो घर की, प्रदेश की देश की, दुनिया की, पहाड की और तालाब की।

ओमप्रकाश वाल्मिकि जी का कहना है– "व्यक्ति को मुक्त करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है। यह जनता का आन्दोलन है।" इसके साथ–साथ एक और जगह डॉ. रामदास मिश्र ने लिखा है– "दलित साहित्यकारों में साधना का अभाव है। जिस के कारण दलित साहित्य कलात्मक नहीं है। जब दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में लगाने की बात आयी तो डॉ. मैनेजर पाण्डेय जी ने एक संगोष्ठी में कहा– 'दलित चेतना की सबसे पहली शर्त है उसका विरोध का स्वर। पिडा की छटपटाहट, आक्रोश का तेवर और उसके साथ हि कहीं परिवर्तन के लिए उगता हुआ एक संकल्प। दलित लेखन की धराधर बनाने के लिए अपने समाज के प्रेरणास्त्रोत से जुड़े रहकर उनमें जाकर और उन्हें जमा कर अपने साहित्य को खड़ा करना होगा।

ऐसे दलित साहित्य की परिभाषा दो ढंग से की जाती है। लेकिन प्रचलित और मान्य परिभाषा जो मराठी दलित साहित्य में की जाती है वह दलितों द्वारा दलितों के संबंध में दलितों के लिए लिखा गया साहित्य है। इस साहित्य में

रचनाकार वर्णवादी व्यवस्था में भोगे हुए सच के आधार पर कल्पना की कलम से जिन्दगी की कडवाहट की इबारत सदियों से दबे आक्रोश के साथ उलीचता है। वह मुलम्मा चढाकर या चीनी के खाल में लिपटी कैपस्यूल में अपने पर हुए बर्बर सामाजिक एवं धर्मान्द अपमानो अत्याचारों को समाज के सामने पेश नहीं करता बल्कि वह उन्हें उनकी मूल कडवेपन में ही परोसता है। यूं कहे कि यह उस सदियों से उचित कडुवाहट की उतनी ही सिद्धता से उन्हीं के मुंह पर थूकने की जिद करता है। जिन्होंने सदियों से उसे तीरस्कृत किया और अपमान झेलने को मजबूर किया।

हिंदी भाषी क्षेत्रों में दलितों के बारे में अन्य वर्ग के लोगों द्वारा लिखी गई एक आग्रह रहा है। हिंदी क्षेत्र में दलित साहित्य उस स्तर पर व मात्रा में नहीं लिखा गया जितना मराठी भाषा में। विडम्बना तो यह है कि इस क्षेत्र में दलितों द्वारा लिखे गए इस शती के दलित साहित्य में भी वह आक्रोश तथा भोगे हुए सच और वह तेवर नहीं है जो हमला करता हुआ सा नजर आए उसका तेवर शुगर कोटेड पिल की तरह है। संकेतों की भाषा में कुछ कहने की प्रवृत्ति है। जैसे की कोई बचाव कर रहा हो। या सहसा भयभीत सा स्पष्ट कहने से डरता है। जबकी जरुरत हमले की है। आज के हिंदी लेखन से कहीं अधिक धरादर तेवर तो कबीर के है। वे कहते :–

''तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद्र
हम कत लेहू तुम कत दूध।।''[11]

वह सीधे ब्राह्मणवाद पर चोट करते हुए कहते है कि :–:–

जो ब्राह्मण तू ब्राह्मणी जाया।
आन बाट का हे नहीं आया।।

गुरु नानक ने भी सोपानी व्यवस्था को नकारते हुए कहा :–

''क्षत्री ब्राह्मण शुद्र वैश्य उपदेश चौ वरणों के सांझा।।''[12]

आधुनिक साहित्य के इतिहास में देखा जाय तो लंबे अंतराल के बाद एक दलित लेखक हीरा डोम की भोजपुरी में लिखी कविता महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1914 यह सरस्वती में छापी थी। कविता वर्णवादी–व्यवस्था की मार्मिक दशा का विवरण देती है। और गुस्सा पैदा करती है।

''हमरी के इनरा के नगीचे ना जाइलेजा पांके में से भरी–भरी पी अतनी पानी पनही से पिटी–पिटी हाथ गोड तरिहदले हमनी के इतनी कहि के हलकानी?''[13]

हीराडोम अपनी कविता में आगे भगवान को 'भगवनवा' कहकर संबोधित करते है। और उलाहना देकर कहते है कि– शायद उन्हें डोम मानकर भगवान भी छूना नहीं चाहते। वे कबीर की तरह ही पूछते हैं कि– "हमारा शरीर भी ब्राह्मण ठाकुरों की तरह हाड मांस का बना है। फिर क्या कारण है कि वे लोग तो पूजे जाते हैं पर हमारी पूजा जूतों से की जाती है।'[14]'

इसके बाद लंबे अरसे तक केवल गैर दलित लेखकों की कुछ रचनाएँ प्राप्त है। ऐसे तो इस बीच अनेक दलित लेखक हुए भी पर साहित्य पर अभिजातों के कब्जे के कारण कोई दलित साहित्य नहीं पनपा और अभी तक लोक साहित्य की खोज या शोध करके भी ऐसे दलित लेखकों को अपने साथ जोडने की चेष्टा किसी ने नहीं की। इस संदर्भ में गैर दलितों में निराला जी की 'चतुरी चमार' कुल्ली भाट, बिल्लोसुर बकरिहा में भी दलित चेतना के शुरुआती संकेत मिलते हैं। प्रेमचन्द की कफन जाहाँ घीसू और माधव कि दयनीय स्थिति का वर्णन करती है। वही उनकी मानसिक जडता, संवेदना शून्यता पर भी प्रश्न उठती है। गोदान में उनको वही दलित चेतना, दलित–आक्रोश का रूप धारण कर लेती है जब चमार टोले के लोग दातादीन पंडित के मुंह में गाय की हड्डी ठूंस देते हैं क्योंकि उससे एक दलित लडकी सिलिया को पेट रह गया था। 'सदगति' में दलितों की असहाय स्थिति है तो 'ठाकूर का कुआ' में उस चेतना का दूसरा तेवर

प्रेमचंदजी रंगभूमि' के 'सूरदास' और धूमिल का 'मोचिराम' भी गैर दलितों के साहित्य के सक्षम हस्ताक्षर है।

पिछले दशक में बाबा नागार्जुन की 'हरिजनगाथा' कविता जो बिहार के बेलछी कांड के बाद लिखी गई थी। दलितों के वर्तमान और भविष्य का चिन्ता जाहिर करती है। मन्नू भण्डारी का 'महाभोज' उपन्यास भी उसी कडी में आता है। पर ये सब हमदर्दी का साहित्य है। भोगे हुए सच का नहीं। दलित साहित्य में अभी भी कुनीन के रूप में सामने रखने की दरकार है। ताकि जिस कुनीन को दलित सदियों से पी–पीकर हीन बनकर हाथ जोडते रहे हैं। उसकी कडुवाहट से पिलानेवाले भी जरा परिचित हो और उसे खत्म करने के संघर्ष में साथ आने की जरुरत समझे। इस में दलितों को आगे आना होगा और स्वयं अपने संपूर्ण दलित समाज को सर उठाकर चलने को कटिबद्ध होने के लिए तैय्यार करना होगा। हाल के दिनों में जो दलित साहित्य सामने आ रहा है। वह इन स्थितियों से रुबरू होने का प्रयास कर रहा है। भले ही तरीका अलग–अलग वह कहीं गांधीवादी है तो कहीं जनवादी कहीं आक्रमक तो कहीं बीच बचाववाला कहीं वह खिलाफत करने से डरता है तो कहीं राजनीतिक रोटीबाजी से सचेत करने का रुझान भी दिखता है। कहीं वह धर्म के नाम पर दंगेबाजों की पोल भी खोलता है। जो दलितों को मरवाने के लिए उनके हाथ में झंडा थमा देता है। औरतों के यौन शोषण एवं वर्गीय जातीय नरसंहार के विषय तक इस साहित्य से अछूते नहीं रहे। बिहार में हुए नरसंहार पर बिपिन बिहारी की 'पानी पर पैबन्द' एक मार्मीक कहानी है। गिरिजा शंकर की लंबी कविता 'दर्द' इन्हीं जन संहार के विरोध में उठी ललकार है।[15]

साहित्यिक फलक पर बेलछी हत्याकांड ने जहाँ बाबा नागार्जुन को लिखने के लिए प्रेरित किया वहीं बिहार और उत्तर प्रदेश में जगह–जगह घटी घटनाओं ने अनेक लेखकों कवियों की अभिव्यक्ति के नये स्वर दिये जो आक्रोश और संकल्प से भरे हुए है। जो मन को कहीं गहरे झकझोरते ही नहीं। छूते भी है जो साहित्य झकझोरता है। मन को छूता है। वही सहि साहित्य है। चाहे वह कितना भी अनगढ क्यों न हो। वह मुर्दे में भी प्राण फूंकने की क्षमता तो रखता है। यहीं से शुरु होता है सिलसिलेवार ढंग से दलित चेतना से ओत–प्रेत दलित साहित्य। लोक साहित्य में तो ऐसी अनेक दलित रचनाएँ होंगी। पर वे साहित्य के मंच पर दर्जा नहीं हो पाई। हीरा डोम की कविता के 18000 लंबे अंतराल के बाद अस्सी के दशक के आस–पास दलित चेतना छिटपुट रूप में उभरने लगी थी।

समभक्त पासी के शब्दों में दलित साहित्य– "एक संघर्ष है जनता के खिलाफ और उनके भी जो शोषण और मानवीय मूल्यों के हनन के अपनी नियति माने सदियों से स्पंदनहीन है।''

बाबूलाल मधुकर के लिए तो दलित साहित्य की रचना के मायने है–

"मेरे कलम पकडने का अर्थ है दुश्मन पैदा करना।

दयानंद बटीही का विश्वास है कि :–:–

"दलित कविता आज के माहोल को चकाचौंध नहीं कस्ती बल्कि नई ऊर्जा देती है।''16

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि :–

"जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हैसला दे वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा गतिशिलता का संवाहक है।''

डॉ. एन सिंह के शब्दों में :– "कविता यदि जिंदा रहेगी तो वैचारिक सराकारों से ही अपने बारीक और पोख्ता शिल्प के कारण नहीं।''[17]

दलित चेतना की सबसे पहली शर्त है उसको विरोध का स्वर पीडा की छटपटाहट, आक्रोश का तेवर और उसके साथ ही कहीं उगता हुआ परिवर्तन के लिए एक संकल्प। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता में जहाँ कहते हैं :–:–

''मेरी रंगों में दहकने लगते है। यातना के कई हजार वर्ष एक साथा''

तो वही आक्रोश में आकर कह उठते हैं :–

"न जाने किस हरामजादे ने तुम्हारे गले में डाल दिया जाती का फंदा जो न तुम्हें जीने देता है न हमें।'' तब वहीं एक संकल्प भी लेता है। कवि तमाम आस्थाओं और नैतिकताओं की रस्सी बनाकर ''जरूरी हो गया सागर मंथन विध्वंस बन खडी होगी एक दिन नफरत तुम्हारी दरवाजे पर जहाँ तुमने उखेर रखे हैं शुभ चिन्ह अपशकुन से बचने के लिए। डॉ. एन. सिंह मनुवादियों का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं :–

"समरसता रामनामी ओढकर वे फिर आ गए है गले लगाने कि साजिश को समझो भूलो मत कि ये वहीं है।''[18] इस के साथ–साथ एक और जगह कंवल भारती ने बडे ही सटीक शब्दों में दलितों को भटकने से सावधान किया है और उनकी कमजोरियां बताते हुए कहते हैं :–

''शायद ऐसा हो कि तुम्हारी अनुभूति अचानक हो गई ही मार्मिक पढ या सुनकर कोई दलित तुकडा सुख जगा गया होगा परम्पता–बोध और तुम्हारी शिराओं में रक्त थम गया होगा....''[19]

वे यह भी कहते हैं :–

''भक्ति संग्राम जारी रहेगा जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों का सूरज उग नहीं जाता है।''

रामभक्त (भरत) पासी कहते हैं :–

"उनकी नगनता को नहीं छुपा पाएंगे अब सदियों बुने जा रहे है शब्द–जाल क्योंकि हमें अब आगया है उगाना सच।'' शरद कोकस सावधान करते हैं सवर्णों की और उनकी अपना अट्टहास का रूप दिखाते हुए कहते है कि "रुको अट्टहास से आसमान मत गुंजाओ (गुंजाओ) समीकरण बदल रहे है अब गनीमत है उलट नहीं रहे शुक्र मनाओं।''

श्रीमान बाबूलाल मधुकर जी दलितों के उपर होनेवाले शोषण की इस तरह बयान करते हैं कि :–

''हमारे श्रम के पुण्य फल पर कुंडली मारकर बैठने के सिवाय और क्या किया है तुमने?''[20]

और इसके साथ लालचन्द राही व्यंग्य करते हुए कहते हैं :–

''मोची की व्यथा में फटे जूते सी जिंदगी सीने के लिए चमडा काटता है वह किसी की जेब या गला नहीं।''

हरिकिशन संतोषी ने यहाँ तक कहा डाला :–

''इस देश में भगवानों का बंटवारा हो सकता है– तो क्यों खेत–खलिहानों का बंटवारा नहीं हो सकता है?''[4] इस तरह अनेकों विद्वानों ने अपने विचारों के जरिए दलित शोषण का विवरण हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। आरक्षण में योग्यता की शर्त पर वे लिखते है :–

''पहले तो तुम्ही ने काट दिये हाथ–पांव हमारे दौड में आगे आओ हमें जितना पिछे धकेला है तुमने उतना आगे आने दो तब चलाना योग्यता के तीर तब हमारी छाती से टकरा–टकरा तुम्हारें तीर वापस चले जाएंगे। तुम्हारों ही श्वान–मुख में घुस जाएंगे एकलव्य के तीरों की तरह।

इस तरह हरीकिशन संतोष ने अपने लेखनी द्वारा सवर्णों का योग्यता तथा असंकुचित भावना को प्रस्तुत करते हैं। इस सदि में हिंदी पट्टी में दलित चेतना कि शुरुआत हीराडोम से हुई और उन्होंने ही ब्राह्मणों और दलितों के साथ दो तरह के व्यवहार कि शिकायत भगवान से की उन्होंने भगवान को 'भगवनवा' कहते हुए कहा कि कहीं वे भी तो उसे अछूत जानकर छुआने से नहीं डरते? शिवमूर्ति ओमाप्रकाश वाल्मीकी प्रहलादचन्द्र दास, डॉ. दयानंद बटीही, डॉ. एन. सिंह आदि दलित लेखन की मजबूती से छू रहे हैं तो अवघोश प्रति मदन पर शहरे सवाल उठाती कहानियों कविताएँ लिख रहे हैं।

निष्कर्ष :–

साहित्य की यह परम्परा इतनी दृढ़ रही कि मध्ययुग के भक्तिकाल में रैदास और दादू आदि निम्न वर्ग में जन्मे

कवि रचनाकार भी आये। किन्तु वे वही गाते कहते रहे जो उच्चवर्गीय रचनाकार गाते कहते आये थे, इस स्थिति में मुक्त हो पाना अत्यंत कठिन था, हिन्दी में कबीर ने एक विद्रोहात्मक टेर लगाई अवश्य, किन्तु उनकी वाणी भी रहस्य के झिलमिल झरोखे में सिमटकर रह गई। दलित साहित्यकार ऐसे ही अनेक बातें करता है। स्थापित साहित्य के विज्ञान से वह इनकार नहीं करता किन्तु वहां विज्ञान इतना कम है कि मोटे तौर से देखने पर ऐसा लगता है कि 'दलित साहित्य' स्थापित से सम्पूर्ण विद्रोह करता है। सत्य तो यह है कि यातना ग्रस्त व्यक्ति को चीखने से कोई नहीं रोक सकता और दलित साहित्य एक स्तर पर यातना से पैदा हुई उस चीख का ही साहित्य है।

दलित साहित्य का केंद्र बिन्दु मनुष्य है। मनुष्य की मुक्ति उसको महानता और महत्त्व देने के लिए, उसके उत्कर्ष के लिए, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व तथा सभी तरह के भेदभाव मिटाने एवं जन जागरण, जनचेतना पैदा करने के लिए दलित साहित्य हथियार की तरह प्रयोग हो रहा है। रमणिका गुप्ता का मानना है कि – दलित साहित्य परंपरावादी साहित्य के लिजलिजेपन और बासीपन तथा एक रूपी रसवादी प्रणाली से भिन्न है इसके दायरे में अंध विश्वास, भाग्य, धर्म–कर्म या भगवान नहीं आते। इसी वैचारिकता पर आधारित मार्क्सवादी साहित्य, जनवादी सा हित्य, नीग्रो साहित्य भी खड़ा है। 'आर्थिक और राजनीतिक विचार क्रान्तिकारी रहने पर भी रक्त में मिले संस्कार मिट नहीं पाते, पौराणिकता छूटती नहीं। वर्ण–वर्ग के बन्धन टूटते नहीं। इसलिए यथास्थि तिवादी बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों में अधिक अन्तर नहीं आता। इसका कारण यह है कि दोनों की मानसिक गठन की पार्श्वभूमि एक सी होती है।

जब दलित साहित्यकार वास्तविक जमीन पर रहकर, अनुभव की प्रामाणिकता के साथ आत्मा की आवाज सुनकर सा हित्य सृजन करेगा तब वह श्रेष्ठ दलित साहित्य होगा। आज 'दलित' शब्द व्यापक विस्तृत बना है परिणामतः दलित साहित्य का स्वरूप विस्तृत हो गया है। शोषित, उपेक्षित, अपमानित व्यक्ति की कथा यह सा हित्य है। सच तो यह है कि आज के साहित्य सौदर्य, भाषा–शिल्प की कसौटी पर इसे कसना उचित नहीं है। मानव मुक्ति का उद्घोष दलित साहित्य माना है। दलित सा हित्य का अपना अलग सौदर्यशास्त्र है, जिसका केन्द्र मानव, मानवता, समानता है, भाव प्रधान आत्मतत्व है। किसान, भूमिहीन, अंत्यज, अछूत, विधवा, मजदूर, वेश्या, अस्पृश्य, अनुसूचित जाति, नारी, भंगी, चमार, मरार की जीवन कथा, शोषण की व्यथा दलित साहित्य ही है।

अबला को सबला बनाने वाला, शोषित को मुक्ति देने वाला, अपमानित को सम्मान दिलाने वाला, मूक को वाणी देने वाला, निम्न को ऊँचा स्तर पर बिठाने वाला, अनंत मानव का साहित्य, दलित साहित्य है। भेदभाव रहित समाज का निर्माण करने वाला यह साहित्य आधुनिक युग की देन है। अंबेडकरी विचार से प्रभावित यह साहित्य आज नई व्यवस्था का प्रेरणा स्रोत है। परंपरागत नैतिक, धार्मिक, पाखंडी मान्यता को हटाने वाले नए साहित्य का यह रूप है। दलित सा हित्य मानवता का पक्षधर होने के साथ समता का प्रचारक है। जाति को ध्वस्त करके मानव समाज का निर्माण करनेवाला प्रगतिवादी, समाजवादी विचारों का प्रतिपादक है। काल्पनिकता की अपेक्षा यथार्थ की भूमि पर खरा उतरने वाला मानवी मन का सच्चा प्रेमी, आत्मा की आवाज 'दलित साहित्य' है। यह विशिष्ट जाति, पंथ, धर्म का न होकर समस्त शोषित, पीड़ित उपेक्षित, शापित मानव का साहित्य–वृद्ध साहित्य है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : 'दलित साहित्य के संदर्भ, पृ. 9
2. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : 'दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पृ. 22
3. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : 'दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पृ. 23
4. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : दलित साहित्य सृजन के संदर्भ, पृ. 24

5. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : दलित साहित्य के संदर्भ, पृ. 17
6. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : दलित साहित्य के संदर्भ, पृ. 25
7. रमणिका गुप्ता : 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, पृ. 105
8. डॉ. नरेन्द्र सिंह : 'दलितों के रुपांतरण की प्रक्रिया, पृ. 7
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, पृ. 13
10. किशोर कुणाल : 'दलित समाज आज की चुनौतियॉ, भूमिका
11. डा. सुनीता साखरे : 'हिन्दी और मराठी दलित साहित्य', पृ. 16
12. रमणिका गुप्ता : 'दलित साहित्य सृजन के संदर्भ', पृ. 19
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि : 'दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र', पृ. 73
14. रघुवीर सिंह : 'डा. अम्बेडकर और दलित चेतना', प. 7
15. संपा. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी : 'हिन्दी दलित साहित्य रचना और विचार', पृ. 85
16. प्रज्ञा साहित्य : 'दलित चेतना विशेषांक', पृ. 34
17. डा. मुन्ना तिवारी : 'दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 36
18. डा. मुन्ना तिवारी : 'दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ. 55
19. डा. सुनीता साखरे : 'हिन्दी और मराठी दलित साहित्य', पृ. 41
20. किशोर कुणाल : 'दलित समाज आज की चुनौतियॉ, भूमिका पृ. 18

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 55-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और प्रेम एक समानता के रूप में

–भारती मुण्डा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सार :

डॉ० अम्बेडकर को पहले ही यह शक था कि आजादी मिलने पर उनका क्या होगा जो उन लागों के गुलाम है, जिनको आजादी चाहिए। डॉ. अम्बेडकर का चिंतन–मनन मौलिक था। उनके चिंतन का आधार मानव–जीवन का समग्र उन्नयन था। चिंतन का आधार उनका पददलितों के प्रति दया, प्रेम, समानता और मानवतावाद का था। वे विद्वान होने के कारण लचीले थे। वे लोभी नहीं थे और न वे किसी के हृदय को चोट पहुँचाने का इरादा रखते थे। वे आजादी प्राप्ति के पीछे जिन ताकतों को देख रहे थे, उनकी मंशा व इरादे वह नेक नहीं पा रहे थे। जो देश अपने ही लोगों की यातना की त्रासदी भोग रहा हो, वह जनोपकारी स्वच्छ और लोकप्रिय प्रशासन नहीं दे सकता। उनका यह विचार संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों से परिलक्षित होता है। जो भारत देश को और सभी जनता को एक समान, समानता, प्रेम और बधुत्व की भावना से बांध सके।

विशिष्ट शब्द : हिन्दू समाज, दलित, असमानता, संविधान, समानता।

डॉ. अम्बेडकर केवल एक व्यक्ति थे अपितु वे एक संस्था और समाज थे। जब व्यक्ति में से समाज की सुगंध आने लगती तब वह संपूर्ण हो जाता है और संपूर्णता की अनुभूति मुक्ति के द्वार पर दस्तक देने लगती है। हर व्यक्ति समाज नहीं हो सकता। समाज भी कौन–सा? भारतीय समाज। भारतीय समाज अनेकानेक समाजों का समूह है। डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे मानव–समाज की स्थापना की चेष्टा की थी जो समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व भावना पर खड़ा हो और जिसकी नींव त्याग, बलिदान, समर्पण, सत्य, अहिंसा और प्रेम पर रखी गई हो। यदि किसी समाज में ऐसा नहीं है तो वह समाज कैसे हैं? समाज तो मानवकृत है और उसे सबकी सुविधा तथा विकास के लिए बनया गया है। जिस समाज में सब सुखी नहीं, वह समाज कितना सार्थक होगा, हिन्दू समाज उसका ज्वलंत उदाहरण है।

डॉ. अम्बेडकर ने यह समझ लिया था कि हिन्दू समाज–सुधारकों पर आश्रित रहकर अछूतोद्धार संभव नहीं। उन्होंने अछूतों को संबोधित करते हुए कहा था कि मानव–मानव सब समान है उनमें किसी प्रकार के भेदभाव के व्यवहार का चलन अमानवीय है और अनैतिक है। जिस समाज और धर्म में छुआछुत, असमानता, विषमता और शोषण–चक्र विद्यमान है, वह न समाज है और न धर्म। वे यूरोप, अमेरिका आदि गये थे, वहाँ रहे थे और वहाँ उन्होंने अध्ययन भी किया था। वहाँ उन्होंने छुआछुत नहीं देखी थी और न जाति–संबंध के आधार पर किसी को अपमानित और अपेक्षित होते पाया था। वहाँ उन्हे समता, प्रेम और लोकतांत्रिक संचेतना की अनुभूति हुई थी और उन्होंने समझा था कि स्वराज्य–प्राप्ति से भी जरूरी है– समाजिक और धार्मिक स्तर पर समानता का व्यवहार। जब तक हिन्दू समाज अपने सामाजिक और धार्मिक ढाँचे में दलित वर्गों को स्वतंत्रता, समानता और सम्मान का अधिकार नहीं देता है तब तक देश तरक्की नहीं कर सकता। दलित को समानता और सम्मान से जीने का अधिकार मिल गया तो परतंत्रता का कवच पलक झपकते उतार फेक दिया

जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि मात्र देश को स्वतंत्र कराने से काम नहीं चलेगा अपितु वह एक श्रेष्ठ राष्ट्र भी बने, जिसमें उसके प्रत्येक नागरिक को धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता मिले। यदि स्वराज्य में अछूतों को मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया तो वह उनके लिए स्वतंत्रता नहीं अपितु घोरतम परतंत्रता का प्रतीक होगा। आखिर ऐसे स्वराज्य का अर्थ भी क्या है जो सबको समानता का अधिकार प्रदान न कर सके। एक स्वतंत्र राष्ट्र में एक जाति विशेष अन्य जातियों का शोषण कर और उन्हें दासता की जंजीरों में जकड़े रहने का प्रयत्न करे तो ऐसे स्वराज्य से क्या लाभ?

भारतवासियों ने अपने अभूतपूर्व सतत् संघर्ष में हर तरह की कुर्बानियाँ दी। कई लोगों ने इसके लिए फाँसी व जेले काटी तथा अकथनीय अत्याचार बर्दाश्त किये तथा साम्राज्यवादी अंग्रेजो को इस देश से लम्बे संघर्ष से भगाया। आजादी के बाद भी इस समाजवादी भारत में समाज के लिए कोई जगह नहीं है बल्कि अर्द्ध सामन्तवाद, पूँजीवाद एवं धर्मान्ध जातिवाद का बोलबाला है गरीब और अनपढ़ समाज के लोग सामाजिक व आर्थिक समानता के लिए तड़प रहे हैं। इसलिए भारत के दलित एवं शोषित समाज के लिए प्रस्तावना में निहित सामाजिक आर्थिक न्याय तथा अवसर की समानता प्रदान करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कानूनी एवं मानवीय प्रत्याभूति संविधान में दर्ज की गई।

भारत के संविधान के भाग–3 में देश के लोगों को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं, जो इस देश के लोगों की अमूल्य निधि है। लेकिन दुर्भाग्य से अधिकतर लोगों के पास अपनी सामाजिक, आर्थिक विवशता के कारण इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए न तो 'शक्ति' है और न कि 'योग्यता'। अनुच्छेद 14 सभी लोगों को कानून के सामने समान रखते हुए कहता है कि 'भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा।'' लेकिन समानता का सिद्धांत दुधारी तलवार की तरह से है और यह जीवन की दौड़ में शक्तिशाली और अपंग को एक ही पैमाने पर रखता है। सामाजिक न्याय के विषय में एक कहावत है कि केवल समान व्यक्तियों में ही समानता की बात की जानी चाहिए। असमानों की 'समानों' से तुलना करना खुद ही असमानता है। निर्बलों, अपंगों और समाज के कम उपहारित सदस्यों, के पूर्ण सुरक्षा की मात्रा प्रदान किया जाने से ही किसी समाज की मानवीयता का मान होता है। भारत के अनुसूचित जातियों, जन–जातियों, पिछड़े वर्गों तथा समाज के निर्बल वर्ग के लोगों का विशेष अधिकार प्राप्त लोगों के साथ तुलना करना संविधान की रूह के मुताबिक सही नहीं है। हमारे देश में सही अर्थों में संविधान की प्रस्तावना के अनुसार वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना के बिना अनुच्छेद 14 की पूर्णतया व्याख्या किया जाना न तो तर्क संगत है और ना ही न्याय संगत।

अनुच्छेद 15 के अनुसार धर्म, मूल्य वंश, जाति, लिंग या जन्म–स्थान क आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है, लेकिन यह साफ बात है कि आज भी हमारे देश में धर्म, मूल, वंश, जाति लिंग तथा जन्म–स्थान के आधार पर विभेद किया जाता है। अनुच्छेद 16 के अनुसार ''राज्याधीन नौकरियों या पदो पर नियुक्ति के सम्बन्ध में नागरिको के लिए अवसर की समता होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति लिंग, उद्भव जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आध ाार पर किसी नागरिक के लिए राज्यधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न अपात्रता होगी और न विभेद किया जायेगा।'' परन्तु व्यवहार में हर तरह के सरकारी अथवा अर्द्ध–सरकारी रोजगार अथवा नौकरी भर्ती में तथा विभिन्न सरकारी तथा अर्द्ध–सरकारी तकनीकी व्यवसायिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के साथ किये जाने वाले आवेदन पत्रों में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान आदि के अलग–अलग विवरण माँगे जाते हैं और अनुच्छेद 15, 16 का खुलकर उल्लंघन ही नहीं अपमान किया जाता है। आर्थिक मुक्ति इस विषय में एक सपना बनकर रह गई है इन्हीं अनुच्छेदों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं तथा सामाजिक तथा शिक्षात्मक दृष्टि से पिछड़े हुये नागरिक वर्गों के हितों की खुलेआम उपेक्षा करके भरतीय संविधान का विशेष अधिकार प्राप्त स्वर्ण समाज द्वारा उपहास किया जाता

है। इससे भी ज्यादा 'अवसर की समानता तथा ''व्यवहार की समानता'' को शक्तिशाली तथा कमजोर को एक ही पलड़ा पर रखकर तौला जाना, सामाजिक न्याय से इंकार किया जाना है। वास्तव में यह ''परिणामों की समानता'' है जो कि समाज के आर्दशवादी इरादों की अभिव्यक्ति नहीं है। हम जैसे अत्याधिक असमानताओं से दूषित समाज के लिए अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 में व्यक्त असमानता तथा विभेद की समाप्ति के मौलिक अधिकारों का कोई अर्थ शेष नहीं रह जाता। हमारे संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 15(4), 16(4) तथा 46 आदि को दलित जातियों की हितों की रक्षा के लिए संविध ाान में स्थान दिया था लेकिन निहित स्वार्थों से प्रेरित लोग ये प्रचार करते हैं कि दलित जातियों के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था मूल अधिकारों का उल्लंघन है जैसे एक परीक्षा में परीक्षार्थी की कानूनी वरीयता से साफ इन्कार है लेकिन ऐसे लोग जान–बूझकर तथ्यों को नजरअन्दाज करते हैं कि हिन्दू समाज का 15 प्रतिशत संख्या वाला सवर्ण समाज केन्द्र और राज्यों की वरिष्ठ सेवाओं में 70 प्रतिशत से अधिक गैर कानूनी कब्जा किये हुये है। देहाती पृष्ठभूमि से आये सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े दलित समाज के बच्चे ''बड़े घरों'' के बच्चों के साथ बराबर के स्तर पर कभी भी मुकाबला नहीं कर सकते। ''समानता'' तथा ''मैरिट'' की उसी दौड़ में प्रतिभागी ''असमानों'' को बराबरी के स्तर पर आँका नहीं जा सकता।

भारत का दलित समाज हमेशा के लिए नौकरियों तथा प्रवेशों में आरक्षण नहीं चाहता दुर्घटनावश अथवा दुर्भाग्यवश आज तक भारत के सताधीशों ने आरक्षण को सेवाओं की विभिन्न श्रेणियों में पूरा नहीं किया। केवल चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती में आरक्षण पूरा हुआ है। क्योंकि इसमें दलित समाज के जाति के सदस्यों का सफाई कर्मचारियों के तौर पर गिनती भी शामिल है अब भारत के दलित समाज को अपने संघर्ष को नये आयाम और दिशा देते हुए आरक्षण को शीघ्र ही पूरा करवाना है और देश की कुलसम्पत्ति में से अपने हिस्से की 8.5 प्रतिशत सम्पत्ति में से अपने अधिकार में लेकर भारतीय संविधान की आत्मा को तृप्त करना है। अनुच्छेद 23 (1) मानव शोषण के विरूद्ध अधिकार की घोषणा करता है जिसके अनुसार (1) मानव का पुण्य और बेटबेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबरदस्ती का लिया हुआ श्रम प्रतिबेद्ध किया जाता है और इस उपलब्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा। इस अनुच्छेद को मूर्तरूप देने के लिए ''स्परेशन ऑफ इम्पोरल ट्रेफिक इन वीमने एण्ड गर्ल्ज एक्ट 1956'' संसद द्वारा पारित तथा लागू किया गया। परन्तु देश के लगभग हर भाग में खुली वेश्यावृत्ति ज्यादा ही पनन रही है। निर्धन वर्गों की मासूम लड़कियों को बहला फुसला कर या बलात पकड़ कर कोठों में पहुँचा दी जाती है। जहाँ पर उमर भर के लिए वे अमानवीय एवं नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती है। इस अनुच्छेद को लागू करने के लिए सभी प्रकार की वेश्यावृत्ति को समाप्त करके वेश्याओं का सम्मानपूर्वक समाज में समन्वित किया जाना तथा उनको समानान्तर रोजगार दिया जाना नितान्त आवश्यक है। जहाँ तक बालश्रम के प्रतिषेध का सवाल है, बन्धुआ मजदूरी तथा 'बेगार' को कानूनी रूप से गैर–कानूनी घोषित की जाने के पश्चात् भी विभिन्न प्रकार के सरकारी एवं अर्द्ध–सरकारी निर्माण कार्यों, खानों, बड़े फार्मों, कारखानों तथा जंगलात आदि के चल रहे ठेकों में काम करने वाले मजदूरों में बन्धुआ मजदूरी और बेगार एक आम बात है। इन सबके लिए केवल सरकार का कसूर नहीं है बल्कि दलित समाज के प्रबुद्ध व्यक्ति भी इसके लिए दोषी है जो कि ''लोक–हितवाद'' के होते हुये भी कुछ नहीं करते।

कितने दुःख का विषय है कि भारत के संविधान को लागू हुए 73 साल का समय हो चुका है लेकिन सरकार इन सिद्धान्तों और नियमों का पालन करने में पूरी तरह सफल नहीं हो रही है। इन निर्देशित सिद्धान्तों के अनुसार संविधान के लागू होने के तुरन्त पश्चात् आर्थिक एवं सामाजिक असमानताओं को समाप्त कर एक आदर्श समाज व्यवसथा स्थापित की जानी चाहिए थी। जहाँ महिलाओं और पुरूषों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त होते और धन उत्पादन के साधनों पर इजारेदारी समाप्त करके उनका समाजवादी वितरण किया जाता तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य का समुचित प्रबन्ध करके

दलित समाज का शोषण हर प्रकार से हमेशा–हमेशा के लिए समाप्त किया जाता। जीविका के समुचित साधन न होने के कारण आज भी लोग भूख के कारण मरते हैं, समाज में भौतिक साधनों पर स्वाभित्व तथा आधिपत्य कुछ लोगों का है।

निष्कर्ष :

डॉ० अम्बेडकर अपने समय के सबसे करूण सपूत थे। उनका हृदय प्रेम, दया, सहानुभूति और करूणा से ओत–प्रोत था। वे सच्चा मानव थे। उनका हृदय विकारों से रहित एकदम पारदर्शी था। उनके लिए सता गौण थी। उनके लिए मानव जीवन का महत्व सर्वोपरि था। उनकी धर्मनीति, उनकी अर्थनीति, उनकी समाजनीति और उनकी राजनीति का एक ही उद्देश्य था– मानव समाज का शिव, उसे दुःखों से मुक्ति दिलाता और समता, समानता तथा भ्रातृत्व प्रेम भाव की समरसता पर ला खड़ा करना। वे सच्चे अर्थों में मानवप्रिय महान् आत्मा थे जो सद्विवेक के अक्षय आलोक से सदा सूर्य की भाँति दमकते–चमकते रहे। वे भली प्रकार जान चुके थे कि जिस जातियुद्ध को उन जैसा निष्ठावान, समर्पित और विद्वान् इंसान नहीं जीत सका, उसे सहस्त्रों वर्षों से पददलित जाति क्या जीत सकेगा! इसलिए डॉ० अम्बेडकर ने संविधान में आरक्षण की व्यवस्था कर पद–दलित लोगों को समानता दिलाने का प्रयास किया।

आज अगर दलितों व पिछड़े वर्ग (जातियों) के लोग विधानसभाओं, संसद व सरकारी सेवा में उच्च पदों पर आसीन हैं और वे आबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के उपकारों के लिए कृतज्ञ नहीं हैं, तो उनकी यह कृतघ्नता उनके माथे पर एक कलंक है। आज जो सुविधा इन जातियों को मिली, वह डॉ० अम्बेडकर के संघर्ष का ही परिणाम है। डॉ. अम्बेडकर ने दलित व पिछड़ों के जिन अधिकारों के लिए आजीवन संघर्ष किया, उसको उन्होंने अगस्त, 1947 में भारत संविधान के निर्माण की बागडौर संभाल कर सफल कर दिखाया।

संदर्भ :-

1. डॉ. अम्बेडकर चिंतन और विचार, लेखक– डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर, प्रकाशक–जगतराम एण्ड संस IX/221, सरस्वती भंडार गाँधीनगर, दिल्ली, 110031
2. भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडर, संपादक डॉ. कालीचरण 'स्नेही' प्रकाशक–आराधना ब्रदर्स 124/152 सी. गोविन्दनगर, कानपुर–6
3. डॉ. अम्बेडकर समाज–व्यवस्था और दलित साहित्य, लेखक–कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशक–किताब घर 24/4855, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली, 110002 संस्करण–2007
4. डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शिक्षा दर्शन (बाबा साहब के चुने हुए व्याख्यान) लेखक– रघुनाथ सिंह, प्रकाशक–लाइफ लाइन बुक्स 1/9427, वैस्ट रोहतास नगर शाहरा, दिल्ली–110032
5. डॉ. अम्बेडकर राजनीति, धर्म और संविधान विचार, संपादक– डॉ. नरेन्द्र जाधव, प्रकाशक–प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली– 110002, संस्करण–2015
6. डॉ. अम्बेडकर आयाम दर्शन, संपादक – किशोर मकवाना प्रकाशन– प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, संस्करण–प्रथम 2019
7. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्र दर्शन, संपादक–किशोर मकवाणा, प्रकाशन–प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2019
8. डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन, संपादक–डॉ. नरेन्द्र जाधव, प्रकाशन–4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, संस्करण–2015

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 59-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

खोरठा कहानियों में प्रेम का स्वरूप

–भुनेश्वर महतो

शोधार्थी, अनुभाग– खोरठा, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, (झारखण्ड)

संस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक की कहानियों में कहानीकारों के द्वारा प्रेम का चित्रण विभिन्न रूपों में किया गया है। संस्कृत साहित्य में जहाँ पंचतंत्र की लघु कथाओं में पशु–पक्षियों के प्रेम को माध्यम बनाकर लोकरंजन के साथ–साथ लोकमंगल की कामना की गई है– वहीं हिन्दी साहित्य में कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के द्वारा ग्रामीण जीवन की यथार्थ अनुभूति को अपनी कहानियों में स्थान दिया गया है। किसानों का कृषि के प्रति प्रेम का चित्रण प्रेमचंद का उपन्यास गोदान में सजीव एवं मार्मिक ढंग से किया गया है। जैनेन्द्र कुमार ने मनोविश्लेषणात्मक कहानियों की रचना करके नायक–नायिका के प्रेम की मानोदशा का चित्रण बड़े ही प्रभावशाली ढंग से किया है। हिन्दी साहित्य में सैकड़ों कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण बड़े ही सुंदर मार्मिक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किये हैं। मुंशी प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानंद, हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, यशपाल मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती आदि कथाकारों ने प्रेम के स्वरूपों को विभिन्न रूपों में अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किये हैं।

हिन्दी कहानीकारों से प्रभावित होकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के क्षेत्रीय भाषा के साहित्यकारों ने अपनी क्षेत्रीय भाषा में कहानियों की रचनाएं की हैं जिनमें प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। उन्हीं क्षेत्रीय भाषाओं में झारखण्ड में बोली जाने वाली एक सर्वप्रमुख क्षेत्रीय भाषा है– ''खोरठा''।

खोरठा भाषा में साहित्यिक रचना का प्रारंभ 17वीं शताब्दी से माना जाता है। 17 वीं शताब्दी में खोरठा शिष्ट गीत की रचना प्रारम्भ हुई एवं उसी समय से खोरठा शिष्ट साहित्य का पद्य रूप लिखित रूप में प्राप्त होते हैं। रामगढ़ राजा दलेल सिंह दलशाह द्वारा लिखित पुस्तक काव्य–शिवसागर है जिसमें 700 पृष्ठ का 12 हजार दोहा और चौपाई है।

खोरठा प्राचीन काव्य परम्परा के गौरवमय इतिहास के साथ ही कवियों ने युगनुरूप नये परिवेश में नविन रचनाएँ प्रस्तुत की। धीरे–धीरे ही सही पर भरतीय स्वतंत्रता संग्राम काल के बाद से यहाँ के कवियों को नया आकाश मिला और उसी समय से समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, घटनाक्रम उनकी रचनाओं में स्थान पाने लगे। इस प्रकार खोरठा काव्य साहित्य अपने पारंपरिक घेराबन्दी को तोड़कर खुला और विस्तृत धारातल पाया है इसी में खोरठा काव्य रचना की ओर विस्तृत रूप मिला। खोरठा काव्य साहित्य के उपर्युक्त विवेचन से इसकी प्राचीनता एवं इसके वैभव के साथ ही आधुनिक खोरठा काव्य के संकेत मिलते हैं। खोरठा काव्य में प्रबंध काव्य, खण्ड काव्य एवं स्फूट काव्य रचनाओं की बहुलता है। अनेक कवि एवं उनकी रचनाएँ सम्मान के योग हैं। खोरठा काव्य संसार जितना समृद्ध और गौरवमय है, खोरठा गद्य भी सभी विधाओं में अपनी गहरी पैठ बना चुका है। उपन्यास, कहानी, निबंध, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, व्यंग्य, आलोचना, नाटक एकांकी संस्मरण आदि सभी विधाओं में खोरठा की सशक्त रचनाएँ उपलब्ध है।

खोरठा साहित्य में प्रेम के विभिन्न रूप :-

खोरठा साहित्य में प्रेम का चित्रण निम्नलिखित रूपों में देखने को मिलता है:–

1. नायक–नायिका का प्रेम। 2. बेटियों के प्रति प्रेम।

3. वात्सल्य प्रेम के माध्यम से समाज के प्रति प्रेम।

नायक–नायिका का प्रेम :–

नायक–नायिका के बीच का प्रेम का चित्रण प्राचीन काल से ही होते आ रहा है। संस्कृत साहित्य के साहित्यकारों से लेकर आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों तक नायक–नायिका के बीच प्रेम की भावना का सुंदर एवं स्वच्छ चित्रण हुआ है।

खोरठा साहित्य के कथाकार भी नायक नायिका का प्रेम से अछूता नहीं है। खोरठा कथाकारों के द्वारा भी नायक नायिका को विषय बनाकर प्रेम का सुंदर सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया गया है। पंचम महतो, भोगनाथ ओहदार, भुनेश्वर साहु, बिनोद कुमार, महेन्द्र प्रबुद्ध, चितरंजन महतो चित्रा आदि कथाकारों के द्वारा नायक–नायिका का निश्छल प्रेम का उद्घाटन किया गया है।

ऐसे ही कहानियों में खोरठा के जाने–माने कथाकार भुनेश्वर साहु के द्वारा लिखी गई एक कहानी है– ''मांझो''। इस कहानी का नायक बिनोद और नायिका मांझो है। बिनोद और मांझो के बीच जो प्रेम की भावना थी, उसका सुंदर सजीव एवं मार्मिक चित्रण बड़े ही सरल और सहज भाषा में लेखक के द्वारा किया गया है।

नायक नायिका का प्रथम मिलन रजरप्पा के मेले में होता है। प्रथम मिलन में ही दोनों की आँखे चार हो जाती है। दोनों एक दूसरे को पसंद करने लगते है। पसंद प्रेम में बदल जाती है। एक दूसरे के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन नायक बिनोद के पिताजी को ये रिस्ता मंजूर नहीं था, क्योंकि उसके पिताजी अपने बेटे के लिए एक लड़की देख चुके थे जहाँ उन्हें तिलक के रूप में ढेर सारे रूपये एव ंदहेज मिलने की आशा थी। पिता के मन में दहेज का लालच था।

बिनोद पिता के द्वारा तय किए गए रिश्ते को ठुकरा देता है। क्योंकि बिनोद मांझो से प्रेम करता था। मांझो एक सुंदर और गौरवर्णा लड़की थी। बिनोद भी दोहरे बदन का सुंदर लड़का था। इस कारण भी दानों के बीच प्रेम की भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। दोनों एक दूसरे को जान से भी ज्यादा चाहते थे। दोनों के बीच विवाह तय हो गया था।

विवाह के दो दिन पहले चावल कूटने के क्रम में मांझो के हाथ के पाँचों ऊँगलियाँ कट जाती है और वह लुल्ही हो जाती है। इस खबर को सुनकर बिनोद के घर वाले अपने बेटे की शादी मांझो के साथ करने से मना कर देते हैं। बिनोद का अंतर्मन टूट जाता है। वह रात–दिन मांझो और उससे जुड़ी यादों के बारे में सोचते रहते है। इधर मांझो भी रात–दिन रोती रहती है। हमेंशा उनकी आँखों में आँसु भरे रहते हैं। वह सोंचते रहती है कि अब हमारी शादी नहीं होगी। नायक और नायिका दोनों एक दूसरे के बारे में सोंच–सोंच कर रोते रहते हैं। दोनों की आँखों से नींद गायब हो चुकी है।

दोनों का दुबारा मिलन तब होता है जब मांझो अपनी ईलाज के लिए राँची के एक अस्पताल में भर्ती होती है। बिनोद भी पढ़ाई करने के लिए राँची जाता है। बिनोद को पता चल जाता है कि मांझो राँची के अस्पताल में ही भर्ती है तो वह अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए अस्पताल पहुँच जाता है। दोनों की आँखें एक बार फिर दो–चार हो जाती है। दोनों के आँखों में आँसु भर आते हैं। बिनोद मांझो से ही विवाह करने का वादा करके माँझो के मन में जो हलचल थी उन्हें शांत कर देते हैं। मांझो को और अधिक चिंतित नहीं रहने के लिए कहते हैं। इस तरह से मांझो को फिर से नया जीवन मिल जाता है।

इस तरह से खोरठा साहित्य में भी नायक–नायिका के बीच पवित्र एवं निश्छल प्रेम का सुंदर, सजीव एवं मार्मिक

चित्रण देखने को मिलता है।

बेटियों के प्रति प्रेम :-

खोरठा कथा साहित्य में बेटियों के प्रति प्रेम की भावना पर विशेष बल दिया गया है। खोरठा के एक सर्व प्रमुख कहानीकार पंचम महतो ने अपनी कहानी 'उदासी' के माध्यम से समाज के लोगों को यह बताने का प्रयास किया है कि बेटे और बेटियों में फर्क नहीं मानना चाहिए। बेटियों को बेटों से अधिक प्रेम माता–पिता और समाज के लोगों द्वारा दिया जाना चाहिए, क्योंकि बेटियाँ आज बेटों से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं।

पंचम महतो द्वारा लिखी कहानी 'उदासी' का मुख्य पात्र उदासी है जो सोमरी और बुधना की तीसरी बेटी है। पहले ही दो बेटियों को जन्म देने के बाद सोमरी और बुधना तथा उसके घरवाले चाहते थे कि अब एक बेटा होना चाहिए जिससे हमारा वंश आगे बढ़े। लेकिन तीसरी बार भी एक बेटी को जन्म देने के कारण घर में उदासी का महौल छा गया। इसलिए तीसरी बेटी का नाम उदासी रखा गया। चौथी बार दोनों एक बेटे को जन्म देते हैं। घर में खुशी का माहौल छा गया। बेटे का नाम राजकुमार रखा जाता है। बेटे को खूब अच्छी–अच्छी चीजें खाने को मिलता है पहनने के लिए मखमली कुर्ता खरीदी जाती है खेलने के लिए नये–नये खिलौने खरीदे जाते हैं। यह सब देखकर बेटे से दो वर्ष बड़ी बेटी उदासी के मन भी इन सभी चीजों का लालच हो जाता है किन्तु बेटी होने के नाते उन्हें ये सभी चीजें नहीं दी जाती है।

तीनों बेटियों को सरकारी स्कूल में नामांकन करवाया जाता है, जबकि बेटे को अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में भर्ती कराया जाता है। उदासी घर का सारा काम करते हुए पढ़ाई करती है। वह पढ़ने में बहुत ही तेज है। वह अपनी कक्षा में हमेंशा प्रथम आती है। उदासी मैट्रीक की परीक्षा पास कर जाती हैं। इधर बेटा बार–बार पढ़ाई में फेल हो जाता है जबकि उसे सभी सुविधाएँ दी जाती हैं। माता–पिता द्वारा लाड–प्यार अधिक मिलने के कारण गलत संगती के पाले पड़ जाता है और लड़का बिगड़ जाता है। बेटे को सुधारने के लिए हॉस्टल में भेज दिया जाता है। वहाँ भी वह गलत लोगों के साथ मिलकर शराब, जुआ आदि के नशे में धूत हो जाता है। लड़का पूरी तरह से बिगड़ जाता है।

जबकि बेटी मैट्रिक की परीक्षा पास कर छात्रवृत्ति लेकर आगे की पढ़ाई के लिए एक कॉलेज में नामांकन करवा लेती है। फिर अपनी दोस्त जो एक बी०डी०ओ० की बेटी थी, की मदद से मेडिकल कॉलेज में दाखिला लेती है और पढ़ लिखकर डॉक्टर बन जाती है।

उदासी की पढ़ाई और उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उसके माता–पिता बहुत ही प्रसन्न हो जाते है। उदासी अपना नाम रोशन करने के साथ–साथ अपने माता–पिता और गाँव का भी नाम रोशन करती है। उसके माता–पिता और घरवालों के द्वारा उदासी को खूब प्यार–दुलार मिलने लगता है। गाँव और समाज के लोग भी उदासी को प्यार–दुलार और सम्मान देने लगते हैं। समाज के लोगों के मन में भी बेटियों के प्रति प्रेम की भावना जग जाती है। गाँव–समाज के लोग भी उदासी से प्रभावित होकर अपनी–अपनी बेटियों के प्रति प्रेम की भावना रखने लगते हैं। अपनी बेटियों को पढ़ाना लिखाना चाहते हैं। उन्हें लगने लगता है कि आज बेटियाँ भी बेटों से कम नहीं हैं। बेटें और बेटियों में जो अंतर की भावना थी वह मिट जाती है। माता–पिता के मन में तथा समाज के लोगों के मन में बेटियों के प्रति प्रेम की भावना जागृत हो जाती है।

इस तरह से खोरठा साहित्य के साहित्यकारों द्वारा माता–पिता और समाज के बीच बेटा और बेटी में फर्क की जो भावना थी उसे अपनी कहानियों के द्वारा काफी हद तक मिटाने का सरहानीय प्रयास किया गया है और बेटियों के प्रति प्रेम की भावना को जागृत किया गया है।

वात्सल्य-प्रेम के माध्यम से समाज के प्रति प्रेम :-

खोरठा कहानीकारों के द्वारा अपनी कहानियों में वात्सल्य प्रेम को सर्वप्रमुखता से स्थान दिया गया है।

ऐसे ही कहानीकारों में खोरठा साहित्य के एक कहानीकार हैं– पंचम महतो। पंचम महतो ने अपनी कहानी 'दीदीजी' में वात्सल्य–प्रेम का चित्रण बड़े ही सरल और सहज शब्दों में किया है।

इस कहानी की मुख्य नायिका फूलमनी है जिसे प्यार से लोग दीदीजी कहते हैं। फूलमनी एक पढ़ी लिखी गृहणी थी। उनके परिवार में उनके पति राम बाबू, सास–ससूर तथा ननद थी। अपने परिवार के लोगों की सेवा करना फूलमनी का धर्म था। लेकिन फूलमनी के ह्रदय में एक ही दुःख था–कि उनकी कोई संतान नहीं थी।

वैवाहिक जीवन के पाँच वर्ष बीत जाने के बाद भी फूलमनी की कोई संतान नहीं होती है, डॉक्टर के द्वारा जाँच के बाद पता चलता है कि वह कभी माँ नहीं बन सकती है। तब से फूलमनी बहुत उदास रहने लगती है। कोई संतान नहीं होने के कारण वह हमेशा दुखी रहने लगती है। वह रात–दिन रोते रहती है। हर पल वह सोंचते रहती है कि उसकी कोई संतान नहीं है, वह कभी माँ नहीं बन सकती है। रात–दिन उनकी आँखों से आँसु बहते रहते हैं। निःसंतान होने की चिंता में वह दिन–प्रतिदिन सूखते जा रही है। उनका शरीर सूखकर काँटा हो जाता है। अपनी पत्नी को रात–दिन रोते, आँसू बहाते और चिंतित होते देख राम बाबू अपनी पत्नी को खुश करने का उपाय ढूँढने लगाता है।

उसी समय गाँव में एक स्कूल खोलने की खबर आ जाती है। गाँव वाले एक ईमानदार मास्टर की तलाश करने लगे। गाँव के ही एक व्यक्ति किशुन बाबू के दिमाग में राम बाबू की पत्नी फूलमनी का नाम आया। फूलमनी एक पढ़ी–लिखी महिला थी। इसलिए किशुन बाबू फूलमनी को मास्टरनी बनाने का निर्णय लेता है। राम बाबू के मन में यह बात आई कि अच्छा समय है फूलमनी दिन रात रोते रहती है। स्कूल में बच्चों के साथ रहेगी तो मन लगा रहेगा और सब कुछ भूल जाएगी।

यही सोंच कर रामबाबू ने अपनी पत्नी फूलमनी से कहा– तुम बच्चा–बच्चा करती रहती हो, तुम देवी माँ के मंदिर जाओ पूजा करो तुम्हें बच्चे अवश्य मिलेंगे। फूलमनी दूसरे दिन देवी माँ के मंदिर जाती है, पूजा अर्चना करती है उसी बीच किशुन बाबू पाँच बच्चों को साथ लेकर मंदिर आते हैं। किशुन बाबू फूलमनी से कहते हैं आज से ये पाँचों बच्चे तुम्हारे हैं तुम इन बच्चों को स्कूल में पढ़ाओ। फूलमनी को देवी माँ का आशीर्वाद मिल गया।

फूलमनी पाँचों बच्चों को अपनी संतान मानकर खूब मन लगाकर पढ़ाने लगी। अपनी ही संतान की भाँति बच्चों से स्नेह करती है, उन्हें दुलार करती है। देखते ही देखते फूलमनी के बच्चों की संख्या बढ़ने लगती है। उन बच्चों को खूब मन लगाकर पढ़ाती है।

दो साल के अंदर 400 (चार सौ) बच्चे और 11 (ग्यारह) मास्टरनी स्कूल में आ जाते हैं। फूलमनी हेड मास्टरनी बन जाती है। वह स्कूल में पढ़ाई के साथ–साथ कसरत, नाचने, गाने, नाटक, अन्य–सांस्कृतिक गतिविधियाँ करवाने लगती है।

फूलमनी बच्चों की पढ़ाई के साथ–साथ गाँव के लोगों को भी पढ़ाने लगती है। बच्चों के माता–पिता के साथ गाँव के दूसरे स्त्रियों पुरुषों तथा बुजुर्गों को भी फूलमनी शिक्षा देने लगती है। उनके इस व्यवहार तथा कर्तव्य निष्ठा सेवा की भावना को देखकर गाँव के लोग बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, स्त्रियों से लेकर पुरुषों तक फूलमनी को प्यार से 'दीदीजी' कहकर सम्बोधित करने लगते हैं। उन्हें सभी दीदीजी कहकर बुलाते हैं। स्त्री–पुरुष बच्चे–बूढ़े सभी फूलमनी को आदर एवं सम्मान करते है।

इस तरह वात्सल्य प्रेम के माध्यम से समाज के प्रति प्रेम का चित्रण 'दीदीजी' कहानी में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष स्वरुप कहा जा सकता है कि खोरठा साहित्य में विभिन्न साहित्यकारों द्वारा प्रेम के विभिन्न रुपों का चित्रण किया गया है। जहाँ एक ओर खोरठा साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार भुनेश्वर साहु की कहानी ''मांझो'' में नायक–नायिका के स्वच्छ एवं निश्छल प्रेम का चित्रण बड़े ही सुंदर, सजीव एवं मार्मिक ढंग से हुआ है, वहीं दूसरी ओर खोरठा के जाने माने कहानीकार डॉ० भोगनाथ ओहदार की कहानी ''सोंध माटिक टाब'' में ग्रामीण–संस्कृति और ग्रामीण–मिट्टी की महक के प्रति प्रेम का उद्घाटन बड़े ही सरल एवं सहज शब्दों में सजीव एवं मार्मिक ढंग से हुआ है। जहाँ पंचम महतो की एक कहानी ''उदासी'' में बेटा और बेटी के बीच के अंतर को मिटा कर बेटियों के प्रति प्रेम की भावना को जागृत करने का सराहनीय प्रयास किया गया है वहीं पंचम महतो की ही दूसरी कहानी ''दीदीजी'' में वात्सल्य प्रेम के माध्यम से समाज के प्रति प्रेम की भावना का उजागर सहज ढंग से हुआ है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 64-67

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में मीडिया एक सामाजिक सरोकार के रूप में

–दिलीप कुमार

गांव पोस्ट भाटा, वाया पादरू तहसील सिणधरी, जिला बाडमेर, राजस्थान–344801

हर कोई सामाजिक मीडिया के बारे में बात करता है लेकिन क्या वे जानते हैं कि इस अवधारणा का मतलब क्या है? सामाजिक मीड़िया का मापक क्या है? इससे पहले कि आप सामाजिक मीडिया प्रयासों को मापना शुरू करें, सुनिश्चित करें कि आप इन प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। याद रखें, ब्रांड और प्रतिष्ठा का निर्माण करते समय एक अच्छा काम करना आपके लिए पहले से अधिक सरल है। हम उपरोक्त परिभाषा को थोड़ा और परिष्कृत एवं विस्तारित करना चाहते हैं ताकि यह और भी स्पष्ट हो सके कि यह शब्द क्या है, अर्थात् सामाजिक मीडिया उन उपकरणों और तकनीकों का लाभ उठाता है जो सहभागी संचार की सुविधा प्रदान करते हैं, जिससे उपयोगकर्ता दर्शकों और लेखक के बीच आसानी से सामंजस्य बैठा सकता है। सामाजिक मीड़िया के प्रयासों के लिए उपयोग किये जाने वाले टूल्स और उपकरण सीमित प्रोग्रामिंग या तकनीकी कौशल वाले लोगों को भाग लेने, कनेक्ट करने और ध्यान केन्द्रित करने में सक्षम बनाते हैं ताकि वे अन्य लोगों के साथ जानकारी और अंतर्दृष्टि साझा कर सकें। जैसाकि ऊपर बताया गया है, सामाजिक मीडिया में कॉर्पोरेट ब्लॉगिंग शामिल है और विपणकों के लिए काफी नया है। इसलिए यह कॉर्पोरेट और जनसंपर्क या पीआर स्थापित करने वालों के लिए स्वर्ग जैसी एक जगह हैं। सामाजिक मीड़िया को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि 'सामाजिक मीडिया ऑनलाइन संचार है जिसमें व्यक्ति दर्शकों और लेखक की भूमिका के बीच तरल और लचीले ढंग से बदलाव करते हैं। ऐसा करने के लिए वे सामाजिक सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हैं जो किसी को भी कोडिंग के ज्ञान के बिना सक्षम बनाता है, सामग्री को पोस्ट, टिप्पणी, साझा या मैश करने और साझा हितों के आसपास समुदायों का निर्माण करने में सक्षम बनाने की कला ही सामाजिक मीड़िया है।'

'मीडिया' शब्द अंग्रेजी के 'मीडियम' का अग्रगामी है। मीडियम शब्द का शाब्दिक अर्थ है माध्यम। कई लोग भ्रमवश 'मीडिया' और 'मीडियम' शब्दों का एक ही अर्थ लेते है जो कि तार्किक नहीं है। मीडियम का अर्थ है साधन जबकि 'मीडिया' शब्द एक वचन में प्रयुक्त होता है और इसके अर्थ बहुआयामी हैं अर्थात् मीडिया का ताल्लुक मुख्य रूप से प्रिंट, प्रसारण, सामान्य संचार, कम्प्यूटर संचार, यहाँ तक कि लोक–माध्यम इत्यादि भी मीडिया के अभिन्न अंग है। इस पृष्ठभूमि में मीडिया हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। पिछले कुछ दशकों में तकनीकी–विकास के कारण आई सूचना–क्रांति ने मीडिया के स्वरूप को न केवल बहुआयामी बनाया है बल्कि उसे पूर्णतः रूपांतरित भी किया है। एक ओर रेडियो और टेलीविजन के साथ समाचार–पत्रों के जरिए समाचारों के संप्रेषण की व्यवस्था ने नये–नये रूप ले लिये हैं, दूसरी ओर कम्प्यूटर के माध्यम से इंटरनेट, वेब, ट्विटर, फेसबुक आदि ने मीडिया को अपरिमित गति और प्रतिक्रिया की स्वतंत्रता उपलब्ध करायी है। इस तरह मीडिया का यह रूप कहीं अधिक सहभागी और लोकतांत्रिक बन गया है।

आधुनिक युग का मनुष्य न्यू मीडिया के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए असर और उसकी शक्ति का दिन–प्रतिदिन अनुभव

कर रहा है, क्योंकि आज सामाजिक मीडिया केवल समाचारों का संकलन करके उसके प्रकाशन–प्रसारण मात्र से संतोष नहीं करता बल्कि उसका उद्देश्य और कर्तव्य इससे बहुत ज्यादा है। समाचार के प्रकाशन–प्रसारण के साथ–साथ मत का प्रकटीकरण भी उसका मुख्य कर्तव्य है। मीडिया तंत्र न केवल समाचार बेचने का एक तरीका है और न व्यवसायियों तथा कॉर्पोरेट जगत के कार्य व्यापार का साधन मात्र। वह एक ऐसा उद्यम है जो मदद के नियम पर आश्रित है और जिसमें एक हिस्सेदार आम जनता है। उसकी शक्ति का रहस्य इस बात में है कि वह जनता के हृदय, उसकी भावना तथा उसकी बुद्धि का संस्पर्श करता है। उसमें गति और स्पंदन प्रदान करता है। जिन बातों के रहस्यों को ज्ञान–चक्षु नहीं देख पाते उन्हें अपनी सूझ–बूझ और कल्पना के आधार पर बाहर निकाल लाता है। भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की संभावना की ओर संकेत करता है और तदनुकूल विलियम शेक्सपियर के प्रसिद्ध स्वकथन 'क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए' की तर्ज पर जनता को सलाह देता है।

जीव से जुड़े पहलुओं, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के सभी अंगों में विधि–निषेध की तरफ संकेत करना और आम जनता को उसके हित और कल्याण हेतु उत्प्रेरित करना उसका आदर्श है, जो वस्तुतः उसकी शक्ति और असर का स्रोत है। सामाजिक मीडिया के टूल्स आवश्यक रूप से व्यक्तिगत कौशल सेट नहीं है, लेकिन कौशल के एक व्यापक स्पेक्ट्रम को कवर कहते हैं जो यदि एक साथ उपयोग किये जाते हैं, तो व्यक्ति को अधिक कुशल और विपणन योग्य बनाते हैं। यह पुस्तक मेरे द्वारा पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रमों और अनुभवों के आधारभूत पर लिखी गयी है जो विषयवस्तु को समझने और मूल्यांकन करने के लिए एक संसाधन है। विषय पर आने से पूर्व हमें कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को जानने और समझने का प्रयास करना होगा, जो निम्नांकित है –

- ☐ पहला, कम से कम आपके पास एक सक्रिय सामाजिक मीडिया अकाउंट होना चाहिए और लिंक्डइन खाता आपके पर्सनल ब्रांड के आसपास होना चाहिए इसी तरह, आपको पता होना चाहिए कि एक हैशटैग क्या है, हम इसका उपयोग क्यों करते हैं, और इसका उपयोग कब करें या कब न करें।
- ☐ क्या आप सामाजिक मीड़िया के उपयोग करने के पीछे के तर्क को जानते हैं? यहां एक–दूसरे से जाने–अनजाने, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष की गयी वचनबद्धता है। यह एक व्यापक उत्तर है, लेकिन यदि आप सामाजिक मीडिया का अनुसरण कर रहे हैं, तो आपको पता होना चाहिए कि सामान्यतः यह विषय बाहरी और आंतरिक हितधारकों के साथ 'जुड़ाव' है।
- ☐ सामाजिक मीडिया के रोलर कोस्टर पर कूदने से पहले (सामाजिक माध्यम से) बोलने और सामाजिक योजना/रणनीति को सुनने के महत्व को स्वीकार और आत्मसात् करें।
- ☐ सामाजिक मीडिया पेशेवर को नयी चीजों की कोशिश करने के लिए खुला होना चाहिए और आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन करने के लिए लचीलापन होना चाहिए। सामाजिक मीड़िया और इसके मापकों के बारे में लगातार पढ़ने के लिए खुद को प्रतिबद्ध करें, नवीनतम रूझानों और सर्वोत्तम प्रथाओं के लिए आक्रामक तरीके से खोज करना। इस बदलते सामाजिक परिदृश्य में आपको तत्पर और जागरूक रहना चाहिए।
- ☐ ग्राहक सेवा के अवसरों के लिए आपको सामाजिक मीड़िया की निगरानी के बारे में उदारमना होना चाहिए और ग्राहक या पार्टनर की ओर से बातचीत शुरू करनी चाहिए सामाजिक मीड़िया ब्रांडों को सक्रिय रूप से वार्तालापों की निगरानी करने और पहले से कहीं अधिक तेजी से प्रस्तावों पर पहुंचने की अनुमति देता है।
- ☐ आपको सीधे उपभोक्ताओं से जुड़ना चाहिए ये गहरे संबंध उच्च–स्तरीय इंटरेक्शन का कारण बन सकते हैं, जिसमें वकालत और वफदारी शामिल है।
- ☐ सफलताओं को उजागर करने के लिए मासिक आधार पर सामाजिक मीडिया कार्यों और रिपोर्टों का विश्लेषण

करें। यह आपको उन नए अवसरों की पहचान करने की क्षमता भी प्रदान करता है, जिन्हें आप देख सकते है।

- ☐ किसी भी सामाजिक मंच के लिए समयानुकूल और प्रासंगिक सामग्री बहुत महत्वपूर्ण है। इसी तरह, सामग्री को एक विशेष मंच और इच्छित दर्शकों के लिए यथानुरूप और अनुकूलित किया जाना चाहिए।
- ☐ आपको अपने व्यवसाय/उद्देश्यों से संबंधित लक्ष्यों को पहचानना और समझना होगा। आपके ब्लॉग, फेसबुक पेज, ट्विटर प्रोफाइल, यूट्यूब चैनल आदि पर सभी सामग्री को आपके व्यवसाय/लक्ष्यों से संबंधित लक्ष्यों का समर्थन करना है।
- ☐ एक सामाजिक मीडिया पेशेवर के रूप में, आपके पास दूरी तय करने के लिए धैर्य होना चाहिए, सामाजिक रणनीति अल्पकालिक नहीं है। विशिष्ट उद्देश्यों के साथ दीर्घकालिक लक्ष्यों को पहले पहचाना जाना चाहिए, उसके बाद जगह में विशिष्ट रणनीति बनायी जानी चाहिए।
- ☐ सामाजिक रणनीति के साथ पारंपरिक को एकीकृत करने का महत्व है। यह अक्सर आसान होता है और इसमें बहुत समय, लोग और धैर्य शामिल होता है।
- ☐ क्या आपको एसईओ सर्वोत्तम प्रथाओं का कुछ ज्ञान है? कई छात्र यह सोचकर पाठ्यक्रमों के इस पहलू पर बहुत कम ध्यान देते हैं कि यह आईटी से जुड़ा कार्य, नौकरी या कर्तव्य है। सीईओ को 'कैसे और क्यों' को जानना आपके करियर और ब्रांड के लिए बहुत बड़ी मदद हो सकती है।
- ☐ आपके पास एक ठोस समझ होनी चाहिए कि एक सामाजिक मीडिया पेशेवर के रूप में, आपको व्यापार साझा करने, नया करने और व्यवसाय में सुधार करने के लिए विभिन्न अन्य विभागों (जिसमें बिक्री, आईटी, कानूनी, एचआर, आर एण्ड डी तक सीमित नहीं है) के साथ सहयोग करना चाहिए।
- ☐ क्या आप जानते हैं कि आपके सेक्टर में कौन से शीर्ष प्रभावशाली व्यक्ति है? आपके प्रतियोगी ? उद्योग विशिष्ट रूझान? आपको विभिन्न सामाजिक तकनीकों का उपयोग करके उन्हें खोजने में सक्षम होना चाहिए और आपके द्वारा एकत्रित किये गये डेटा में आत्मविश्वास महसूस करना चाहिए।

सामाजिक मीडिया केवल ट्वीट करने के तरीके, विभिन्न सामाजिक प्लेटफार्मों का उपयोग कैसे करें, और उपलब्ध विभिन्न उपकरणों को कैसे नेविगेट करना है, यह जानने से बहुत अधिक यह जानना जरूरी है कि अपने संगठनों के लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए उन्हें एक साथ (प्रभावी रूप) कैसे उपयोग किया जाये। इसमें उच्च स्तर की रणनीतिक सोच, एक बहुत ही महत्वपूर्ण कौशल शामिल है। अन्य ब्रांड संचार के साथ समाज को एकीकृत करने के महत्व को देखते हुए रणनीतिक योजना अधिक महत्वपूर्ण है। व्यवसाय के लक्ष्यों के और वैयक्तिक उद्देश्यों के साथ सामाजिक मीड़िया लक्ष्यों को संरेखित करने की अक्सर अनदेखी की जाती है। आज व्यवसाय में रणनीतिक योजना में आउटपुट (ट्विट, ब्लॉग पोस्ट और वीडियो) बनाने से अधिक शामिल होना चाहिए, इसमें रिश्तों की वास्तविक इमारत शामिल होनी चाहिए जो नीचे की रेखा की वृद्धि–संवृद्धि का कारण बनती है।

लोकतंत्र के तीन मुख्य स्तंभ है – विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका और लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में सर्वमान्य तरीके से प्रेस या मीडिया को स्वीकार किया गया है। वर्तमान में अगर हम सारी व्यवस्था पर नजर डालें तो पता चलता है कि लोकतंत्र के इस चौथे स्तंभ ने बाकी तीनों स्तंभों पर हावी होने की कोशिश की है। वर्तमान में मीडिया अपना जो चेहरा पेश कर रहा है, वह अब अपने खतरनाक रूप में सामने आ रहा है। मीडिया अपनी भूमिका को ज्यादा आंक कर ऐसी तस्वीर पेश कर रहा है कि लोकतंत्र के बाकी तीनों स्तंभों की कार्यप्रणाली पर इसका प्रभाव पड़ने लगा है। वास्तव में मीड़िया का कार्य है कि वह जनता के सामने सच की तस्वीर लाए और सरकार का जो तंत्र है, उसको जनता के सामने प्रस्तुत करें, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। और इसी तरह मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह सरकार के

सामने जनता के सही हालात प्रस्तुत करें, ताकि तंत्र में बैठा हुक्मरान यह भूले नहीं कि उसकी कुर्सी लोक के जिम्में ही है और वह उसी भीड़ का नुमाइंदा हैं, जो आज उसके सामने खड़ी है।

सामाजिक मीड़िया प्रोद्योगिकियों ने कई प्रकार के उपयोगकर्ताओं के बीच पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है। गुणात्मक और मिश्रित तरीकों के सामाजिक मीडिया की प्रवृत्तियों का अवलोकन करके उसमें प्रयुक्त तकनीकों की पहचान की गयी थी। गुणात्मक सामग्री फोकस ग्रुप और सर्वे मेथडॉलॉजी के माध्यम से लोगों से डेटा एकत्र करने में सबसे अधिक उपयोग किये जाने शोध दृष्टिकोण शामिल हैं। सामग्री विश्लेषण दूसरा सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला तरीका है जिसके तहत शोधकर्ता फेसबुक पोस्ट, ट्वीट्स (ट्विटर पोस्ट), यूट्यूब वीडियो या अन्य सामाजिक मीडिया सामग्री का डेटा स्त्रोत के रूप में उपयोग करते हैं। मात्रात्मक और गुणात्मक डेटा के संयोजन से जुड़े कई अध्ययनों में एक डिजाइन का अनुसरण किया गया था, जो कि क्रेजवेल और प्लानों क्लार्क की बुनियादी मिश्रित विधियों टाइपोलॉजी (जैसे–समांतर–समानान्तर, व्याख्यात्मक–अनुक्रमिक और खोजपरक अनुक्रमिक) से बना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. रामलखन मीना, मीडिया विमर्श : आधुनिक संदर्भ, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।
2. वी.आर. कृष्ण अय्यर, फ्रीडम ऑफ इन्फॉरर्मेशन, ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ।
3. हिरण्यमय कार्लेकर (2002), 'द मीडिया : इवोल्यूशन रोल एण्ड रिस्पॉसिबिलिटी।'
4. एस.पी. शर्मा (1966), द प्रेस : सोसियो–पॉलिटिकल अवेकनिंग, मोहित पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली।
5. पी.सी. चटर्जी (1987), ब्रॉडकास्टिंग इन इण्डिया, सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली।
6. यू.वी. रेड्डी (1995), 'रिप वान विंकल : अ स्टोरी ऑफ इण्डिया टेलीविजन', डी.फ्रेंच और एम. रिचड्र्स(सम्पा.), कंटम्परेरी टेलीविजन : ईस्टर्न पर्सपेक्टिव्ज, सेज, नयी दिल्ली।
7. डब्ल्यू. ग्लिन मैनगोल्ड, डेविड जे. फॉल्ड्स, सोशल मीडिया : द न्यू हाइब्रिड एलिमेंट ऑफ द प्रमोशन मिक्स, बिजनेस होराइजन्स, जर्नल ऑफ द केल्ली स्कूल ऑफ बिजनेस, इंडियाना विश्वविद्यालय।
8. के. बालासुब्रह्मण्यम (1999), द इम्पेक्ट ऑफ ग्लोबलाइजेशन ऑफ मीडिया ऑन मीडिया इमेजिज : अ स्टडी ऑफ मीडिया इमेजिज बिटवीन 1987–1997, अप्रकाशित थीसिस, ओहाइयो स्टेट यूनिवर्सिटी, कोलम्बस।
9. के. सियुनी (1992), डब्ल्यू. टुएट्शलर और द यूरोमीडिया रिसर्च ग्रुप, डायनामिक्स ऑफ मीडिया पॉलिटिक्स, सेज पब्लिकेशंस, लंदन।
10. एन.एन. बोहरा और सव्यसाची भट्टाचार्य (सम्पा.), लुकिंग बैंक : इण्डिया इन ट्वेंटियथ सेंचुरी, एनबीटी और आईआईसी, नयी दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 68-71

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रसाद का प्रेम दर्शन : एक पुनर्मूल्यांकन

–डॉ. मधु लोमेश

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

रोमानी अथवा स्वछंदतावादी कवि होने के कारण प्रसाद हिंदी साहित्य में प्रेम और दर्शन के अनूठे कवि हैं। अल्प आयु के साहित्यिक जीवन में हिंदी साहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि जो उनके द्वारा हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व महान, आकर्षक, अनुप्रेरक, शांत एवं स्निग्ध है। अपने सुंदर, स्वस्थ एवं आनंदी व्यक्तित्व के कारण ही वे सदैव प्रेम और सौंदर्य के प्रति आसक्त रहे। उनका साहित्य विशद और व्यापक है 'चित्राधार', 'प्रेम पथिक', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' जैसी रचनाओं के आलोक में उनकी साहित्य साधना में प्रेम अनुभूति को देखा जा सकता है। छायावादी चिंतन और रहस्यमयी भावभूमियो में विचरण करते हुए प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को प्रेम के विविध रूपों एवम् प्रेम साधना की गहनता सहित आनन्द सृष्टि के महत्त्व से परिचित कराया! मानव सभ्यता के विकास का विराट रुपक बाँधते हुए 'कामायनी' के माध्यम से प्रसाद ने मानवीय प्रेम, सौंदर्य–प्रेम के विविध रूपों को मूर्त्त रूप प्रदान किया है।

अपनी प्रारंभिक कविताओं में उन पर द्विवेदीयुगीन काव्य पद्धति का प्रभाव देखा जा सकता है। उनके विषय, भाव, विचार, भाषा, छंद, अलंकार, शैली आदि सभी द्विवेदीयुगीन है। 'कानन कुसुम', 'गान', 'रमणी हृदय', 'चित्रकूट', 'भारत', 'कुरुक्षेत्र', 'वीर बालक', आदि रचनाएँ इसी युग की देन हैं, जो इतिवृतात्मक, उपदेशात्मक, आदर्शात्मक, वर्णनात्मक, अन्योक्ति प्रधान एवं भाव

ात्मक है। जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में द्विवदी जी का प्रत्यक्ष प्रभाव मैथिलीशरण गुप्त, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय और अप्रत्यक्ष प्रभाव श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय आदि पर पड़ा, उसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उस रू रूप में पूर्णतया प्रसाद जी पर नहीं पड़ पाया।

'कानन कुसुम', 'चित्राधार' आदि की कविताओं के लिए उन्होंने उन्हीं विषयों को चुना जिन विषयों पर द्विवेदी जी प्रेरित कर रहे थे अथवा जिन विषयों पर द्विवेदी युग में कविताएँ की जा रही थीं। चित्राधार की कविताएँ प्रकृति, भक्ति एवं श्रृंगार तक ही सीमित थीं। 'कानन कुसुम' में आकर उनकी दृष्टि अन्य विषयों की ओर भी बढ़ती है। शृंगारिकता की ओर संकेत करते हुए वे किसानों, अछूतों, मजदूरों की समस्याओं को अपना विषय बनाते हैं। अतीत के मध्यकालीन ऐतिहासिक कथानकों, रामायण, महाभारत आदि के लघु प्रसंगों को भी उन्होंने अपनी कविताओं का विषय बनाया है, साथ ही साथ प्रथम प्रभात, करुण क्रंदन, हृदय वेदना, प्रभो, निशीथ, नदी, मोहन, भवसागर, भरत जैसी कविताओं को देखकर कहा जा सकता कि कवि प्रसाद की प्रतिभा द्विवेदीयुगीन संकीर्ण काव्यभूमि की लघु सीमा को पार करने को सचेष्ट है। स्वयं कवि की पंक्तियाँ इस ओर संकेत करती प्रतीत होती हैं।

'इसमें रंगीन और सादे सुगंध वाले और निर्गध मकरंद भरे हुए सभी प्रकार के कुसुम हैं।' (कानन कुसुम–भूमिका–प्रसाद)

द्विवेदीयुगीन कठोर वर्जनाओं को तोड़ते हुए प्रसाद अपनी इसी विशिष्टता के कारण द्विवेदी युग से अलग जान

पड़ते हैं और कुछ समय पश्चात छायावादी युग के प्रमुख कवि के रूप में एवं नाटक, कथा साहित्य में 'प्रसाद युग' के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। अनूभूति, भिव्यक्ति, कल्पना एवं प्रतिभा के माध्यम से उन्होंने साहित्य में सृजनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा की। प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति उनकी कविता के प्रमुख विषय हैं।

प्रेम मानव–जीवन का सर्वाधिक व्यापक, अनादि एवं शाश्वत सत्य, शाश्वत तत्व है। उनका संपूर्ण काव्य ही प्रेम और सौंदर्य की व्याख्या करता जान पड़ता है। प्रगीतों में प्रेम का साक्षात्कार अधिक है। उनमें प्रेम के सभी अंगों, क्षेत्रों तथा अवस्थाओं का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म आलेखन है। यौवनागम से लेकर इनमें पूर्वराग, प्रथम दर्शन, मिलन, मान, आदि के साथ विप्रलंभ शृंगार की विभिन्न दशाओं अभिलाषा, स्मृति, प्रतीक्षा, उपालंभ, विस्मृति, तन्मयता, अनुनय, अरुचि, अधीरता, अस्थिरता, उन्माद, मूर्छा आदि सभी काम–दशाओं की नियोजना मिलती है।

अपने प्रारंभिक काल से ही प्रसाद प्रेम को अभिव्यक्ति देते हुए जान पड़ते हैं। 'झरना', 'प्रेम–पथिक', 'आँसू के गीतों' में प्रेम ही सर्वोपरि है। कल्पना–शक्ति द्वारा उन्होंने प्रेम की नवीन व्याख्या ऐसे काल में की, जब प्रेम–शृंगार का वर्णन वर्जित था। द्विवेदीयुगीन कठोर वर्जनाओं एवं नैतिक मान्यताओं की परवाह न करते हुए उन्होंने काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रेम का वर्णन कर हिंदी काव्य जगत में एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया। ''साहित्य किसी भी परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता। संसार में जो कुछ भी सत्य और सुंदर है, वही साहित्य का विषय है।' यह कहकर उन्होंने सत्यम् शिवम् सुंदरम् का सामंजस्य अपने काव्य में प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि नीतिवादी न होकर आनंदवादी एवं सौंदर्यवादी है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण प्रसाद द्विवेदी युग में होते हुए भी उससे अलग जान पड़ते हैं। प्रेम से सराबोर कवि का मन अपने काव्य में प्रेम–दर्शन की स्थापना करता है। उनका प्रकृति मोह इसी दर्शन के परिणामस्वरूप आगे चलकर प्रिय–प्रेम, मातृभूमि–प्रेम तत्पश्चात मानव प्रेम में परिणत हो जाता है और प्रेम एक उच्च भूमि पर पहुँच जाता है जिसमें उदात्तता, आंतरिकता, सात्विकता अधिक है। 'प्रेम पथिक' में जहाँ कवि प्रिय के कारण योगी हो जाता है, वहीं प्रौढ़ रचनाओं में कवि पूर्णतः स्वीकार कर लेता है कि–श्प्रिय ही उसका ईश्वर है। उनका प्रेम व्यक्तिगत अनुभूति के विकास के कारण स्वच्छंद स्वरूप में भी स्वस्थ एवं महान बना रहता है।

प्रसाद की प्रारंभिक रचनाओं में परंपरागत प्रेम का स्वरूप झलकता है। झरना, आँसू, कानन कुसुम ऐसी ही कृतियाँ हैं जिनमें कवि ने प्रणय भावों के वर्णन, नखशिख वर्णन, विप्रलंभ श्रृंगार, चित्रण में परंपरागत प्रतीकों द्वारा प्रेम और यौवन के चित्र, प्रथम दर्शन के प्रेम का वर्णन किया है। श्लहरश तक आते–आते उनके काव्य में प्रेम की व्यापकता, प्रांजलता, अनुभूति का विस्तार और चिंतन की गहनता देखी जा सकती है। प्रेम का व्यापक चित्रण उनके काव्य की प्रमुख पहचान बन जाता है। 'लहर' का प्रथम गीत ही इस अंतर को स्पष्ट कर देता है, यथा

ओ प्यार पुलक से भरी दुलक
आ चूम पुलिन के विरस अधर।

प्रेम व्यथित कवि सर्वत्र प्रिय की स्मृति में खोया हुआ दिखाई पड़ता है–

मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं
स्वप्न देखकर भाग गया
आलिंगन में आते–आते
मुस्क्याकर जो भाग गया।

कवि जीवन में प्रेम का आस्वादन करने को अधीर हो उठता है–

फूलों ने पंखुरिया खोली
आँखें करने लगीं ठिठोली

हृदयों ने न सम्हाली झोली
लुटने लगे विकल पागलमन।

प्रेम की मादक अनुभूतियाँ कवि को सालने लगती हैं और अतीत की स्मृतियों में ले जाती हैं–

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे
जब सावन घन सरस बरसते,
इन आँखों की छाया भरते।

प्रेम का प्रतिदान न पाने पर कवि का आकुल मन असीम दुख का अनुभव करता है। उसके हृदय की पीड़ा, दैन्यता, दुर्बलता, व्याकुलता निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हो जाती है–

चिर तृषित कंठ से तृप्त विधुर,
धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति उनकी कविता के प्रमुख विषय हैं। उनके काव्य में प्रेम व्यक्त के प्रति, अव्यक्त के प्रति, प्रकृति, नारी, मानवमात्र किसी के भी प्रति हो सकता है। देशप्रेम भी प्रेम के एक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में प्रेम के स्वस्थ एवं उदात्त रूप की अभिव्यक्ति मिलती है। प्रसाद के प्रबंधकाव्य 'कामायनी' में भी ऐसे स्थलों की कमी नहीं, जहाँ उन्होंने प्रेम की अभिव्यंजना की है। मानवीय संवेदनाओं तथा प्रेम भावना को नवीन आयाम देते हुए उन्होंने 'कामायनी' में आर्यों के आत्मवाद और आनंदवाद का एक नवीन आयाम प्रस्तुत किया है। कामायनी की आरंभिक पंक्तियों में–

हिमगिरि के उत्तंग शिखिर पर बैठे शिला की शीतल छान्ह
एक पुरूष भीगे नयनौं से देख रहा था प्रलय प्रवाह
नीचे जल था उपर हिम था, एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन –

कहते हुए प्रसाद ने जल प्लावन के पश्चात मनु की विकलता और सृष्टि के शाश्वत सत्यों पर विचार करते हुए प्रेम की आवश्यकता को मानो चिन्हित करने का प्रयास किया है। श्रद्धा प्रेम का प्रतीक है जो मनु को विश्वास, प्रेम कला का पाठ पढ़ाने आयी है –

वह लीला जिसकी विकस चली, वह मूल शक्ति थी प्रेम कला,
अस्क संदेश सुनाने को, स्मृति में आयी वह अमला।

मनु का श्रद्धा, श्रद्धा का मनु एवं मनु का इड़ा के प्रति प्रेम इस काव्यकृति में परिलक्षित होता है। काम–वासनाजन्य प्रेम पर सात्विक प्रेम की विजय दिखलाकर प्रसाद प्रेम के आदर्श उदात्त सूक्ष्म रूप के दर्शन कराते हैं। रीतिकालीन शृंगारिता और काम भावना से भिन्न उनका प्रेम पाठक मन को प्रेम के अथाह सात्विक सागर में गात खिला निमग्न कर देता है। पाठक का मन आत्मा का अमित विस्तार पाते हुए हृदय की विशालता एवं त्याग की उच्च मानसिक भूमि पर प्रतिष्ठित हो जाता है। इस पवित्र प्रेम का ही परिणाम है कि व्यष्टि प्रेम भी इतना विशद हो जाता है कि हृदय की दुर्बलताएँ लेश मात्र भी विचलित नहीं कर पाती और उसे समष्टि प्रेम की ओर अग्रसर करती हैं–

मेरा अनुराग फैलने दो
नभ के अभिनव कलरव में।

वे प्रिय के अस्तित्व को भी विशाल एवं उदात्त रूप में ही देखने के अभिलाषी हो उठते हैं–

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ
इसमें क्या है धरा सुनो
मानस जलधि रहे चिर चंबित मेरे
क्षितिज उदार बनो।

प्रेम उनके लिए प्रतिदान की ही वस्तु है, कुछ पाने की नहीं–

पागल रे वह मिलता है उसको
कब जो देते ही हैं सब
आँसू के कण से गिनकर
यह विश्व लिए है ऋण उधार।

वास्तव में प्रसाद का काव्य प्रेम की विराटता का पर्याय है। उनके द्वारा रचित कहानियों, नाटकों में भी इस विराट प्रेम के दर्शन होते हैं। नया पाठक या आलोचक इस विराट भावभूमि से भली–भाँति परिचित न होने पर बहुधा उन्हें 'रूप और यौवन का काव्य लिखने वाला', 'रहस्यवादी रोमानी कवि' कह बैठता है और प्रगतिशील अध्ययनों के बल पर अधिकारपूर्वक यह सिद्ध करने की चेष्टा कर बैठता है कि उनके काव्य में किसी रूपसी या प्रेयसी की उपस्थिति अवश्यमेव रही होगी, अन्यथा ऐसा प्रेम वर्णन उनके काव्य में भला कैसे आकार ले पाता? इस प्रकार के अप्रामाणिक, असत्य आधारित, कपोल कल्पित कथनों से अमर साहित्यकार महाकवि प्रसाद के काव्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। प्रसाद का साहित्य हिंदी साहित्य का अमर साहित्य है। उनका प्रेम वर्णन व्यक्तिगत प्रेम की सीमाओं में आबद्ध न रहकर अदृश्य की साधना तक विस्तार पा जाता है। ऐसी भावभूमि पर अधिष्ठित उनका प्रेम–दर्शन त्याग, दया, करुणा की ओर प्रेरित करता है, स्वस्थ जीवन दर्शन प्रस्तुत कर पाठकों के हृदय को ऊर्जस्वित करने की क्षमता रखता है।

संदर्भ सूची :-

1. जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिक्ता – प्रभाकर श्रोत्रिय
2. जयशंकर प्रसाद – नंददुलारे बाजपेयी
3. हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास – भाग 10 –– नागरी प्रचारिनी सभा
4. प्रसाद का संपूर्ण काव्य – संपादन – सत्यप्रकाश मिश्र।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 72-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रकृति – विषयक प्रेम

–ममता रानी

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

प्रेम एक अत्यंत व्यापक शब्द है और प्रेम भाव के अनेक रूपों में प्रकाशन देखे जा सकते हैं, यथा– ईश्वर–प्रेम, प्रकृति–प्रेम, समाज–प्रेम, परिवार–प्रेम, संतान–प्रेम, स्वयं से प्रेम, नर–नारी प्रेम, राष्ट्र प्रेम या देश भक्ति या विश्व प्रेम इत्यादि। संसार में प्रेम से बढ़कर न कोई मूल्य है और न ही कुछ काम्य। प्रेम मनुष्य के जीवन का वो अमूल्य तत्त्व है जो मनुष्य के जीवन को बैकुण्ठी बनाता है। प्रेम के बिना मानव जीवन राख के ढेले के समान है। इस विषय में मलिक मुहमद जायसी का कथन है :–

मानुष प्रेम भइउ बैकुण्ठी।
नाहिं तो कहा छार भर मुट्ठी।।

प्रेम तो वह तत्त्व है जो मनुष्य को इस जन्म में सिद्ध एवं उस जन्म में मुक्ति दिलाता है। प्रेम भले ही जिस भी व्यक्ति, वस्तु एवं स्थान के लिए हो वह उसे दूसरे से भिन्न बना देता है और प्रेमी उसे प्राप्त करने के लिए अथवा उसकी रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है। साहित्य में नर–नारी के प्रेम की चर्चा अनेक रूपों में मिलती है। कुछ इसी प्रकार प्रकृति के प्रति प्रेम वैदिक ग्रन्थों से लेकर आधुनिक समय तक देखने को मिलता है। हमारे महिमामय देश भारत की संस्कृति सहत्स्र्ताब्दियों से प्रक्रति की स्नेहमयी गोद में पली है, फली–फूली और बढ़ी है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद की ऋचाएँ, गिरियों की उपत्यकाओं, नदियों के तीरों, वृक्षों और लताओं के झोंकों के बीच ही ऋषियों के कंठ से गूंजी थी। इसका साक्ष्य स्वयं वेद ने दिया है :–

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम। धियाविप्रो अजायता।

हमारे मनीषियों की प्रज्ञा का निखार पर्वतों की गोद में और नदियों के संगम में हुआ है। ऐसी पूजनीय प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना होना कोई अनुचित बात नहीं है। आज के समय में औद्योगिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण प्रकृति का निरंतर दोहन हो रहा है, जंगल काटे जा रहे हैं। आज के समय में प्रकृति को बचाने की अनिवार्यता विश्व स्तर पर एक चिंतनीय विषय बना हुआ है। यदि हमने अभी भी प्रकृति की रक्षा के लिए प्रयास न किये तो वह समय दूर नहीं जब हमारे पास कोई रास्ता ही न बचे। समय–समय पर प्रकृति की रक्षा हेतु अनेक पर्यावरण चिंतकों ने अपनी भूमिका निभाई है ऐसे ही पर्यावरण एवम् प्रकृति प्रेमी के रूप में राजस्थान की भूमि में पल्लवित बिश्नोई सम्प्रदाय का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इस सम्प्रदाय की स्थापना 'सवंत 1542 में राजस्थान के सम्भराथल नामक स्थान पर हुई। इस सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु जम्भेश्वर थे इनका जन्म 'सवंत 1508 में सोमवार के दिन जोधपुर राज्य के अंतर्गत नागौर नामक परगने के पीपासर गाँव में हुआ। इनकी जाति पंवार वंशी राजपूतों की थी"।

गुरु जम्भेश्वर ने 'सबदवाणी' एवं 29 नियमों के द्वारा लोगों को सद्मार्ग की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया। इस आचार सहिंता में वृक्षों एवं जीवों की रक्षा हेतु नियम बताए गये हैं। वर्तमान समय में प्रकृति के प्रति प्रेम केवल प्रदर्शन

मात्र नहीं बल्कि इसको बचाने हेतु अथक प्रयास की आवश्यकता है।

प्रेम का अर्थ एवम् स्वरूप –

प्रेम एक अत्यंत सूक्ष्म, कोमल और व्यापक धारणा है विभिन्न अर्थों से इसे समझने का प्रयास किया जायगा।

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार प्रेम का अर्थ – "प्रीति, आत्मीयता, अनुराग, दयालुता, सहज सम्मान, खुशी, प्रसन्नता, मानसिक लगाव आदि से है"।

महान कोश के अनुसार प्रेम का अर्थ – "प्यार या स्नेह से है"।

प्रेमचंद प्रेम को आध्यात्मिक भोजन मानते हैं वे कहते हैं कि "प्रेम ही तो आध्यात्मिक भोजन है और सारी कमजोरियाँ इसी भोजन के न मिलने से पैदा होती हैं"।

प्रत्येक व्यक्ति, पशु यहाँ तक ईश्वर भी प्रेम की ही भाषा समझता है। परमात्मा प्राप्ति केवल प्रेम के द्वारा ही संभव है। अष्टछापी कवियों, मीराबाई, रसखा, धन्ना जाट अनेक भक्त हुए है जिन्होंने केवल प्रेम के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया है। प्रेम लौकिक एवं परलौकिक दोनों भावों के आधार पर संभव है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, "प्रेम में जो तीव्रता पायी जाती है वह आत्मविस्तार की ही इच्छा का परिणाम है, इस आत्मविस्तार द्वारा ही सुख की अनुभूति होती है। उन्होंने सामान्यतः प्रेम भाव के दो प्रकार माने है :–

1. मानव प्रेम, जिसमें लौकिकता होती है,
2. पारलौकिक क्षेत्र का प्रेम, जो दिव्य कहलाता है और जिसमे ऐन्द्रिकता या भोग तृप्ति नहीं होती"।

यही दिव्य कोटि का प्रेम ईश्वर, प्रकृति, ईश्वरीय प्रदत मानवता, पशु–प्राणी अर्थात जड़ एवम् चेतन दोनों के प्रति हो सकता है। जब प्रेम व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठ जाता है तब वह लौकिक से आलौकिक बन जाता है। प्रेम का यही स्वरूप संस्कृति के हित की कामना चाहता है एवं समष्टि हित हेतु कार्य करता है। 'समाज में प्रेम का वही रूप आदर्श माना गया जिसमें सेवा, त्याग, आत्म समर्पण, एकनिष्ठा, कष्ट, सहिष्णुता, अहं–भाव का विसर्जन तथा मर्यादा पालन का भाव हो'।

कुछ इसी प्रकार का प्रेम, समर्पण, त्याग, एवं सेवा का भाव प्रकृति के प्रति रखना अनिवार्य हो जाता है। प्रकृति और प्रेम का सम्बन्ध अनादिकाल से ही चला आ रहा है। प्रकृति का प्रेम को प्रदर्शित करने में और प्रेम की अभिलाषा बढ़ाने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। सर्वप्रथम मनुष्य प्रकृति से ही प्रेम करना सीखता है। एक शिशु वृक्ष के हिलते हुए पत्तों को देखकर आनंद उठाता है, युवावस्था में यही प्रकृति, उद्दीपक बनकर उसके प्रेम की आतुरता को और अधिक बढ़ाती है एवं वृद्धावस्था में प्रकृति की छांव में रहना आत्मिक तथा मानसिक शांति प्रदान करता है। इस प्रकार प्रकृति जीवन के आरम्भ से अंतिम पड़ाव तक हमारे साथ–साथ चलती है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रकृति प्रेम :–

बिश्नोई संत गुरु जम्भेश्वर ने हरे वृक्षों में भी प्राणों का संचार माना है। भविष्य दृष्टा होने के कारण संत भविष्य में होने वाले संकटों को भांप लेते है ऐसे ही गुरु जम्भेश्वर भविष्य में होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के खतरों के लिए सचेष्ट थे। उनकी मान्यता थी कि जीव–जंतु प्रकृति प्रदत अमूल्य निधि है। हरे वृक्ष हैं तो प्राण वायु है। अंतः उनका सहांर मानव समाज का सहांर है। उन्होंने बिश्नोई सम्प्रदाय की आचार सहिंता 29 नियमों में पर्यावरण संरक्षण हेतु 'जीव दया पालणी, रूँख लीलो नहिं घावे' अर्थात जीवों के ऊपर दया करो व हरे वृक्ष न काटने को नियमावली में शामिल किया है। आज उनके द्वारा प्रदत इस नियम का पालन बिश्नोई सम्प्रदाय के लोग अपने प्राणों का बलिदान देकर भी कर रहे है।

बिश्नोई बहुल गांवों में वन्य प्राणियों की संख्या भी सर्वाधिक नज़र आती है। उनके गांवों में खेजड़ी, कैर व कंकेहड़ी के पेड़ों का बाहुल्य मिलता है। गुरु जम्भश्वर के एक सबद में भी एक ऐसा ही उदहारण मिलता है :–

'ओइम हरी कंकेहड़ी मंडप मैड़ी, जहाँ हमारा वासा।'

बिश्नोई सम्प्रदाय के लोगों का प्रकृति के प्रति प्रेम अनेक उदाहरणों के द्वारा देखा जा सकता है। इतिहास मे देखें तो पेडों कि रक्षा के हितार्थ यदि किसी ने प्राणों का बलिदान दिया तो केवल बिश्नोई सम्प्रदाय के लोगों ने।

'सिर साटे रुंख रहे तो भी सस्तो जाण।'

उक्ति को चरितार्थ करते हुए बिश्नोई सम्प्रदाय के लोगों ने प्रकृति की रक्षा की है, इससे सम्प्रदाय के लोगों का प्रकृति विषयक प्रेम देखा जा सकता है। 'सन 1730 ई० में राजस्थान प्रान्त के जोधपुर नगर से 22 किलोमीटर दूर खेजड़ली गाँव में' 363 लोगों के शहीदी इतिहास की सबसे बड़ी घटना है तथा कालान्तर में भी अनेक घटनाएँ ऐसी मिलती है। गुरु जम्भेश्वर के शिष्य संत वील्हो ने अपनी वाणी में नेतू नैण एवं खिंवणी नामक दो महिलाओं की वृक्षों की रक्षा हेतु किये गये बलिदान का वर्णन किया है। वे कहते हैं :–

खींवणि धन्य तूं ही, नेतू नैण सधीर।
रहि कारण रुंखा उपरै, वह सुंपीया सरीर।।

संत वील्हो ने 'गोरा, करमा एवम् मोटो जी के प्राणों के बलिदान का वर्णन अपनी वाणी में किया है' ऐसे अनेक उदाहरण समाज में मिलते है। दूरदृष्टा होने के कारण संत–महापुरुष भविष्य में होने वाले संकटों को भांप लेते हैं और उसी के अनुरूप कुछ ऐसे नियम बनाते हैं यदि हम इस संतों के उपदेशानुसार जीवन यापन करें तो हमें कभी संकट का सामना न करना पड़े।

अंततः कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही प्रकृति हमारे लिए पूजनीय रही है लेकिन हम निजी स्वार्थ के लिए प्रकृति का विध्वंश कर रहे है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद इस तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है कि हमने सदैव प्रकृति की उपासना देवी के रूप में की है परन्तु समय के साथ–साथ प्रकृति को हानि भी बहुत पहुंचाई है, जिसका प्रतिफल हमें वर्तमान काल में दिखाई दे रहा है। यदि अभी भी प्रकृति की प्रतिष्ठा उसी प्राचीन रूप में नहीं की तो हमारा भविष्य अंधकारमय हो जायगा। बिश्नोई सम्प्रदाय में गुरु जम्भेश्वर के कथनों की पालना करते हुए प्रकृति को बचाने हेतु प्रयासरत है। बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रकृति को चेतन माना गया है उसी प्रकार का प्रेम किया गया है जिस प्रकार का किसी मानव विशेष से किया जाता है। वर्तमान समय में यदि प्रत्येक मानव प्रकृति से प्रेम करने लग जाए तो हमें किसी भी प्रकार के संकट का सामना न करना पड़े और यही धरती स्वर्ग बन जायें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. प्रेमचन्द – कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2013.
2. नगेंदर – विचार और विवेचन, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1946
3. हरिकांत श्रीवास्तव– भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, हिंदी प्रचारक पुस्कालय, बनारस, प्रथम संस्करण।
4. कृष्णानंद आचार्य– जम्भ्सागर, जाम्भानी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2018.
5. कृष्णलाल बिश्नोई– वील्हो जी की वाणी, जाम्भानी साहित्य अकादमी, बीकानेर, 2016.
6. हीरालाल माहेश्वरी – जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, बी.आर. पब्लिकेशन, कलकत्ता
7. बृहत हिंदी कोश– केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (भारत सरकार), 2018.
8. भाई काहन सिंह नाभा दृमहान कोश, इनसाइकलोपीडिया आफ सिख लिटरेचर, 1999.
9. यजुर्वेद 26/15

10. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृष्ठ संख्या 1
11. बृहत हिन्दी कोश, पृष्ठ संख्या 1641
12. महान कोश, पृष्ठ स. 806
13. प्रेमचंद, कुछ विचार, पृष्ठ संख्या 12
14. नगेन्द्र, विचार और विवेचन, पृष्ठ संख्या 45
15. कृष्णानंद आचार्य, जम्भसागर, पृष्ठ संख्या पृष्ठ संख्या 160
16. कृष्णलाल बिश्नोई, वील्हो जी की वाणी, पृष्ठ संख्या 78
17. वही पृष्ठ संख्या 76

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 76-78

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'टूटता वहम' कहानी–संग्रह में 'नयी राह की खोज' में सामाजिक चेतना

–मनोज कुमार द्विवेदी

शोध छात्र, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।

समाज में आज जब मनुष्य अपने बच्चों को एक अच्छी शिक्षा देने के लिए क्या–क्या नहीं करता? अर्थात् वह अपने बच्चों की शिक्षा के लिए हर संघर्ष करता है चाहे उसे अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए सामान ही क्यों न गिरवी रखना पड़े या कर्ज लेना पड़े। लेकिन आज के समाज में हर माँ–बाप अपने बच्चे को अंग्रेज़ी विद्यालय में पढ़ाना चाहता है। उन्हीं में एक रामचंद जी है जिन्होंने अपने बेटे लालचंद को अंग्रेज़ी कॉन्वेंट स्कूल में दाखिल करवाया था। दाखिले की फीस, किताब–कॉपियों का खर्च, यूनिफॉर्म का खर्च खुशी–खुशी उठाया था। के.जी. में तो सिर्फ यूनिफॉर्म, टाई, जूता–मोजा की फ़िकर करने में पूरा साल निकल गया। यूनिफार्म में लालचंद सचमुच बहुत प्यारा लगता था। माँ–बाप, दादा–दादी उसे देखकर खुशी से झूम उठते थे। जब बच्चा ए,बी,सी,डी और वन, टू, थ्री, फोर की कुछ गिनती पढ़ता तब सुनकर परिवार के सभी लोग बहुत खुश हो जाते थे। सभी के मन में यह था कि मेरा बेटा साहब बनेगा, अच्छी अंग्रेज़ी बोलेगा। परिवार के लोगों ने किसी तरह से अपने बच्चे को चौंथी कक्षा तक पढ़ाया उसके बाद स्थिति अच्छी न होने के कारण उसे कॉर्पोरेशन स्कूल में डाल दिया जाता है। जहाँ पर लालचंद को अब हिंदी में अ,आ,इ,ई पढ़ना पड़ता है जो उसे आता नहीं था। तब लालचंद ने पढ़ाई से अपनी दूरी बनाना शुरू किया। शुरू से अंग्रेज़ी पढ़ी अब उसे अपना नाम भी हिंदी में लिखना नहीं आता। लालचंद की पढ़ाई का हाल देखकर शिक्षक उसे पीटने लगे। शिक्षकों का गुस्सा देखकर लालू स्कूल से भागने लगा। घर भी कैसे जाए? बाप का अरमान था, "बेटा अंग्रेज़ी नहीं पढ़ सके, कम से कम हिंदी माध्यम से मैट्रिक कर ले। कहीं न कहीं अच्छी नौकरी मिल ही जाएगी।"[1] सो बाप का डर अलग स्कूल से भागकर घर जाएगा तो बाप पिटाई करेगा। लालू नाले किनारे बैठा गंदे पानी में पत्थर फेंकता रहता, शाम होती तब बस्ता लेकर घर आ जाता। लड़के का स्कूल से नाम कट गया। पता चलने पर माँ ने मास्टर जी और हेडमास्टर जी के बहुत हाथ जोड़े, पाँव पड़े, माफी माँगी मगर अब क्या हो सकता था? लालू का स्कूल में फिर से नाम नहीं लिखा गया। दो–तीन दिन लालू को पीटाई के साथ पढ़ाई ख़त्म हो गई।

सभी उसे अब कमाने के लिए कहने लगे। अब माँ दृबाप, दादा–दादी, नाना–नानी सबकी इच्छा थी कि लालचंद की शादी हो जाये। पहले तो लोग पढ़ाई भी इसीलिए करते थे कि किसी तरह शादी विवाह में कोई रूकावट न आए। बाद में भले ही बेरोजगार रहे। "रामचंद की कई पीढ़ियों से अशिक्षा चली आ रही थी। सफाई का धंधा विरासत में मिल जाता था। इसके आगे कुछ और सोचने का प्रयास कही दिखाई नहीं देता था। लालचंद भी सफाई कर्मी में भर्ती हो जाता है और सोचता है कि अब मेरी भी पीढ़ी भी इसी तरह से गुजरेगी। क्या उसका भी बेटा एक दिन सफाई मज़दूरों की लिस्ट में आ जाएगा। जैसा कि वह आ गया है। ऐसा कब तक चलेगा? कहीं न कहीं और कभी न कभी तो इस परंपरा को तोड़ना ही पड़ेगा। रामचंद को अपने बेटे का भविष्य देखकर बहुत दुख हुआ था। अब लालचंद अपने बच्चे के भविष्य के विषय में चिंतित रहने लगा।

रामचंद को उम्र के साथ समाज में जिम्मेदार बुजुर्ग का स्थान मिला है। अपने समाज के समझदार और जागृत लोगों के साथ मिलकर उसने एक सामाजिक संस्था बनाई है जिसका नाम है 'जागरूक'। रामचंद अपने साथ के लोगों से इस विषय में सोच–विचार के साथ चर्चा करता– "हमारी संतान हमारी तरह दूसरों की गुलामी करें–ऐसा नहीं होना चाहिए।"[2] वह समाज में चेतना जगाना चाहता था, उसके सोये हुए आत्मसम्मान को जगाने के लिए वह बार–बार कहता है– "यह भी कोई ज़िंदगी है? हाथ बाँधे, सिर झुकाएँ, सबकी हाँ जी, हाँ जी जीकर तेर हो....। वही जानवरों जैसा जीवन, गंदगी को साफ करते रहो और गंदगी में पड़े रहा.....यह कब तक चलेगा? कहीं न कहीं तो इसकी रोक होनी चाहिए। इस बात से सभी सहमत होकर एकमत हो जाते हैं कि सचमुच इसके लिए, हमें कुछ करना चाहिए।"[3]

समाज के सभी जागरूक कार्यकर्ता सभी ऐसी चर्चा करते भईया सभी लोग अपने–अपने बच्चों को पढ़ाओं। थोड़ा–थोड़ा बचत करके हमें अपने बच्चों का भविष्य बनाना पड़ेगा। रामचंद और उनकी जागरूक संस्था के लोगों की बातों का असर समाज पर पड़ने लगा। गाँव के कई लड़के–लड़कियों ने अच्छे नंबर लेकर मैट्रिक पास किया। उसके बाद तो बच्चे बी.ए.. एम.ए. की पढ़ाई भी करने लगे, लेकिन इससे समस्या हल नहीं हुई। लोग पढ़–लिखकर भी नौकरी नहीं कर पाते। बच्चे पढ़े–लिखे होने के बावजूद घर की जिम्मेदारियों को देखते हुए और माँ–बाप, रिश्तेदारों के कहने पर उन्हें फिर से वही अपनी पैतृक कार्य साफ–सफाई के अलावा और कुछ नहीं दिखता था। पूछने पर बताते है कि क्या कोई चोरी कर रहा हूँ? मेहनत करके परिवार का भरण–पोषण कर रहा हूँ। बढ़ती जनसंख्या में अब सफाई कर्मी की भी नौकरी मिलना मुश्किल हो रहा था। इसके लिए भी रिश्वत देना पड़ रहा था। छुआछूत, जाति भेद समाज में चरम सीमा पर था।

रामचन्द की छोटी बहन बुधिया का बेटा मैट्रिक तक पढ़ा था। पॉलिटेक्निक भी पढ़ा। खर्च के अभाव में बुधिया अपने बेटे कमल को आगे नहीं पढ़ा सकी। विधवा गरीब बुधिया ने अपने बेटे की नौकरी सफाई कर्मी के लिए बीस हज़ार की रिश्वत देती है और ऑफिस के चक्कर लगाती है। उसने अपना पूरा गहना बेच दिया था। उसकी हालत रो–रोकर खराब हो रही थी। तभी एक व्यक्ति ने उसे दस हज़ार रूपये पुनरू रिश्वत देने की बात करता है और कहता है कि वह उसे बाबू की नौकरी लगवा देगा, बम्बई में उसकी ऊँची पहुँच है। बुधिया और कमल पुनरू उस पर विश्वास कर लेते हैं और उसे दस हज़ार रूपये दे देते हैं। वह व्यक्ति भी पैसा लेकर बम्बई चला जाता है और उसका भी कोई अता–पता नहीं रहता।

निराश मन से कमल भी संविदा पर सफाई कर्मी की नौकरी करने लगता है। यह सब देखकर रामचंद बहुत दुखी होता है। जागरूक संस्था के लोग समाज के भविष्य के लिए विचार करने लगे। लालू का बेटा हरिश्चन्द्र कॉलेज में पढ़ रहा था। एक बेटी बारहवीं में है, छोटी बेटी दसवीं पढ़ रही है। लालू भी अब कम अक्ल का नहीं है। जो बातें उसे अपने पिता से धरोहर के रूप में मिली थी वे ही लालचंद के मन में फल–फूल रही थी। लालू ने यह निश्चय किया कि जो काम हमारे पूर्वजों ने किया उसे अपने बच्चों को नहीं करने देंगे। अब जागरूक संस्था के लोगों ने यह निश्चय किया कि हम समाज में नये–नये उद्योग डालेंगे। हमारी संस्था के माध्यम से उनकी योग्यता के अनुसार काम मिलेगा। उद्योगों में प्लास्टिक के सामान बनाने और बड़ी मशीनों के पुर्जे बनाने के उद्योग प्रमुख होंगे। उद्योगों की संख्या और क्षेत्र बढ़ता ही रहेगा, क्योंकि वाल्मीकि, सुदर्शन, मखियार, हेला आदि संपूर्ण स्वीपर समाज एक होकर एकजुटता के साथ इस संस्था से जुड़ गया। अब इस संस्था का नाम बदलकर ्अखिल भारतीय सफाई कामगार जागरूक समाज' कर दिया गया। अब इस संस्था के द्वारा लोगों को आत्मनिर्भर करना शुरू किया गया। इस संस्था के द्वारा स्कूल, कॉलेज, ट्रेनिंग सेंटर, टाइपिंग, जेराक्स, कम्प्यूटर, प्रीटिंग प्रेस आदि में पढ़ाई के अनुसार नौकरियाँ देनी शुरु हुई।

रामचंद खुश है वह सबसे कहता– "सचमुच समाज के जागरूक लोग प्रशंसा के पात्र हैं जिन्होंने यह सोचा और

समाज को दिशा दी। वह व्यवसाय क्यों न छोड़ दिया जाये जिसके कारण लोग हमें घृणा की नज़र से देखते हैं? हमें तुच्छ समझते हैं। हम अपनी इस मज़बूरी को रहने नहीं देंगे। समाज को पुरानी परंपरा से मुक्त करके नयी परंपरा से जोडेंगे। हम नई राह की खोज करेंगे। जिस पर चलकर हमारा समाज सम्मान के साथ सिर उठाकर चल सकेगा। बेरोज़गारी और गरीबी से हम मुक्त हो सकेंगे– इस तरह हमारी अगली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित बन सकेगा।"[3]

लालचंद का भी कहना है कि– "केवल भूख और प्यास की शांति जीवन नहीं है। निश्चित रास्तों पर आँखें बंद करके चलना, अन्धानुकरण करना जीवन नहीं है। जीवित वही है जो सक्रिय है, क्रियाशील है, प्रयत्नशील है, प्रगतिशील है, परिवर्तनशील है। उसकी गति को कौन रोक सकता है? जो व्यवसाय हमें आत्मसम्मान दे, आत्मिक बल दे, प्रगति का मार्ग दिखाये–वही हमारे लिए उत्तम है।"[4]

हरिश्चन्द्र भी इन बातों को समझने लगा है। वह कहता है कि वे लोग महान है जिन्होंने समाज को उद्योग व्यवसाय की ओर प्रेरित किया है। समाज को आत्मनिर्भरता और समानता–सम्मान की ओर बढ़ाया है– इस तरह उन्होंने एक नयी राह की खोज की है। समाज को जागृत कर उनके भविष्य को जागृत किया। ऐसी नयी राह की खोज करने वालों को हम कभी भूल नहीं सकते।

संदर्भ :-

1. डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'टूटता वहम' (नई राह की खोज), अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली–110033, पृ. सं. 66
2. डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'टूटता वहम' (नई राह की खोज), अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली–110033, पृ. सं. 67
3 डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'टूटता वहम' (नई राह की खोज), अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली–110033, पृ. सं. 69
4. डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'टूटता वहम' (नई राह की खोज), अनिरुद्ध बुक्स, दिल्ली–110033, पृ. सं. 72

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 79-83

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन काव्य में प्रेम का स्वरूप

–डॉ. नागरत्ना एस्

सह – आचार्य, एस. आ. एन. कॉलेज, बेंगलोर।

ये इश्क़ नहीं आसाँ इतना ही समझ लीजे
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है। – जिगर मुरादाबादी

पोथी पढ़ी पढ़ी जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।। – कबीरदास

पिया बिण रहयां जायां। टेक।
तण मण जीवण प्रीतम वारयां।
निस दिन जोवां बाट छब रूप लुभावां।
मीरां रे प्रभु आसा थारी दासी कंठ आवां।। – मीराबाई

यह प्रेम भी बहुत अजीब चीज है, पता ही नहीं चलता कब, कहाँ, कौन हृदय पर वार करते हैं। ताज्जुब की बात है कि दिल पर वार होने के बाद भी दर्द नहीं होता है। घावं जितना गहरा होता है उसका अनुभूती भी उतना ही सुखदायक होता है। इस सुख के तुलना में संसार के जितने भी सुख–साधन है, वह सब फीका लगता है। प्रेम के अघोष में एक बार चले जाने के बाद लाख कोशिश करने पर भी बाहर नहीं आ सकते हैं। मरने के बाद मात्र शरीर नष्ट होता है, लेकिन प्रेम जिंदा रहती है। प्रेम इतना ताकतवर है कि किसी के सामने झुकती नहीं, किसी के धमकी पर डरती नहीं, दौलत के सामने घुटने टेकती नहीं, प्रभावी शक्ति के सामने कमजोर नहीं होती है। प्रेम अपनी निष्ठा और श्रद्धा हमेशा बरक़रार रखती है। अमुक व्यक्ति के प्रति अपनी आत्मा समर्पण कर लेती है। एक व्यक्ति से प्रेम होने पर दूसरे किसी पर भी रुचि नहीं लेती हैं। शायद इसलिए कहते है कि, 'प्रेम अँधा होता है' और 'प्रेम कभी नहीं मरता है।' मैं मानती हूँ कि, 'हम किसे चाहते हैं उसके प्रति अपने आपको समर्पण कर लेना।' प्रेम एक ऐसा जड़ी–बूटी है कि बुराई को अच्छाई मैं परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। प्रेम के बिना संसार स्थित नहीं हो सकता है, संसार बनाने वाले भी यही चाहते है कि इंसान प्रेम से जीवन बिताए।

अगर हम मध्यकालीन साहित्य पर विचार किया जाये तो, मध्यकाल में बहुत ही श्रेष्ठ और उच्च कोटि की साहित्य का सृजन हुआ है। उस काल में मुस्लमानों के पदार्पण होने के कारण, विदेशी शासकों ने हिन्दुओं को प्रताड़ित करने लगे थे। विदेशी शासकों द्वारा त्रासित लोगों के मन–मानस में निराशा की भावना निष्पन्न हुई थीं। विदेशी शासकों के दरबार में देशी भाषा और देशी साहित्यकारों के राज्याश्रय समाप्त हो गया था। देशी साहित्यकार राज–दरबार से हटकर साधुओं के कुटिया में आश्रय प्राप्त किया। इस बेला में साहित्यकार भगवान की कीर्तिगान के ओर आकृष्ट हुए। भगवन से भक्ति

करने पर उन्हें सुख–शांति, मन में आशा की किरणें पनपने लगे थें। इसलिए वे काव्य के माध्यम से भगवान की गुणगान, आराधना, भक्ति तथा प्रेम करने लगे थे।

हिंदी साहित्य के मध्यकाल को, पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल तथा उत्तर–मध्यकाल या रीतिकाल जैसे दो भागों में विभाजित करते हैं। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहते हैं। क्योंकि इस काल में महाकवि ही नहीं, कवि ही नहीं बल्कि जनकवि भी लिखे थे या अवि हो गये थे। मध्यकाल को ऐसे कहना उचित होगा कि, भक्तिकाल पर मात्र हिन्दी ही नहीं, अपितु पूरे भारत गर्व कर सकता है। मध्यकाल कि साहित्य में भक्ति कि परकष्टा को देख सकते हैं। भक्ति कहने से अच्छा होगा की, 'प्रेम – भक्ति' कहा सकते हैं। आत्मा, जीवात्मा से मिलने के लिए इतना व्याकुल, इतना विवश, इतनी पीड़ा उठाना शायद हम कहीं और नहीं देख सकते हैं, जितना इस काल के साहित्य में देखते हैं। न मिलने पर, विरह का जो पीर की अनुभूति को अभिव्यक्त किया है, उसे हम जन सामान्य परिभाषित नहीं कर सकते हैं, वर्णनातित है, कल्पनातित है।

आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए इतना उन्मुख होता है, जैसे; एक सती अपनी पति से प्रेम करती है। परन्तु इस प्रेम में कहीं भी वासना का गंद नहीं है। भगवान से बिछुड़कर रहने की पीड़ा को विरह के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। विरह की पराकाष्ठता का वर्णन इतना उत्कृष्ट है कि, जीवात्मा आत्मसमर्पण करने के लिए भी हिचकिचाता नहीं है। ज्यादातर इस युग में विरह का चित्रण हुआ है। विरह भी लौकिक नहीं है, वासना पूरी होने के बाद 'प्रेम' नदारद हो जाती है, वैसा प्रेम नहीं है। यहाँ विरह का जो चित्रण हुआ है, अलौकिक है। पूरी जिंदगी एक 'तपस्या' की भाँति प्रतीक्षा करते हैं। मिलने की आतुरता में अपने आपको बलि चढाने के लिए भी सिध्द हो जाते हैं।

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलान कूँ, मनि नाहीं विश्राम।।

अर्थात् 'हे राम! मैं (विरहिणी आत्मा) तुम्हारी प्रतीक्षा बहुत समय से कर रही हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे दर्शन के लिए तृषित है और मन बिना दर्शन व्याकुल है। जीवात्मा, परमात्मा से मिलने के लिए तरस रही है। विरहाग्नि मैं तड़पते–तड़पते इस हद तक पहुँच जाती है कि, अपनी भौतिक शरीर से मोह को त्यागना पड़ेगा।

यहु तन जालौं मसि करों, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणी करूं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ।।

अर्थात्, विरहिणी (जीवात्मा) कहती है कि, इस शरीर को जलाकर स्याही बना लूँ और अस्थियों कि लेखनी बनाके राम का नाम लिखूँ और लिख–लिखकर अपने प्रभु राम को भेजूँ, कदाचित इस कृत्य से प्रसन्न होकर वे दर्शन देंगें। अगर इससे राम सन्तुष्ट या प्रसन्न न हुए तो, आगे कहते है कि,

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माहिं।।

अर्थात्, कबीरदास कहते है कि, प्रभु–भक्त का मार्ग मौसी का घर नहीं जहाँ विविध प्रकार कि सुख सुविधाओं से पूर्ण आतिथ्य प्राप्त होता है, यह तो प्रेम–स्थली है। इसमें उसी का प्रवेश हो सकता है जो प्रभु से सच्चा प्रेम कर सकता है, जो अपने सिर को उतार कर अपनी हथेली पर रख लेता है। अर्थात सर्वस्व त्याग करने के लिए प्रस्तुत हो इधर पदार्पण करे। इस तरह कबीरदास जी कि साहित्य में प्रेम का उत्कृष्ट निरूपण देख सकते है। भक्ति काल के निर्गुण धारा में कबीरदास जी प्रेम के बारे में अपना एक विशिष्ट परिभाषा दिये है।

सच्चा प्रेम करने वाले किसी से डरते नहीं है। यहाँ कृष्ण के अनन्य भक्तिन कवियित्री मीराबाई को उदहारण स्वरुप ले सकते हैं। साँवरे के रंग में रंगी हुई, आँखों में कृष्णा के प्रति अटूट प्रेम भरकर, अपने मधुर स्वर से मात्र मरुभूमि राजस्थान को ही नहीं, पुरे भारत को सींचा है। मीराबाई बचपन से ही भगवान श्रीकृष्ण से अनुरक्त थी।

माई मेरो मोहने मन हरयो। टेक।
कहा करूँ कित जाऊँ सजनी, प्रान पुरुष सूँ बरयो।
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे करयो।
साँवरी सी किसोरमूरत, कछुक टोनो करयो।
लोक लाज बिसारि डारी, तबहीं कारज सरयो।
दासि मीराँ लाल गिरधर, छान ये वर बरयो।

लोक–राज से, न कुल मर्यादा से, न किसी की निंदा से श्रीकृष्ण के प्रति अपनी प्रेम को दबाती नहीं है। वरन शादीशुदा होने के बावजूद भी पूरे संसार के सामने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी प्रेम को स्वीकारती है। सच्चा प्रेम करने से मीरा को अनेक बाधाओं को उठाना पड़ा। पतिगृह त्याग, सामाजिक रीती–रिवाजों को लांघा, अपनों से दूर रहा, विष का सेवन करवाया, विषधर को गले में धारण किया। प्रेम के मार्ग में न जाने कितने कठिनाइयों को सामना करना पड़ा। फिर भी मीरा का प्रेम श्रीकृष्ण के प्रति अटूट, दृढ़ रहा है। बाधाओं से मीरा कभी भी विचलित नहीं हुई बल्कि और मजबूत हो जाती थी। अपनी प्रियतम स्याम के प्रति प्रेम रंच मात्र भी कम नहीं हुआ था। अपितु अपनी प्रेम पर विश्वास करते हुए, अपनी प्रेम साधना के लिए आगे बढ़ती है।

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी। टेक।
जल जमुनामां भरवा गयांतां हती नागर माथे हेमनी रे।
काचे तें तातणे हरिजीए बाँधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधरनागर, शामली सुरत शुभ गमनी रे।।

प्रेम के लिए पूरे विश्व में राधा–कृष्णा से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं। ब्रज की सारी गोपिकाएँ अपनी पतियों की उपेक्षा करते हुए श्रीकृष्ण से रास–लीला रचते हैं। इन गोपिकाओं में राधा का स्थान सर्वोपरि है। प्रेम भी अजीब है, कृष्ण के प्रेम, में दिवानी होकर मीरा ने जहर पिया। लेकिन दिल की रानी बनी राधा! संसार :'राधा कृष्ण'' ही कहते हैं। कृष्णा राधा को देखते ही दिल दे बैठता है। कृष्ण के दिल में राधा के प्रति प्रेम की झरना झरने लगती है। पहली नज़र में ही ऑखें चार हो जाती है।

सूर स्याम देखत हरि रीझे, नैन–नैन मिलि परी ठगौरी।

राधा – कृष्ण के अटूट प्रेम संबंध के बारे में सूरदास लिखते हैं कि, राधा को लोकलज्जादि और मन में जो भय था, वह सर्वथा मिट जाता है –

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद भइ।
प्रकृति–पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तो भेंट नई।
जन्म–जन्म, जुग–जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।

सूरदास प्रभु कि यह महिमा, यातैं बिबस भई।

कृष्ण वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले जाते हैं, तो कृष्णा के प्रति राधा और गोपिकाओं का प्रेम विरह में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ सूरदास जी ने राधा और गोपिकाओं की दयनीय स्थिति को बहुत मार्मिक रूप से वर्णन करते है। प्रियतम कृष्ण के बिना राधा आत्मा समर्पण करने के लिए सोचकर, निराश होकर अपनी हाथ मलती है –

अब या तनहिं राखि कह कीजै।
सुनि री सखी स्याम सुन्दर बिनु, बाँटि विषम विष पीजै।
कै गिरिऐ गिरि चढ़ि सुनि सजनी, सीस संकरहि दीजै।
कै दहिऐ दारुन दावानल, जाइ जामुन धंसि लीजै।
दुसह बियोग बिरह माधौ के, को दिन ही दिन छीजै।
सूर स्याम प्रीतम बिनु राधे, सोचि सोचि कर मीजै।

कृष्ण के मधुर वचन, बांसुरी वादन से अभ्यस्त ब्रज की गोपिकाएँ बाँवरी हो जाते हैं। चातक पक्षी की भाँती कृष्ण का नाम रटने लगते हैं। गोपिकाओं के लिए रात नागिन की भाँती डसने लगी है।

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहूँ जामिनि उबति जुन्हैया, डसि उलटि ह्वै जात।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात।
सखी री चातक मोहिं जियावत।
जैसेंहि रैनि रटति हौं पिय पिय, तैसेंहि वह पुनि गावत।

उद्धव द्वारा राधा और गोपिकाओं के व्यथा सुनकर, कृष्ण उद्धव से ब्रज, राधा और गोपिकाओं को स्मरण करते हुए– 'ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहिं।' कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास ने राधा, कृष्ण और गोपियों के सरस प्रेम तथा वियोग का वर्णन किया है।

कवि रहीम कहते है कि, प्रेम में जीत और हार के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेम में ईश्वर के प्रति और प्राणी मात्र के प्रति पूर्ण समर्पण कि भावना निहित होना है। यहाँ प्रेम कि सत्ता सर्वोपरि है।

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे तो फिर न मिले, मिले तो गांठ पड़ जाय।।

प्रेम में मिलन के उपरांत उसे तोडना नहीं चाहिए। यह प्रेम का धागा यदि एक बार टूट जाता है तो पुनः जोड़ने पर गांठ पड़ जाती है। रहीम का काव्य प्रेम के गहन अनुभव को संजोए है।

सूफी–कवि जायसी कहते है कि, प्रेमावस्था बड़ी हि विचित्र अनुभूति है, इसमें प्राणी न तो जीवित रह सकता है और न मर सकता है –

पेम घाव दुःख जान न कोई। जेहि लागै जानै ते सोई।।
परा सो पेम समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसभारा।
बिरह–भोर होई भाँवरि देई। खिन जीउ हिलोरा लेई।
कठिन मरन ते पेम–बेवस्था। ना जीउ जियै, न दसवै अवस्था।।

तुलसी की आदर्श प्रेम–निरूपण तो हिन्दी–साहित्य में एक अलग ढंग का है। उसका प्रतीक चातक है जो अथाह सागर में भी प्यासा मर जाता है, किन्तु स्वाति नक्षत्र की बूंद को छोड़कर और कहीं का पानी ग्रहण नहीं करता है।

मध्यकालीन काव्य में प्रेम के स्वरुप के बारे में मात्र एक आलेख में प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। मध्यकालीन काव्य में प्रेम का समर्पण भाव को देख सकते है। अटूट प्रेम को परिभाषित किया गया है। प्रेम चाहे किसी से भी हो, परन्तु प्रेम के नाम पर खिलवाड़ नहीं होता था। प्रेम स्वार्थ साधना के लिए उपयोग नहीं किया जाता था। लौकिक प्रेम से ज्यादा अलौकिक प्रेम पर ध्यान दिया है। मोटे रूप से कहा जाये तो प्रेम का एक अनोखा भाव अभिव्यक्त किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. कबीर ग्रंथावली सटीक।
2. सूर सागर सटीक।
3. मीराबाई और उनकी पदावली।
4. रहीम के दोहे।
5. काव्य सौरभ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 84-86

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कलगी बाजरे की : प्रेम और प्रकृति का अटूट संबंध

–निरूपमा. यू

श्री शंकराचार्या संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी, एर्णाकुलम, केरल –683574

हिन्दी साहित्य में प्रेम के विविध रूपों का वर्णन बहुत पहले से ही देखा जा सकता है। समय के अनुसार प्रेम के स्वरूप तथा साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति में भी बदलाव आया है। आदिकाल में प्रेम का जो श्रृंगारिक रूप था वह भक्तिकाल में आकर भक्ति का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार बदलते परिवेशों के अनुसार प्रेम के रूप और भाव में भी बदलाव आया है। आधुनिक काल तक आते–आते हमें प्रेम के रूप में ओर भी विविधता देखने को मिलता है। जो पहले नायक–नायिका एवं ईश्वर प्रेम तक सीमित थी आज वह कई रूपों एवं भावों में साहित्य में आने लगा।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों एवं रचनाकारों ने हमेशा प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को एक सशक्त माध्यम बनाया है। क्योंकि प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है जितना सृष्टि का उद्‌भव और विकास का इतिहास है। इसलिए प्रकृति और प्रेम का संबंध हमेशा से अटूट रहा है। महादेवी वर्मा के अनुसार–"प्रकृति को संगिनी के रूप में ग्रहण करने की प्रवृति इतनी भारतीय है कि उत्कृष्ट काव्यों से लेकर लोकगीतों तक व्याप्त हो चुकी है। ऐसा कोई लोकगीत नहीं जिसमें मनुष्य अपने सुख–दुख की कथा कोयल–पपीहा, सूर्य–चन्द्र, गंगा–यमुना, आम–नीम आदि को न सुनाता हो और अपने जीवन के प्रश्न सुलझाने के लिए प्रकृति से सहायता न चाहता हो।"

यथार्थ जीवन में हम प्रकृति को उपयोगिता की दृष्टि से देखते हुए उसके आन्तरिक गुणों का मूल्यांकन करते हैं। लेकिन काव्य में प्रकृति का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है, जैसे आलम्बन, मानवीकरण, उद्धीपन, प्रतीकात्मक, उपदेशिका, रहस्यात्मकता आदि कई रूपों में। वैज्ञानिक दृष्टि से काव्यगत प्रकृति को मुख्यतः प्रस्तुत और अप्रस्तुत जैसे दो रूपों में विभक्त किया गया है। यहाँ प्रस्तुत रूपों में उसके आलम्बन, उद्धीपन और मानवीकृत रूप आते है और अप्रस्तुत रूपों में उपमान, प्रतीक और अन्योक्ति रूप भी। आधुनिक कालीन कवियों ने इस वैज्ञानिक दृष्टि को ही अपनाया है। उनमें हिन्दी के छायावादी एवं प्रयोगवादी कवियों का महत्व पूर्ण स्थान है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में छायावाद एवं प्रयोगवाद युगीन कवियों ने प्रकृति और प्रेम के यह बंधन को ओर सुदृढ बनाया। इन्होंने अपनी कविताओं में नए–नए उपमाओं एवं प्रतिकों के माध्यम से प्रेम की अद्वितीय एवं अलौकिक रूप को दिखाया है। साहित्य में प्रेम से संबंधित पुरानी बातों एवं सिद्धान्तों से ऊपर उडकर एक नए सिरे से उसे देखने का प्रयास हमेशा इन कवियों ने की। भूमण्डलीकरण और शहरीकरण के इस युग में जहाँ मनुष्य अपने में सिमट जाते है वहाँ प्यार में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। अज्ञेय जी की 'कलगी बाजरे की' एक ऐसी कविता है, जिसमें उन्होंने इस बदलते परिवेशों के अनुसार प्यार की अभिव्यक्ति के लिए नए उमपाओं को खोज ने का प्रयास किया है।

अज्ञेयजी की कविताएँ इसलिए महत्वपूर्ण है कि उन्होंने अपनी कविताओं में हमेशा प्रयोगशीलता का भाव दिखाया है। उनके वो जादूई स्पर्श है, वह इस कविता में भी देख सकते है। साहित्य में बदलते हुए जीवन संवेदनाओं के साथ भाषिक उपकरणों में भी बदलाव आना कोई नयी बात नहीं। इस तरह प्रेम के बदलते रूपों के लिए भी पुरानी भाषिक

उपकरणों को छोडकर नए–नए उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे कलगी बाजरे की तरह। कवि के अनुसार आधुनिक युग में प्यार और सौन्दर्य के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन आया है उसे व्यक्त करने के लिए नए–नए उपमानों और प्रतीकों की आवश्यकता है। हमें ऐसे प्रतीकों की आवश्यकता है जो ताज़ा या नया हो न की घिसे–पिटे हो। इसलिए कवि अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य की उपमा हरी बिजली घास या हवा में डोलती बाजरे की छरहरी कलगी से करते हैं। कवि कहते है :–

"हरी बिजली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार न्हायी कुईं
टटकी कली चम्पे की
वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।"

अब कवि अपनी प्रियतमा को कुंकंम संध्या के नभ में देखने वाली अकेली तारिका या शरतकालीन प्रभात के नीहाराद्र बिन्दु या सुगन्धमय चम्पा के कली नहीं कहती, इसका मतलब यह नहीं कि उनका हृदय उथल–पुथल के कारण शून्य हो गया है या उनका प्यार मैला हो गया है। क्योंकि जिन उपमानों का प्रयोग हमेशा से करता आया है वह मैला हो गया है। बहुत अधिक उपयोग करने पर या घिसने पर किसी भी वस्तु का मुलम्मा छूटना स्वाभाविक है। इसी तरह प्रेम और नायिका के सौन्दर्य के वर्णन से संबंधित जो उपमानों का प्रयोग आज तक हम करते आए है आज उसका चमक भी नष्ट हुआ है। देवताओं तक उसे छोड दिया है फिर हम क्यों नहीं। लेकिन कवि के मन में डर है कि क्या प्रियतमा उनके इन बातों को समझेगी! कवि अपनी प्रियतमा से पूछते है–

"मगर क्या तुम
नहीं पहचान पाओगी
तुम्हारे रूप के:
तुम हो, निकट हो, इसी जादू के–
निजी किस सहज, गहरे बोध से, किस प्यार से मैं कह रहा हूँ–
अगर मैं यह कहूँ–
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?"

यहाँ कवि अपनी प्रियतमा की सुन्दरता की जादू में डूब कर एक गहरी एवं सहज भाव बोध से, अपने प्यार से कह रहा हूँ, तुम हवा में डोलती बिछली हरी भरी घास हो कलगी छरहरी बाजरे की। और वह अपनी प्रियतमा से पूछती है कि क्या वह उनके बातों को या प्यार को नहीं पहचान पाँऊगी कि किस अर्थ में उन्होंने अपनी प्रियतमा की उपमा इन बाजरे की कलगी के साथ किया है।

इस शहरीय ज़िन्दगी में बदलते जीवन संवेदनाओं के साथ प्यार की परिभाषा भी बदलता है। इसलिए शहरी लोगों के बगीचे में पाले हुए जुही के फूल से भी सच्चा और प्यारा लगता है यह हरी घास या शरतकालीन संध्या में सूने गगन

की पीठिका पर डोलती अकेली बाजरे की कलगी। क्योंकि यह हरी भरी घास सृष्टी के विस्तार का, ऐश्वर्य संपन्नता एवं सहनशीलता का प्रतीक है। और बाजरे की कलगी जो है जुही के फूल से भी सुन्दर। जब कवि इन बाजरे की कलगी की ओर देखता हूँ तो उनको लगता है इस खुला संसार वीरान होने लगा और वह अपने में सिमट रहा है। और कवि अपने को इस संसार में अकेले महसूस करते है।

उनको लगता है कि यह शब्द वास्तव में एक जादू है, जिसके द्वारा हम अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। कवि कहते है–

"शब्द जादु हैं–
मगर क्या समर्पण कुछ नहीं है?"

आगे वह अपनी प्रेयसी से पूछते है कि–उनके समर्पण का क्या है? क्या उसका कोई मोल नहीं है? यहाँ कवि अपनी प्रेमिका और प्रकृति के प्रति जो समर्पण है उसकी ओर इशारा कर रहा है। कवि के मन में अपनी प्रेयसी के प्रति जितना प्यार है उतना ही प्रकृति के प्रति भी है। कविता में प्रकृति न केवल इनकी विषयवस्तु है अपितु वह इनकी शैली भी है। वह एक ऐसा माध्यम हैं जिसके द्वारा वे अपनी प्रेम संबंधी अनुभूतियों को व्यक्त कर सकते है। वास्तव में प्रकृति के अद्‌भुत क्रियाकलापों से ही मानव के हृदयस्थ भावनाएँ जैसे प्रेम, आश्चर्य, करुणा आदि का स्फुरण होता है। यहाँ कवि अपनी प्रियतमा की प्रतिछवि प्रकृति के सौन्दर्य में देखती है। और दोनों की सुन्दरता में वह अपने को समर्पित करते है।

आज कल लोक बिना प्रेम के भी साथ रहते हैं, क्योंकि हमारा सामाजिक बंधन ऐसा है कि लाख असमानताओं के बाद भी उस बंधन को कोई तोडना नहीं चाहता। वास्तव में प्रेम दिखावा नहीं समर्पण चाहता है। वहाँ जबरदस्ती भी नहीं बिना किसी आशा या अपेक्षा किए ये खुद ही समर्पित हो जाता है। यहाँ कवि भी प्रेम और प्रकृति के आगे अपने को समर्पित करते है।

संदर्भ :–

1. हिन्दी समय, ब्रजेंद्र त्रिपाठी।
2. अज्ञेय और उनका साहित्य, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 87-91

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वतंत्रयोत्तर भारत के कथा–साहित्य में परिवर्तित ग्रामीण जीवन–मूल्य और सामाजिक आग्रह (संदर्भ सन 1947 से 1972 तक)

–प्रीति सिंह

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, शहीद मंगल पांडे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, माधवपुरम, मेरठ

–प्रो0 अशोक त्यागी

गणेश शंकर विद्यार्थी सुभारती कॉलेज ऑफ जर्नलिज्म एंड मॉस कम्यूनिकेशन, सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

इस सत्य को स्वीकार करना होगा कि स्वतंत्रता के प्रारम्भिक पच्चीस वर्ष ग्राम विकास के लिए क्रांतिकारी तथा युगांतरकारी रहे। यह ठीक है कि ग्रामीण जीवन में महाजनों, शोषणकारी पूंजीपतियों तथा भ्रष्ट नौकरशाही का दबदबा अंग्रेजी शासन काल की भांति आंशिक रूप से बना रहा। लेकिन यह भी एक सत्य है कि महाजनी व्यवस्था तथा सामंती रौब धीरे–धीरे कम होने लगा था। ग्राम्य जीवन में एक चेतना करवट ले रही थी, शिक्षा तथा जनसम्पर्क के बढने संसाधनों के कारण ग्रामीण पहले की भांति अंजान और भोला–भाला नहीं रहा। वह अपनी अस्मिता और अधिकारों को समझने लगा। उधर व्यवस्था परिवर्तन का दौर भी आरम्भ हो गया। ये व्यवस्था ग्रामीण जीवन में समग्र विकास के लिए थी, इनका लाभ भी किसानों को हुआ। साथ ही भ्रष्टाचार के नए केंद्र भी खुल गए। पहले कर्जदाता महाजन होते थें, अब भूमि विकास बैंक की स्थापना हो चुकी थी, दुखी किसान उसको भूमि विनाश बैंक कहने लगे। ग्रामों को समूह में विभक्त कर ब्लाकों की स्थापना की गई, लक्ष्य अत्यंत पवित्र था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि, स्वास्थ्य तथा शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन आए, पर वे भी भ्रष्टाचार के केंद्र हो गए, ग्रामीणों ने ब्लाक को ब्लैक कहना आरम्भ कर दिया। कुछ नवीन पदावली भी ग्रामीणों को सुनने के लिए मिली, ग्राम सभा, जिला पंचायत, ग्राम सेवक, बीडीओ, एडीओ, लेखपाल, ग्राम सचिव, सहकारी समिति, सहकारी सचिव, चकबंदी आदि–आदि। भारी–भरकम नामों में किसानों को कुछ आशाएं पैदा हुईं। लेकिन सभी आशाओं को पूर्ण सार्थकता नहीं मिल पाई। ग्रामों में भूदान आंदोलन को भी ग्रामीणों ने देखा, साथ ही मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम से सभी ग्रामीण लाभांवित भी हुए।

इसी मध्य सेर और मन के स्थान पर नवीन तोल प्रणाली आ गई, अब मंडी में किसान का अनाज किलोग्राम तथा कुंटल के आधार पर बिकने लगा। हरित क्रांति को भी किसानों ने देखा, पहली बार उन्नत बीज शब्द ग्रामों में पहुंचा और रासायनिक खाद का प्रयोग भी होने लगा। सरकार की ओर से नलकूप भी लगाए जाने लगे। विकास के दावे बहुत थे, लेकिन भ्रष्ट तंत्र पर कोई अंकुश लगाने वाला नहीं था। विकास की योजनाओं का लाभ बड़े तथा प्रभावी किसानों को हो रहा था, स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि उच्च बीज का आया गेंहू उन लोगों को दे दिया जाता था जो किसान नहीं थे।[1] हिंदी के महाकवि तथा छायावाद के स्तम्भ निराला के ग्राम गढ़कोला के कथित विकास के विषय में दिनमान में एक आलेख प्रकाशित हुआ था जिसमें बताया गया था कि स्वतंत्रता के बाईस वर्षों के पश्चात भी उसकी स्थिति नारकीय है। वहां जाना तक अति श्रमसाध्य और दुष्कर है। विकास की एक हल्की सी किरण भी वहां नहीं पहुंची।[2] कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने परती परिकथा रचना में भारतीय ग्रामों के नव निर्माण की परिकल्पना की थी। लेकिन जब उन्होंने

दिनमान को एक साक्षात्कार दिया और आजादी के पश्चात भारतीय ग्रामों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के विषय में प्रश्न किया गया तो उन्होंने अत्यंत निराशा भाव में यह स्वीकार किया कि उनकी कल्पनाएं टूट गई हैं।[3] यही कारण है कि उनकी कथा संसार में आचंलिकता के प्रति मार्मिक संवेदनाएं हैं, कहीं न कहीं उनकी निराशा और मोहभंग होने की मानसिकता उनके सारस्वत कर्म में दिखाई देती है। वे आंचलिक कथा साहित्य के पुरोधा के रूप में सामने आए। आजादी के पश्चात ग्रामों की ओर लौटो का नारा तो अवश्य लगा। पर गांव में जाए कौन? सुविधाहीन स्थल और विवशता में जीवन जीने वालों मानवों का आवास, जिसे नगरवासी हीन समझता है और स्वयं को किसी ग्रामीण के समक्ष अति सभ्य और सुशिक्षित। यही कारण है कि ग्रामों के स्वतंत्रता के पश्चात तेजी के साथ भगदड़ मच गई थी। नई पीढ़ी ग्रामों में रहना नहीं चाहती थी, वह अपने मूल निवास से उखड़ गई। पुरानी पीढ़ी गांव के पुराने खंडहरों की भांति धूल में मिलती चली गई। नगरों में बसा युवा अपने पुरानी पीढ़ी को भूल जाना चाहता है क्योंकि वह उनके लिए अप्रांसगिक हो चुकी थी।[4] आधुनिकता और आंचलिकता का मानसिक संघर्ष व्यक्ति को नगरों में पलायन करने के लिए विवश कर रहा था। इसका मूल कारण जातिवादी आग्रह, सामंती सोच, उच्च–नीच के भाव जैसे सामाजिक पक्ष में पलायन का प्रेरकबल बनता चला गया। आचंलिक कथा ने नई कहानी का रूप ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। कथाकारों के लिए सृजना का विशाल केनवास मिल गया।

यहां यह समझना आवश्यक है कि सन् 1960 के आस–पास आधुनिकता का अर्थ नगरबोध से लगाया जाने लगा था। इससे कथा शिल्प में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। शिल्प में अंतर हो सकता है लेंकिन ग्रामों की राजनीति में भी नगरीय दोष प्रवेश कर चुके थे। यह सही है कि यौनदस्तुओं की सक्रियता किसी महानगर से लेकर साधारण से ग्राम तक रहा है। किसी जनसेविका के बारे में कामुक दृष्टि रखना, जन प्रतिनिधियां में देखे जा सकते हैं। अमरकांत के उपन्यास का पात्र जो एक ग्राम का सभापति है, वह ग्रामसेविका पर गंदी नजर रखता है। लोकतंत्र ने लोकप्रतिनिधि होने का अवसर तो प्रदान किया, लेकिन वर्षों पुरानी दूषित मानसिकता से मुक्त होने का पुरुष समाज तैयार नहीं है। सभापति ऐसी सुंदरी छोकरी ग्रामसेविका बनकर आएगी, इसकी उम्मीद नहीं थी।[5] आजादी के पश्चात बहुत बदलाव आया। जो गांव कभी किसी भी सम्पर्क से वंचित थे, वहां तक बस जाने लगी। गांव के युवा ने महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय का परिसर भी देख लिया था। विधायक तथा सांसद भी गांव से जाने लगे। पुलिस, सेना और मास्टरी के अतिरिक्त पदों पर भी गांव का युवा नौकरी करने लगा। उद्योगों का जाल नगरों में सिमटा चला गया और गांव के नीरस जीवन से ऊब अनुभव करने वाला, युवा नव रोजगार के अवसरों में आजीविका की खोज करने लगा। लेकिन केवल यही सत्य नहीं है। एक सत्य यह भी है कि परम्परागत पीढ़ी जब नगरों में जाती है तो उसको अपने खेत–खलियान याद आते हैं, नगरों की कथित निर्लज्जता उनको सहन नहीं होती। वे नगर में जाने के बाद भी कुंठा का अनुभव करते हैं और अपने गांव वापस लौटने की इच्छा रखते हैं।

हिमांशु श्रीवास्तव ने अपने उपन्यास नदी फिर बह चली में एक ऐसी ही पात्रा की भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं जिसका पति चालक है और वह नगर से वापस अपने गांव आना चाहती है। उसको लगता है कि ग्राम का परम्परागत यौन–पवित्रता–बोध कहीं न कहीं नष्ट हो रहा है। वह नगरों की पतनकारी, संस्कार–टूटन–शैली और संस्कृति में विचलन की स्थिति को अस्वीकार कर देती है और वापस गांव आ जाती है। परवतिया हिमांशु श्रीवास्तव की एक ऐसी पात्रा है जो नगर में रहने के पश्चात भी नगर की संस्कृति तथा संस्कारों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देती। उपन्यासकार कहता है कि परवतिया भारत माता की बेटी, गांव की बेटी, शहर जाकर भी शहर की नहीं हो सकी।[6] दूसरा पक्ष यह भी है कि परवतिया का गांव परम्परागत मूल्यों तथा सामाजिक संदर्भों को परिवर्तित कर रहा है। नवीन समाजिक परिवेश नवीन मूल्यों का सृजन कर रहे हैं। पुराने मूल्यों की उपादेयता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया गया है। कथाकार

उदयराज सिंह ने अपनी रचना अंधेरे के विरुद्ध में मूल्यों की त्रासदी को अति सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। सामंती व्यवस्था ने अपने अपना साइन बोर्ड बदला है, जो पहले जमींदार थे, वे नेता हो गए। नौकरशाही उनके आदेशों पर नतमस्तक होने लगी। आम ग्रामीण सामंती व्यवस्था से मुक्त नहीं हो पाया। नेतागीरी ने गांवों की समरसता को वोट बैकों में विभक्त कर दिया।[7] सच तो यह है कि ग्राम पंचायतों ने ग्रामजीवन की स्वाभाविकता को नष्ट कर दिया है। जो गांव कभी एकजुट होते थे, बिखर गए हैं। ग्राम पंचायतें गांव पर आफत बनकर आई हैं।[8] यह वह समय था जब कृषि क्रांति ने किसानों की आय में वृद्धि कर दी थी, गांव का युवा गांव से बाहर नौकरी भी करने लगा था, वह अपने पुराने मकान को नए सिरे से नगरों की तरह बनवाना चाहता था। उधर विकास खंड तथा सहकारी समितियों से उन्नत बीज तथा खाद मिलने लगी थी, साथ ही कृषि ऋण भी मिलने लगा था।

यह सही है कि गांवों में समृद्धि आई है लेकिन संस्कृति चली गई है। समृद्धि तथा संस्कृति में आए असंतुलन ने ग्राम की नेकी, सहयोगी भावना, मानवीयता तथा परहितकारी सोच को समाप्त कर दिया था। ऐसे परिवर्तित परिवेश को शिवप्रसाद सिंह अपने उपन्यास अलग–अलग वैतरणी में अति सफलता के साथ प्रकट किया है। ग्रमीणों के वैयक्तिक विघटन की छाया जब समाज के विराट स्वरूप पर पड़ती है तो समाज के सनातन मूल्य भी नष्ट होने लगते हैं। किसी भी स्थापित संस्कृति तथा प्राचीन राष्ट्र की अस्मिता पर यह गहरा प्रहार है। पर, ऐसा हो रहा है। वर्णित उपन्यास के रचनाकार यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि जब व्यक्ति के भीतर की नैतिकता नष्ट हो जाती है तो वह अपने सामूहिक चरित्र को भूल जाता है। गांव में खेत काटने, पशु चोरी आदि की घटनाएं होने लगीं पर कोई पुलिस–थाने की सोचता भी नहीं। सब जानते हैं कि कौन चोरी करता है, फिर भी जीवन सबको प्यारा है। गांव मौन रहता है।[9] इस बात से कोई असहमत नहीं हो सकता कि आजादी के पश्चात किसानी काफी सीमा तक लाभकारी होती गई है। फिर भी कोई खेती करना नहीं चाहता, इस दीन स्थिति को आलोच्य उपन्यास में इस प्रकार से प्रकट किया गया है कि अब तो किसी से खेती–बाडी पर बात करने से भी डर लगता है।[10]

स्वतंत्रता के पश्चात के 25 वर्ष हिंदी कथा साहित्य समाज के परिवर्तित स्वरूप के समानांतर आकार ग्रहण कर रहा था। सामाजिक भूमिका पर साहित्यकार क्रांतिकारी कलमकार न होकर सुधारवादी दृष्टि से यथार्थ को प्रस्तुत कर रहा था। इस युग के कथाकार के समक्ष दो चुनौतियां थीं, पहली चुनौती रचना दृष्टि की थी तो दूसरी चुनौती जीवन दृष्टि को यथार्थ में आकार देने की है। यह सत्य है कि सन 1947 से 1972 तक का कालखंड सामाजिक दृष्टि से संक्रमण का कालखंड है। इस कालखंड ने भावी सामाजिक जीवन कैसा होगा? इसकी आधारशिला का निर्माण किया। ग्रामीण जीवन बदल रहा था, कृषि के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित हो चुका था। शिक्षा का प्रसार होने लगा था। सन 1971 में देश की जनसंख्या 54 करोड़ 70 लाख थी, केवल 10 करोड़ 90 लाख लोग ही नगरों में रहते थे। शेष 42–87 प्रतिशत भूमिधर कृषक तथा 25.76 प्रतिशत भूमिहीन खेती श्रमिक थे। भूमिहीन खेती श्रमिकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही थी। सन 1961 में केवल 16.7 प्रतिशत ग्रामीण ही भूमिहीन खेती श्रमिक थे। जोत का निरंतर कम होते जाने ने भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा को विकल्प के रूप में स्थापित किया। सन् 1951 में ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता केवल 02 प्रतिशत थी जो वर्ष 1971 के आते–आते 23.06 प्रतिशत हो गई थी। समय बदल रहा था तो गांव की चुनौतियां तथा समस्याओं का रूप भी बदल रहा था।

अब गांव आजादी के तत्काल बाद के गांव नहीं रह गए थे, वे भविष्य की रूपरेखा लिखने को तैयार थे। यह प्रश्न पृथक है कि रूपरेखा का स्वरूप नकारात्मकता से अधिक भरा हुआ था और लोगों को शंकित भी कर रहा था। परिवर्तित समय के साथ जीवन शैली बदल गई। धोती–कुर्त्ता पहनने वाले कम होते चले गए। वंचित समाज के युवा भी शिक्षित होने लगे, वे नगर में अच्छी नौकरी पर चले गए। लेकिन जातीय आग्रह का जाल पहले की ही तरह सामाजिक

व्यवहार को संचालित करता रहा। वह सामाजिक आधार पर कमजोर हो भी रहा था, लेकिन ग्राम पंचायतों के चुनावों ने जातिवाद को प्राणवायु प्रदान कर दी। जातिवाद को देखकर कथाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से यह प्रश्न भी करने लगा कि क्या फर्क पड़ा स्वराज से? चमारों की पिटाई पहले भी होती थी, वैसे अब भी होती है।[11] जैसा कि पहले कहा गया है कि जोत कम होने से भूमिहीन किसानों की संख्या बढ़ती चली गई, कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने किसी महाजन या शासकीय अभिकरण से कर्ज ले लिया था, यह कर्ज उनकी भूमि को भी खा गया। किसी किसान के लिए भूमिहीनता की पीड़ा क्या होती है? इस पीड़ा को अनेक कथाकार में उभारने का प्रयास किया है। डा. लक्ष्मी नारायण लाल की एक कहानी शीर्षक में एक किसान के पास खेती के सब संसाधन हैं, पर भूमि नहीं है।[12] उसकी पीड़ा को वे देश के लाखों ऐसे किसानों की वेदना में साझा करते हैं।

बदलते जमाने के साथ लोगों का रहन सहन भी बदलता जा रहा है। मजे की बात तो यह है कि यह बदलाव सिर्फ शहरों तक ही सीमित नहीं है बल्कि आधुनिक युग में ग्रामीण अंचलों की संस्कृति व वेशभूषा भी बदल गई है। कथाकार भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास धरती भूमिहीन होते किसानों की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करते हैं। उनका पात्र भूमिहीन होने पर अपनी पत्नी को धैर्य रखने की सलाह देता है, लेकिन यह सलाह संवेदनाओं तथा पीड़ा से भरी हुई है।[13] भूमि का केवल आर्थिक पक्ष ही नहीं होता, यह भावनात्मक पक्ष भी होता है। धरती उपन्यास का मुख्य पात्र स्वयं की विवशताओं से साक्षात्कार करते हुए कहता है कि मैं एक बात बार–बार सोचता हूँ कि धरती से बिछुड़कर यह एक बूढ़ा मुसाफिर खाने में बैठा रहा था, धरती से बिछुड़कर मंगल इस सड़क पर रो रहा था, धरती से बिछुड़कर मैं किस मुसाफिर खाने में रोऊँगा?[14] स्वतंत्रता के पश्चात ग्रामीण सामाजिक संरचना के तेजी के साथ बदलाव आया, जिसमें आरम्भ के 25 वर्ष अति महत्वपूर्ण है। कथाकारों ने अपनी साहित्यिक विधा से ग्रामों को मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया और वहां स्थापित तथा नवसृजित समस्याओं को भी कुशलता के साथ उकेरने का प्रयास किया। राही मासूम रजा ने ऑधा गांव (1966) में जनपद गाजीपुर के अपने ही गांव गंगोली की टूटन और त्रासदी को प्रकट किया है। इसी प्रकार काशीनाथ सिंह की रचना जो सन् 1968 में प्रकाशित हुई लोग बिस्तरों पर, में वे नगरीय परिवेश का वर्णन करते हैं, लेकिन यह सत्य ग्राम का भी हो सकता है।

कथाकार बलवंत सिंह ने सन् 1969 में दो अकालगढ़ उपन्यास लिखा, जो ग्रामीण जीवन को सजीव अभिव्यक्ति प्रदान करता है। राजेंद्र अवस्था का उपन्यास जाने कितनी आंखें सन् 1969 में प्रकाशित हुआ, यह बुंदेलखंड के जनजीवन को अंकित करता है। शैलैश मटियानी के कथा साहित्य में आचंलिकता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सन् 1961 में प्रकाशित चिट्ठी रसैन पनार नदी के तट पर बसे एक ग्राम की कहानी है। इसी प्रकार उनकी अन्य रचनाएं भी ग्रामीण समस्याओं को प्रकट करती है और वहां के सामाजिक स्वरूप में आई कुंठा तथा विघटन को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। रेणु को तो यह क्षेय जाता है कि उन्होंने आचंलिक धरातल को बहुत सघनता के साथ स्पर्श किया है।

स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी कथाकारों ने ग्रामीण जीवन तथा समस्याओं पर तथ्यात्मक चित्रण किया है। उसकी साहित्यिक दृष्टि समाजशास्त्रीय भूमिका पर सक्रिय दिखाई देती है। वर्तमान युग में भी सन् 1947 से 1972 तक का कथालेखन मार्गदर्शक की भूमिका अदा कर सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. धर्मयुग के अंक 25 जनवरी, 1870 में प्रकाशित डॉ. हरदयाल का आलेख गांवों की बदलती तस्वीर।
2. दिनमान के अंक 01 फरवरी, 1970 में प्रकाशित एक सर्वेक्षण के आधार पर।
3. दिनमान के अंक 03 मई, 1971 को प्रकाशित रेणु के साक्षात्कार के आधार पर।

4. धर्मयुग के अंक 17 अगस्त, 1969 को पृ. 38 पर प्रकाशित डॉ. धर्मवीर भारती का लेख।
5. ग्रामसेविका उपन्यास– लेखक अमरकांत, पृ 86–87 देखें
6. नदी फिर बह चली– लेखक हिमांशु श्रीवास्तव, पृ. 273
7. अंधेरे के विरुद्ध– लेखक उदयराज सिंह, पृ. 10
8. अंधेरे के विरुद्ध– लेखक उदयराज सिंह, पृ. 190
9. अलग–अलग वैतरणी, लेखक शिव प्रसाद सिंह, पृ 348
10. अलग–अलग वैतरणी, लेखक शिव प्रसाद सिंह, पृ 357
11. दिशाओं का परिवेश–सम्पादक ललित शुक्ल में प्रकाशित अलग–अलग वैतरणी की समीक्षा, पृ. 33–34
12. शीर्षक कथा– डा. लक्ष्मी नारायण लाल, संग्रहित कहानी सूने आंगन रस बरसै, पृ. 19
13. धरती उपन्यास, लेखक भैरव प्रसाद गुप्त, पृ. 79
14. धरती उपन्यास, लेखक भैरव प्रसाद गुप्त पृ. 181

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 92-95

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लोक चेतना का स्वरूप एवं अवधारणा

–राजेश सिंह

शोधार्थी (पीएच.डी.), हिंदी विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम।

लोक चेतना का स्वरूप एवं अवधारणा पर अवलोकन करने से पूर्व हमें लोक तथा चेतना के अर्थ को समझना आवश्यक होगा। लोक अति प्राचीन शब्द है, जिसको अंग्रेजी में 'फोक' (विसा) नाम से जाना जाता है। हमारे देश में लोक शब्द का सर्वप्रथम बीज रूप ऋग्वेद में परिलक्षित होता है, जिसे 'जन' शब्द के नाम से जाना जाता है। लोक शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में हिन्दी के प्रमुख विद्वान विद्यानिवास मिश्र का मानना है कि लोक शब्द 'लुच' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ है प्रकाशित होना तथा प्रकाशित करना। लोक शब्द की परिधि बड़ी ही व्यापक और विस्तृत है। अतः पृथ्वी पर जो भी वस्तु दृष्टिगत या इन्द्रिय गोचर है, वही लोक है।

लोक शब्द की व्यापकता एवं प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए कई सारे विद्वानों ने अपना विचार प्रकट किया हैं। उन विद्वानों में डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा का नाम उल्लेखनीय है, उनका कहना है कि– "'लोक' शब्द का लम्बा इतिहास है। पर हमें इस जंगल में जाना अनिवार्य नहीं। यह वेदों से चलकर आया है। कहीं इसका अर्थ 'स्थान' है, जैसे स्वर्ग–लोक तो कहीं स्थानिय लोग, जैसे 'सुनि अपजस देहहिं मोहिं लोगू'। यही सम्राट अशोक द्वारा उत्तिर्ण शिला–लेखों में 'सब्बों लोकों है।"[1]

लोक शब्द को अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है, जिनमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परिभाषा महत्वपूर्ण साबित होती है – "लोक शब्द का अर्थ 'जन–पद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोक नगर में परिष्कृत, रूचि–संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिस्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।"[2] अतः द्विवेदी जी की परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने लोक को पारंपरिक परंपरा से मुक्त कर उसे मानव जीवन से संबंध स्थापित किया है। हिन्दी के प्रवुद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने भी लोक शब्द की परिभाषा दी है, जो सार्थक प्रतीत होती है –"लोक धर्म, साधारण जनों के विद्रोह की विचार धारा है। इसे 'लोक धर्म' कहने का एक कारण तो यह है कि यह उच्चवर्गों के 'शास्त्र' के सामान सूक्ष्मातिसूक्ष्म तर्क पद्धति से सम्पन्न तथा व्यापक विश्वदृष्टि के रूप में विकसित कोई सुसंगत और सुव्यवस्थित विचार प्रणाली नहीं है। दूसरा कारण यह है कि यह पूँजीवादी समाज के बीच निर्मित किसी एक सुनिश्चित वर्ग चेतना की विचार प्रणाली नहीं; वल्कि सामंती युग के असंगठित किसानों और दस्तकारों के विविध वर्गों, उपवर्गों की मिली जुली भावनाओं का पुंज है।"[3] अतः नामवर सिंह की परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि लोक शब्द का वास्तविक संबंध उच्चवर्ग तथा पूँजीवादी विचारधारा से न होकर सामान्य वर्ग की विचार धारा से है।

चेतना अंग्रेजी के 'Consciousness' शब्द का ही हिन्दी समानार्थी है। इस शब्द का प्रादुर्भाव 'चित्' धातु से हुई

है। चेतना का सीधा संबंध मानव जीवन की जागृत अवस्था से होता है। जगत में जब हम किसी भी वस्तु को देखने के उपरांत जो महसूस तथा अनुभव करते हैं, वहीं चेतना है। चेतना शब्द के अर्थ के संदर्भ में रामचन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी मानक शब्द कोश' में कहा है– "मन की वह वृति या शक्ति जिसमें जीव व प्राणी को आंतरिक और बाह्य तत्वों या बातों का अनुभव या भान होता है, होश–हवाश! बुद्धि, समझ, मनोवृति, विशेषतः ज्ञानमूलक मनोवृत्तिय" इसी शब्द कोश में आगे वे चेतना के अर्थ का और भी खुलासा करते हुए कहते हैं– "संज्ञा से उक्त होना, होश में आना ऐसी स्थिति में होना कि बुरे परिणामों या बातों से बचकर अच्छी बातों की ओर प्रवृत हो सके, सावधान या होशियार होना, सोच समझकर किसी बात की ओर ध्यान देना।"[4] रामचन्द्र वर्मा ने चेतना का सीधा संबंध मानव मन की वृति से माना है। उन्होंने चेतना की भूमिका स्थापित करते हुए कहा हैं कि चेतना के कारण ही लोग किसी भी बुरे वक्त में सतर्क हो जाते है तथा वे लोग जीवन में कोई भी कार्य करने से पूर्व अपना ध्यान परिणाम की ओर ले जाते है।

चेतना शब्द के अर्थ के बारे में विश्वनाथ प्रसाद वर्मा का कहना है कि– "चेतना वस्तुतः विविध इन्द्रियों को प्रभावित करके एक निश्चित प्रकार की चित्रवृति उत्पन्न करती है।"[5] यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि चेतना का संबंध मानवीय इन्द्रियों से है और वह मानव हृदय को प्रेणित करता है।

चेतना और आत्मा के बीच अटूट संबंध होता है। आत्मा को चेतना का स्रोत भी माना जा सकता है। इस संसार में जो भी वस्तुएँ सजीव है, उन सभी में गुण दिखलाई देते है और यह आत्मा के कारण ही सम्भव होता है। चेतना मन का एक गुण होता है जो आत्मा को बल देता है। अतः जिस प्रकार सूर्य से किरणें निकलती है और वे पूरे जगत को प्रकाशित करती है, ठीक वैसे ही हमारी आत्मा से चेतना बाहर आती है और वह विचार करती है एवं मानव जगत के सभी अंधकारमय कार्यो को प्रकाशमय बनाती है।

हिन्दी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा का विचार है –"मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्माण नहीं करती, इसके विपरीत उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निश्चित करता है।"[6] रामविलास शर्मा की परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण उसकी चेतना नहीं करती बल्कि सामाजिक अस्तित्व ही मनुष्य की चेतना का निर्माण करता है।

अतः उक्त विचारकों ने चेतना के आंतरिक गुणों को बताते हुए इसकी तुलना दर्पण से की है अर्थात जिस प्रकार दर्पण सभी चीजों को प्रतिबिंबित करने का कार्य करता है, ठीक उसी प्रकार चेतना भी मानव के आंतरिक कार्यो को प्रतिबिंबित करती है।

लोक चेतना का स्वरूप एवं अवधारणा :-

लोक चेतना का स्वरूप विस्तृत एवं व्यापक है। लोक चेतना का सीधा संबंध मानव चेतना से माना जाता है। मानव चेतना को हम दो रूपों में विभक्त कर देख सकते हैं– पहली आंतरिक चेतना एवं दूसरी वाह्य चेतना। इन दोनों चेतनाओं का संबंध अलग–अलग क्षेत्र में दृष्टव्य होता है। आंतरिक चेतना जहाँ मानव के निजी जीवन से संबंध स्थापित करती है, तो ठीक वहीं दूसरी ओर वाह्य चेतना मानव जीवन के साथ–साथ सामाजिक परिवेश तथा लोक चेतना से तालूक रखती है। लोक चेतना का बोध विशाल एवं विस्तृत है, इसमें बड़े पैमाने पर परम जीवन के विरोध तथा कार्यसिद्ध पर मूल रूप से दृष्टि जाता है। व्यक्ति चेतना समुह या समाज से दूरी बनाकर अव्यापकता पूर्वक निजी लाभ को स्थापित करता है लेकिन लोक चेतना में ठीक इसके विपरीत रूप देखा जाता है। ये सामूहिकता एवं सम्पूर्णता के साथ इसके अनुकूल हमेशा तत्पर रहती है।

इसके साथ ही साथ व्यष्टि चेतना और लोक चेतना का भी उल्लेख किया गया है। एक ओर जहाँ व्यष्टि चेतना को ज्ञानात्मक बताया गया है, तो ठीक वहीं दूसरी तरफ लोक चेतना को भावात्मक माना गया है। मनुष्य सामाजिक प्राणी

होने के साथ–साथ एक संवेदनशील प्राणी भी होता है। मनुष्य के अंदर संवेदनशील की भावना कूट–कूट कर भरी होती है और इसलिए उसके अंदर प्रेम, मोह, क्षमा, दया आदि का गुण भी होना स्वभाविक है। ये सभी गुण संवेदनशील भावना की ही उपज माने जाते है। इन्हीं सब भावानात्मक गुणो की वजह से ही हम एक दूसरे के साथ प्रेममयी लगाव स्थापित करते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन के संकुचित दायरे से ऊपर उठकर समस्त मानव जगत की स्थिति को विषय बनाकर उसकी भावनाओं को आत्मीयतापूर्ण तरीक से चित्रित करता है, तब लोक चेतना के वास्तविक रूप में और भी ज्यादा निखार आ जाता है।

लोक चेतना के विस्तृत स्वरूपों पर चिंतन एवं मंथन करने के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में लोक चेतना का स्वरूप बड़े पैमाने पर मानव चेतना का पर्याय बन गया है। विचारकों का मानना है कि आज लोक चेतना और जन चेतना का अर्थ एक ही जैसा प्रकट होता है। अतः इसी कारण उक्त दोनों में फर्क करना अनुचित सा लगता है। इन दोनों के अर्थ एक जैसे होते हुए भी जनमानस और लोकमानस में विषमता है। जनमानस और लोकमानस के बीच विषमता को स्पष्ट करते हुए डॉ. सत्येन्द्र कहते हैं– "इस दृष्टि से समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागों में बॉट सकते हैं। प्रथम लोक मानस, द्वितीय जन मानस, तृतीय मुनि मानस। लोक–मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानस की परंपरा में है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। जन–मानस साधारण व्यवसायात्मक बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। यह केवल व्यवहार में ही परिणति पाता है, और व्यवहार में ही विलीन हो जाता है, कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति इसमें नहीं होती।''[7] सच पूछा जाय तो लोक के परिवर्तित विशाल स्वरूपों के अन्दर आज यह लोक शब्द आम जन जीवन का समानार्थक हो गया है। इसी कारण आज लोक चेतना और जन चेतना के अर्थ में भेद करना सार्थक प्रतीत नहीं होता। अतः लोक चेतना से संबंधित रचनाओं में मानव जीवन के खट्टे–मिठ्ठे अनुभवों को भी उजागर करने के साथ–साथ प्राकृतिक वातावरण का चित्रण करने में भी पीछे नहीं हटता है।

वर्तमान में देखा जाये तो लोक चेतना से संबंधित रचनाओं का उद्देश्य आम जनता की तमाम समस्याओं को उजागर कर सामंतवादी, पूँजीवादी आदि की सोच–विचार से रू–ब–रू कराना एवं इसके साथ ही साथ मानव विकसित, जनवादी, लोकवादी ताकतों की जानकारी कराते हुए उन्हें उत्साहित कराना ही है। लोक चेतना की अवधारणाओं और विशेषताओं पर चर्चा करने के उपरांत इनमें पायी जाने वाली निरंतरशील एवं संघर्षशील जैसे गूणों का भी विवेचन करना आवश्यक जान पड़ता है। निरंतरशील एवं संघर्षशील ये दोनों गुण लोक चेतना का बाह्य हिस्सा बन गये है। जैसाकि पहले हमने पढ़ा है कि लोक शब्द का स्वरूप स्थिर न होकर इनमें समयानुसार उत्थान और परिर्वतन होते चला आया है, ठीक वैसे ही लोक चेतना के स्वरूप में समयानुसार बदलाव होता चला आया है। आदिकाल में लोक चेतना का जो स्वरूप हमें परिलक्षित होता था, वो स्वरूप हमें भक्तिकाल में परिलक्षित नहीं होता है। हिन्दी साहित्य जगत के प्रसिद्ध कवि कबीर और तुलसी थे। इन दोनों कविओं ने लोक चेतना को चित्रित करने में सफलता हासिल की थी लेकिन इन दोनों महान कवियों के रचनाओं में लोक चेतना से संबंधित अवधारणा में विविधता पाई जाती है। कबीरदास के रचनाओं में लोक चेतना क्रांतिकारी भाव के रूप में उजागर होती है, तो वहीं दुसरी ओर तुलसीदास के रचनाओं में समंवय का भाव दिखाई देता हैं। अर्थात इन दोनों कवियों ने लोक चेतना को चित्रित तो किया है, पर इन दोनों का आयाम अलग–अलग है।

लोक चेतना समय के यर्थाथ के साथ–साथ पूरे मानवीय जीवन के यर्थाथ को भी अपनाती है। इसका असत्य से दूर–दूर तक रिश्ता–नाता नहीं रहता है। लोक चेतना वर्तमान के साथ–साथ भविष्य को भी अपनाती है। ये अतीत और विज्ञान में ही लीन नहीं रहता बल्कि इसके साथ–साथ आगे की ओर बढ़ती भी है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ अतित के प्रभाव के कारण लोक चेतना 'सनातन' से जुड़ी रहती है, तो ठीक वहीं वह विज्ञान के प्रकोप से

गतिशील भी रहती है।

कुछ विद्वानों ने चिंता जाहिर की है कि लोक चेतना में समाज की स्थिति कैसी होती है? विद्वानों के मतानुसार लोक चेतना में देश की अवधारणा स्थिर न होकर गतिशील होती है। प्रारंभिक दौर में देखा जाये तो लोक चेतना की अपनी प्रकृति गाँव में बने हुए चबुतरे से थी और इसके अलावा सभी कुछ अप्रकृति सा दिखाई देता था परन्तु इन दोनों के बीच भी अंतर नहीं के बराबर था।

अतः लोक चेतना का जीवन मूल्य और चाहत का भाव व्यष्टि तो है लेकिन साथ ही साथ इसमें समष्टि का भाव भी परिलक्षित होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक चेतना अपनी निजता (स्थानीयता) में भी सार्वभौमिक है। लोक चेतना में प्राचीन के प्रति लगाव तो पाया जाता है लेकिन वह नवीनता का विरोध भी नहीं कर पाता है। वह नवीनता को क्रिया प्रतिक्रिया मूल्याकंन करता है, तत्पश्चात उसे अपनाता है। अतः लोक चेतना किसी भी नये चीज को आसानी पूर्वक नहीं अपनाती है। नये के प्रति लोक चेतना की प्रतिक्रिया सर्जक और अस्थिर होती है और यही कारण है कि लोक शुरू से ही नवीन की ओर ज्यादा महत्ता स्थापित करता है।

संदर्भ सूची :-

1. लोक– वार्ता विज्ञान – डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान लखनऊ, खंड–एक, प्रथम संस्करण– 1990, पृ.– 02
2. लोक साहित्य की भूमिका – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड जीरो रोड इलाहाबाद, संस्करण– 2000, पृ.– 11
3. दूसरी परंपरा की खोज– डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण– 2017, पृ.– 97
4. हिन्दी मानक कोश– सम्पादक पं. रामचन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण, द्वितीय खंड, पृ.– 74
5. राजनीति और दर्शन – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, पृ.– 358
6. प्रगति और परंपरा – डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.– 46
7. लोक साहित्य विज्ञान – डॉ. सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रकाशन, आगरा, संस्करण– 1971, पृ.– 31

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 96-100

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भोजपुरी लोकगीतों में प्रेम–तत्व

–डॉ. राम पाण्डेय

विभागाध्यक्ष हिन्दी, लालबहादुर शास्त्री स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आनन्दनगर, जनपद–महराजगंज, उत्तर प्रदेश

काव्यशास्त्र में जिसे श्रृंगार रस कहा जाता है वह माधुर्य भाव दाम्पत्य रति या प्रीति या प्रेम का ही दूसरा रूप है। मानव जीवन का रति–भाव ही अपने विशिष्ट रूप में माधुर्य भाव बन जाता है। युग–युगान्तर से रति काव्य–सृजन का केन्द्रीय विषय रहा है। लोक में जो कुछ उज्जवल और उदात्त है, सब रति का विषय है। निश्चय ही लोक जीवन की उदात्तता रति के सुसंस्कृत स्वरूप पर निर्भर है। रति सभी मानवीय संबंधों का आधार है और इसकी गति लोक जीवन से लेकर दिव्य साधना तक है। पुरूष और प्रकृति, नर और नारी के पूर्ण एकात्म, रागात्मक संयोग की अभिव्यक्ति रति में होती है। नर–नारी का मनोदैहिक प्रेमयोग मानव समाज का अति प्राचीन, किन्तु नित्य नवीन सत्य है। वह प्रेमयोग मानव–मन की सौन्दर्य–भावना, अनुभूति एवं बोध का केन्द्रबिन्दु रहा है। इस प्रेम–योग में नर–नारी के मानस की निर्वैयक्तिक एवं हृदय की गहन भावनात्मकता के संयोग से अर्धनारीश्वर रूप विकसित होता है। नारी के आत्मसमर्पण तथा पुरूष में आत्मप्रसार से रति की चरम अवस्था सिद्ध होती है।[1] भोजपुरी लोकगीतों में दाम्पत्य प्रेम का चरम विकास हुआ है। इस प्रेम में मिलन की उत्सुकता और आतुरता दोनों है। इसी बात को महाकवि कालिदास ने कहा है कि–

अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्धयता सभाग में नामि रतिर्न मां प्रति।
परस्परप्राप्ति निराशयोर्बरं शरीरना शोयपि समानुरागयोंः।।[2]

अर्थात् जहां एक मिलन के लिए व्याकुल हो और दूसरा मिलना ही न चाहता हो, वहां उसका मिलना न मिलना बराबर है, पर जहां दोनों मिलने के लिए अधीर हों और दोनों एक दूसरे के मिलने से हाथ धो बैठे हों, वहां प्राण भी देना पड़े तो बुरा नही है।

साहित्य का प्रेम पूर्वानुराग से आरम्भ होकर विवाह या वियोग पर समाप्त हो जाता है। विवाह के बाद प्रेम की धार सूख जाती है। लोकगीतों का अधिकांश प्रणय प्रेम स्वकीया है। विवाह से पहले पति को अपनी पत्नी को छूने का का भी अधिकार नहीं है। पाणिग्रहण के बाद ही उसे अपना सकता है–

जनि छुओ ए दुल्हा जनि छुओ अबहीं कुँवारि।
काल्हि मोर बाबा संकलपिहइँ त होबों तोहारि।।

दोनों एक दूसरे का साथ जीवन भर निबाहना चाहते हैं। यही उनकी कामना होती है। विशेषकर पत्नी भी चाहती है कि चाहे जो कुछ हो जाये, लेकिन उम्र भर मेरा साथ मत छोड़िएगा–

चाहे कछू होइ जाइ।
उमरि भरि मोरी निवाहि दिहो बलमा।

और पति उसे आश्वस्त करता है–

भूख मा भोजन देइहों, पियास में पानी देइहों हो

धनिया रखबों मैं हिरदइयां लगाय बबइया बिसरि जाबू हो।

लोकगीतों का प्रणय प्रेम किसी एकान्त करोल–कुंज अथवा नदी नाले के कछार में उपजा–सुगंधित यज्ञ धूम से आच्छादित वातावरण में अश्विन परिगन नैहर–सासुर के लोगों के बीच नीचे वर की हथेली, उस हथेली पर वधू की हथेली और दोनों हथेलियों पर भाई द्वारा गिरायी जाती पानी की धार वधू के पीछे खड़ा उसका सर्वांग आलिंगन किए वर, एक ही डलिया को दोनों पकड़े हुए, डलिया में भाई द्वारा गिराया जाता धान का लावा और लावा के साथ सौ–सौ बिम्बों में पति के चरणों में बिखरता वधू का मन लोक जीवन का भोग साधन है, काम धर्म है, मोह कर्तव्य है।[3]

लोकगीतों की नायिका 'काम बचन मन पति पद प्रेमा' की प्रतिकृति है। उसकी इतनी सी कामना है–

जइसे दूध में पानी मिलतु है,
ओइसे मिले तोरे साथ।

इसका अर्थ यह नहीं कि भोजपुरी लोकगीतों में मिलन की उत्कंठा, मिलन का सुख, मिलन की तड़पन नहीं है। इन दाम्पत्य संबंधों में दोनों एक दूसरे का साथ चाहते हैं। दोनों को एक दूसरे की अतिशय आवश्यकता है। पत्नी जहाँ सब कुछ बर्दाश्त कर, गरीबी झेलकर भी चाहती है कि उसका पति उसके साथ ही रहे। स्त्री अपने पति का अपने सेज पर इंतजार कर रही है। पत्नियों के इस इंतजार के हजारों गीत भोजपुरी लोकगीतों में मौजूद हैं–

सोने की थारी में जेवना परोसलों।
जेवना के लेके महुइया तर खड़ी, ए इमिलिया तर।
आरे ननदी के भइया तोर नचनिया, मोर नजरिया में गड़ी।।
पाँच–पाँच पनवा के बिरवा लगवली।
बिरवा के लेके महुइया तर खड़ी, ए इमिलिया तर खड़ी।
आरे ननदी के भइया तोर नचरिया, मोर नजरिया में गड़ी।।[4]

केवल पत्नी ही पति से विलग होने को नहीं सोच पाती, पति भी पत्नी से विलग नही होना चाहता है। इस भाव को व्यक्त करने वाले अनेक गीत भोजपुरी में हैं–

जाहि दिन सइयाँ मोर, छुअले लिलरवा।
से ताहि रे दिनवा ना, नइहर भइले सपनवा।
गोड़ तोरा लागीला सइयाँ गोसइयाँ, से दिनवा चारि ना।
हम जाइब नइहरवा, से दिनवा चारि ना।
तुहै त जइबू धनि अपना नइहरवा, से केकरे सँगवा ना।
हम खेलब चउरसिया, से केकरे सँगवा ना।।[5]

जिस सामाजिक–पारिवारिक परिवेश में भोजपुरी गीत लिखे गए हैं, वहाँ पति–पत्नी के सहज मिलन की परिस्थितियाँ बहुत कम होती थीं, विशेष कर नवोढा के लिए। दोनों मे मिलन की आतुरता है, उत्कण्ठा है, मिलन की प्रतीक्षा है–

कि वाह रे सइयाँ, जेवना बहाने घर अइह।
कइसे में आई धनिया, जेवना बहनवे रे।
कि बाह रे धनिया, अम्मा खड़ा बाड़ी दरबजवे।
जाहु तोहरा ए सइयाँ अतना सरेमया रे।
कि बाह रे सइयाँ, काहे के कइल मोर गवनवा कि बाह रे।

नइहर में रहतीं सखिन संगसंग खेलितीं रे।
कि बाह रे सइयाँ सोइती मइया जी के गोदिये।
कि बाह रे सइयाँ।।[6]

इस भोजपुरी लोकगीत में कोई नयी नवेली स्त्री अपने लजीले पति से कहती है कि ऐ सैयाँ ! भोजन के बहाने सुरत–सम्भोग के लिए तुम मेरे घर में अवश्य आना। पति कहता है कि माता दरवाजे पर खड़ी है। पत्नी उलाहना देती है कि यदि इतनी शर्म थी, तो गवना क्यों कराये, मुझे मैके में क्यों नहीं रहने दिया।

स्त्रियों को मायका अत्यंत प्रिय होता है, लेकिन भोजपुरी लोकगीतों में ऐसे भी लोकगीत हैं जिसमें पत्नी अपने पति के साथ मिलने वाले दाम्पत्य प्रेम सुखों को छोड़कर नहीं जाना चाहती है–

अब ना जाइबि नइहरवा जान।
हथवा बन्हवलो, मंगिया टिकवलों, चढ़ि
गइले राजा अटरिया जान।
आ गइल डोली, आ गइल कँहरवा, आ गइलें
भइया हजरिया जान।
अब ना जाइबि
दिनवा में मोर पिया, पिया चीनिया गलावे, रतिया
बनावे लड़इया जान।
खूब मजा देले अटारिया जान, अब ना जाइब
नइहरवा जान।
दिनवा में मोर पिया रूइया धुनावे, रतिया भरावे
रजइवा जान।
अब न जाइबि नइहरवा जान।।[7]

दाम्पत्य प्रेम के संयोग वर्णन के साथ, दाम्पत्य प्रेम के वियोग को स्वर देने वाले अनेकों गीत भोजपुरी लोकगीतों में हैं। प्रेम की वह सात्विक अवस्था है जहाँ प्रेम की गति स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है, प्रेम शरीर से मन, मन चित्त से चेतना और चेतना से आत्मा की ओर गतिशील होता है। वियोग प्रेम का साधना काल है।[8] भोजपुरी समाज में पति जीविकोपार्जन के लिए परदेश जाता है। पत्नी उसके विरह में व्याकुल है। इस मनोभाव के गीतों की संख्या बहुत अधिक है। पति के परदेश जाने की आशंका से पत्नी विरह में व्याकुल हो जाती है और गा उठती है–

गहरी नदिया अगम बहे राम पनिया।
पिया चलेले मोरंग देसवा, बिहरे ला छतिया।
जो हम जनिति ऐ लोभिया, जइब रे विदेसवा।
पिया के पयतवां ए लोभिया, छिपइती रे अँचरवा।।
इ रोवे चकवा चकइवा, बिछोहवा कइले रे लोभिया।
मुँह तोरे हवे लोभिया, सुरूज के जोतिया।
आँखि तोरे हवे ए लोभिया, अमवा के करिम।
नाक तोर हवे ए लोभिया सुगवा के ठोरवा।
भहुँ तोर हवे ए लोभिया चढले कमनिया।

ओठ तोर हवे ए लोभिया कतरल पनवा।।[9]

पत्नी पति के भावी वियोग की आशंका में कहती है कि मेरी छाती फट रही है। यदि मैं जानती कि मेरी पति सचमुच परदेश चला जायेगा, तो मैं उसके 'पाँयत' प्रस्थान की वस्तु को अपने आँचल में छिपा लेती। जिससे न पाँयत मिलता और न मेरा प्रियतम परदेश जाता। वह आगे कहती है कि ऐ मेरे प्रेम के लोभी तुम्हारे वियोग में मैं ही नहीं बल्कि तालाब के किनारे रहने वाले चकवा, चकवी भी रो रहे हैं। वह अपने पति की सुन्दरता का भी वर्णन करती है।

वियोगी स्त्री परदेश गये पति को पत्र लिखवाती है। वह स्वयं तो लिखना जानती नहीं, वह अपनी पीड़ा, व्यथा का बयान लिखने के लिए कहती है–

गवना कराई प्रभु जी घर बैइठवले,
अपने चलते प्रभु जी देसवा–विदेसवा हो अपने चले ना।
मोरा पिछुवरवा कायथवा भइया, छितवा हो कि
लिखी रे देहूँ ना।
भइया हरी जागे चिढिया हो कि लिखी रे
देहूँ ना।[10]

न केवल पत्नी पति के वियोग की आशंका में दुखी होती है, कलपती है, भोजपुरी लाकगीतों में पति भी वियोग की आशंका में लोक–लाज त्याग कर रोने लगता है। वह उसका अँचरा पकड़कर उसे रोकता है, रोता है, उसके विरह में बाग–बगीचे में रोता है। घर–बाहर रोता है। पत्नी के साथ जिस सेज पर सोता है वहाँ रोता है, खटिया की पाटी पकड़कर रोता है–

गोरिया चलेले नइहरवा, बलमु अँचरा
धई के रोये।
बाग में रोये बगइचा में रोये, गुलरी के पेड़ तर रोये।
बलमु सुसुकी धइके रोये।
दुअरा पर रोये दलनिया पर रोये, चउकी पर
मूड़ी धइके रोये।
सेज पर रोये पलँगिया पर रोये, खटिया
पर पाटी धइके रोये।
बलमु सुसुकी धइके रोये।।[11]

भोजपुरी लोकगीतों में विरहिणी के प्रेम को बारहमासे के माध्यम से जीवन्त बना दिया गया है। विरहिणी को सावन का महीना सुहावना लगता है। भादों मास में सेज सताती है, पपीहा बोलता है, पति के बिन सेज देख हृदय में पीड़ा होती है। क्वार का महीना आ गया, लेकिन प्रियतम अभी तक नहीं आया, प्रिया (पत्नी) मरना चाहती है। कार्तिक महीने में खून के आंसुओं की स्याही बनाकर पत्र लिखवाती है। अगहन मास में सूनी सेज पर बैठकर पति की प्रतीक्षा कर रही है। पौष माह में पाला गिरता है, वह अपने सखी से कहती है कि मेरी ठण्ड तभी जायेगी, जब पति परदेश से लौटकर मुझे अंग से लगायेगा। माघ मास में आम के वृक्षों में मंजरी लगने लगी है। वह विरह से पागल होकर मरी जा रही है। आज पति के बिना मेरी सेज पर जाकर कौन मेरे हृदय–रूपी फूल को विकसित करेगा। फागुन में पति के बिन कैसे रंग खेलें। इस प्रकार बैसाख, जेठ भी आ जाता है। बारहों महीना बीत गया, पति परदेश से लौटकर नही आया।

चढले माँस आषाढ बादर, घन घमंड दल साजि के।

हमें बिरहिनी तेजि के, पिया रहले कहीं छाइ के।।

वर्ष के विभिन्न महीनों में विरहिणी की मनः स्थिति प्रकृति के अनुसार कैसे बदलती है, इसका इतना स्वाभाविक वर्णन शिष्ट साहित्य में कहीं नही मिलता है। बिना किसी बनाव–सिंगार के सीधे सरल शब्दों में विरहिणी के वियांग की दशा सीधे हृदय में चुभ जाती है, मर्माहत कर देती है। वह पल–पल, दिन–दिन, महीने–महीने इंतजार में, आतुरता में, मिलन की उत्कण्ठा में काट देती है। लेकिन पति है कि बारह महीने बीतने के बाद भी नहीं आया। इस बारहमासे में लोकगीत की अभिव्यक्ति की क्षमता सामने आती है।

भोजपुरी लोकगीतों में दाम्पत्य सम्बंध के बीच जिस तरह प्रेम पनपता है, जिस तरह की प्रगाढता दिखाई देती है, जिस तरह की आत्मीयता सामने आती है। एक दूसरे के लिए जिस तरह की उत्कट लालसा दिखाई देती है, वियोग की आशंका मात्र से जिस प्रकार की बेचैनी, व्यग्रता, तड़प दिखाई देती है, वह बिल्कुल नैसर्गिक लगती है। बिना किसी अलंकार के, बिना किसी उपमान के, बिना किसी उदाहरण के पति–पत्नी के बीच प्रेम इतना प्रगाढ हो जाता है कि घण्टे भर की देरी असह्य लगने लगती है।

कहना न होगा कि भोजपुरी लोकगीतों में प्रेम के विविध रूप दिखाई देता है। इस प्रेम में कोई बनावटीपन नही बल्कि हृदय का सहज स्वाभाविक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। यह प्रेम जीवन के यथार्थ से पैदा हुआ है न कि किसी आदर्श से। इसमें भोजपुरी माटी की सोंधी गंध है, जीवन है तथा जीवन जीने की ललक और कला भी है।

संदर्भ :–

1. भक्ति आंदोलन और सूर का काव्य–प्रो. मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, पृ0–184
2. कालिदास ग्रंथावली, कालिदास–मालविकाग्निमित्रम्–113–1511, उ0प्र0 संस्कृति संस्थान लखनऊ
3. गंगा घाटी के गीत–सं0 डॉ. हीरालाल तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1980, पृ0–223
4. भोजपुरी लोकगीत, भाग–2, संपादक–डॉ. कृष्णदेव उपाघ्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, पृ0–63
5. भोजपुरी संस्कार गीत, सं0–हंस कुमार तिवारी, श्री राधावल्लभ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 2011, पृ0–387
6. वही, पृ0–64
7. भोजपुरी लोकगीत, भाग–1, संपादक–डॉ. कृष्णदेव उपाघ्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद,1990, पृ0–277
8. भोजपुरी लोकगीत, भाग–1, संपादक–डॉ. कृष्णदेव उपाघ्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद,1990, पृ0–273
9. भोजपुरी लोकसाहित्य, डॉ. कृष्णदेव उपाघ्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ0–295
10. भोजपुरी लोकगीत, डॉ0 अवधेश कुमार सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृ0–55
11. भोजपुरी संस्कार गीत, सं0 श्री हंस कुमार तिवारी, श्री राधाबल्लभ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 2011, पृ0–38

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 101-104

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में प्रेम का स्वरूप

–रमनदीप कौर

शोधार्थी, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला

प्रेम हमारे जीवन में एक मिठास है जिसके बिना जीवन बहुत नीरस लगता है। प्रेम मानव के अंतर–जगत की व्यापक सत्ता है। मानव जीवन की अलग–अलग अवस्थाओं और स्थितियों में उनके नाना रूप अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहते हैं। संसार में धन–दौलत, खूबसुरती, बादशाही, अच्छा स्वास्थ्य आदि एक से बढ़कर एक उस परमात्मा द्वारा प्रदान की गई नियामतें हैं, जिनको एक मनुष्य सदा ही प्राप्त करना चाहता है। धन–दौलत एक व्यक्ति को अभिमानी बना देती है, खूबसुरती मनुष्य को अंधा कर देती है, ताकत और बादशाही जुल्म और विनाश का कारण बनते हैं। प्रेम इन सबसे बढ़कर है यदि इनके साथ प्रेम जुड़ जाए तो ये हमारे लिए गुणकारी बन जाते हैं। प्रेम एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य या जीवों के साथ ऐसे ही पैदा हो जाता है। इसमें दो का अस्तित्व होना अनिवार्य है। "दो के बिना प्रेम वृत्ति के प्रकाशन की गुंजाईश ही नहीं हैं। परंतु प्रेम मानवीय सम्बन्धों में ही अपने आपको प्रकट करता है। प्रेम की तीन कोटियाँ हो सकती हैं–

1. छोटे की बड़े के प्रति प्रीति : अर्थात श्रद्धा
2. दो सम वयस्कों की प्रीति : अर्थात सख्य या मैत्री जिसमें प्रणय भी है।
3. छोटे से बड़े की प्रीति : वात्सल्य।"

प्रेम ही हर रिश्ते का आधार है वह रिश्ते लौकिक और परालौकिक चाहे कोई भी हों। परमात्मा से आत्मा का मिलन भी प्रेम द्वारा ही सम्भव है। प्रेम को परिभाषित करने के लिए विभिन्न कोश ग्रन्थों एवम् विद्वानों के मत को आधार बनाया जा सकता है। भारतीय कोशकार आप्टे ने इसे अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताते हुए कहा है कि– "Love, affection, favour, kindness, kind or tender regard, sport part time, joy, delight, gladness."

महान कोश के अनुसार प्रेम का अर्थ– प्यार अर्थात स्नेह है। "प्रेम के सर लागे तन भीतरि" (सोरठ म.४)

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार प्रेम का अर्थ–प्रीति, आत्मीयता, अनुराग, दयालुता, सहज सम्मान, खुशी, प्रसन्नता, मानसिक लगाव आदि से है।

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार प्रेम का अर्थ– गुण, रूप, स्वभावादि के कारण उत्पन्न होने वाला आकर्षण एवं सुखद मनोभाव जिससे प्रभावित होकर एक व्यक्ति दूसरे को सदा अपने साथ या निकट और प्रसन्न रखना चाहता है; प्यार, मुहब्बत, अनुराग; कृपा; क्रीड़ा, केलि; आनंद आदि है।

इस प्रकार कोशकारों ने प्रेम शब्द का अर्थ प्रतिपादित किया है और वे इस बात पर एक मत हैं कि प्रेम में आत्मीयता मैत्री, स्नेह, श्रद्धा, कोमलता के साथ–साथ वासना का भी स्थान है। कबीर साहब लिखते हैं कि प्रेम एक बहुत अमूल्य चीज है इसको खेतों में नहीं उगाया जा सकता और न ही यह दुकान में मिलता है। इसके लिए अमीर–गरीब सब एक समान है जो इसको अपना शीश देता है वो ही इसे प्राप्त कर सकता है–

"प्रेम न बाड़ी उपजै प्रेम न हाट बकाइ,
राणा राजा जो रुचौ सीस दीये लय जाई"

कुछ विद्वान् प्रेम का अर्थ अनन्त तृप्ति प्रदान करने वाला भी करते हैं। प्रेम शब्द का घेरा बहुत विशाल है। सम्पूर्ण संसार प्रेम के बंधन में बंधा हुआ है। भक्त–भगवान, माता–पुत्र, बहन–भाई, के रिश्ते में प्रेम है। इस प्रकार प्रेम के मुख्य दो रूप माने जा सकते है–

1. वस्तुपरक प्रेम 2. आध्यात्मिक प्रेम

सूफीमत में इनको इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी कहा जाता है। 'सूफियों के विचारानुसार लौकिक प्रेम (इश्क मिजाजी) एवं अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) में मूल रूप से कोई अंतर नहीं है। यदि लौकिक प्रेम शुध्द एवं वास्तविक है तो उसका अलौकिक प्रेम में परिणत हो जाना कोई विस्मय की बात नहीं है। इसी कारण यदि हम चाहें तो प्रथम को द्वितीय का दृढ़ साधन भी बना सकते हैं।' दर्शन में वस्तुपरक एवम् आध्यात्मिक प्रेम कहा जाता है। वस्तुपरक प्रेम का सम्बन्ध मानव के शरीर से है परन्तु आध्यात्मिक प्रेम का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से है। प्रेमचंद भी प्रेम को आध्यात्मिक भोजन मानते हैं वे कहते हैं कि "प्रेम ही तो आध्यात्मिक भोजन है और सारी कमजोरियाँ इसी भोजन के न मिलने से पैदा होती हैं"।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रेम की इसी दूसरी कोटि का वर्णन किया गया है। प्रत्येक धर्म में प्रेम को अनिवार्य बताया गया है। जिस आत्मा के भीतर प्रेम रूपी रस प्रकट हो जाता है, उसका रोम–रोम खिल उठता है। वह जीव भाग्यहीन है जिसने प्रेम रूपी रस को अभी तक चखा ही नहीं। गुरुबाणी के अनुसार प्रेम रस को चखने से ही तृप्ति मिल सकती है :– जिंनी चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ।

गुरुबाणी में प्रेम के लिए प्यार, प्रीति, प्रीत, मुहब्बत, इश्क, अनुराग, स्नेह, मोह, आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह प्रेम जब घर की चार–दीवारी के भीतर रहता है, तब इसे मोह कहा जाता है, मोह में जकड़ा हुआ मनुष्य अंधा होता है, अर्थात उसको केवल अपना धर्म और घरवाले ही अच्छे लगते हैं, परन्तु घर की चार–दीवारी से निकल कर प्रेम जब सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाता है तो इस प्रकार का प्रेम प्रभु–प्रेम कहलाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रेम प्रभु का ही एक रूप है। गुरुबाणी में प्रेम को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। गुरुओं ने यहाँ तक कहा है कि जिन मनुष्यों के ह्रदय में प्रेम नहीं उनका इस संसार में आना व्यर्थ है। जिन मनुष्यों के ह्रदय में प्रेम नहीं है, उनका शरीर राख के ढेर के समान है, कहने का अर्थ यह है कि उनका संसार में आना व्यर्थ है– अंदरु खाली प्रेम बिनु ढहि ढेरी तनु छारु।

गुरुबाणी में प्रेम के अनेक स्वरूपों का वर्णन किया गया है जैसे– नाम प्रेम, शब्द–प्रेम, गुरु–प्रेम, सत्संगत प्रेम, चरण–कमलो से प्रेम, जीव रूपी स्त्री का प्रभु पति से प्रेम, प्रभु प्रेम आदि। नाम प्रेम की चर्चा करते हुए गुरुबाणी में कहा गया है कि एक सच्चा प्रेमी अपने हाथ से किरत करते हुए अपने मन को सदैव प्रभु नाम से जोड़े रख सकता है। गुरुओं ने नाम रहित व्यक्ति को पशु तुल्य बताया है :–

पसू मिलहि चंगिआईआ खडु खावहि अंम्रितु देहि।
नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि।।

शब्द को गुरुबाणी में ब्रह्म के रूप में प्रदर्शित किया गया है शब्द को गुरु एवम् पीर के समतुल्य मान कर, इसका स्वरूप गहरा एवम् गम्भीर बताते हुए इसकी महत्ता इतनी मानी है कि इसके बिना संसार अपनी सुध–बुध खो बैठता है–

सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा बिनु सबदै जगु बउरानं।

गुरु नानक देव जी शब्द को प्रेम करने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि शब्द के साथ प्रेम करके ही उस प्रभु–परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। इसके बिना सारा संसार आडम्बरों में फस कर आवागमन के चक्रों में पड़ा

रहता है :– बिनु सबदै जगु भूला फिरै मरि जनमै वारो वार।

गुरुबाणी में गुरु का प्रमुख स्थान है। गुरु की सहायता से ही उस परमात्मा का प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। गुरु के बिना प्रेम का उचित विकास संभव नहीं, क्योंकि अगर सैंकड़े चाँद उग जाए और हजारों सूर्य उदय हो जाए, फिर भी आध्यात्मिक जीवन में गुरु के बिना जीवन अंधकारमय है :– बिनु गुर प्रेम न पाईऐ सबदि मिलै रंगु होई।

गृहस्थ जीवन में पति–पत्नी का होना अनिवार्य है। गुरुबाणी में जीवात्मा को पत्नी तथा उस अकाल–पुरुष को प्रभु–पति के रूप में लिया गया है। गुरुबाणी में इस तथ्य की पुष्टि की गई है– 'ठाकुर ऐकु सबाई नारि' कहने का अर्थ इस संसार में प्रभु ही एक पुरुष है और इस जगत में समस्त जीव उस प्रभु पति की स्त्रियाँ हैं :–

इसु जगु महि पुरखु एकु है होर सगली नारि सबाई।

जिस व्यक्ति को हम प्रेम करते है, उसके लिए प्रेमी के मन में यह डर होता है की कहीं उससे कोई ऐसा कार्य न हो जाए जिससे उसका प्रियतम उससे रूठ जाए। गुरुबाणी में भी प्रेमी के मन के डर की स्थिति का चित्रण मिलता है :– नानक जिन्ह मनि भउ तिन्हा मनि भाउ।

जिन मनुष्यों की परमात्मा के साथ प्रीति हो जाती है वे उस हरि के नाम के बिना एक पल नहीं रह सकते। जिस प्रकार एक नशे करने वाला व्यक्ति नशे के बिना तड़फने लगता है, उसी प्रकार हरि के नाम के बिना प्रेमी की स्थिति मरने के जैसी हो जाती है :–

हरि बिनु रहि न सकउ इक राती।
जिउ बिनु अमलै अमली मरि जाई है।
तिउ हरि बिनु हम मरि जाती।।

प्रेम का महत्त्व इसलिए भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि केवल एक सच्चा प्रेमी ही 'सरबत दा भला' मांग सकता है। जिसके ह्रदय में प्रेम की ज्योति प्रज्वलित है वह अपने पराये की भावना से ऊपर उठ जाता है, प्रत्येक व्यक्ति उसको अपना ही लगता है और यही उसके जीवन की दिशा भी बन जाती है :–

ना को बैरी नही बिगाना, सगल संगि हम कउ बनि आई।

प्रेम बहुत छोटा पद है परन्तु इसका व्यवहारिक रूप उतना ही कठिन है। प्रेम के द्वारा दोनों लोकों में प्रसिद्धी प्राप्त की जा सकती है। जिस व्यक्ति ने प्रेम के स्वरूप को भली–भांति पहचान लिया वह कभी भी अपने जीवन में असफल नहीं हो सकता। लौकिक तथा आलौकिक दोनों प्रकार प्रेम जीवन में अति आवश्यक है। लौकिक जीवन में प्रेम के द्वारा किसी का भी दिल जीत कर अपना जीवन आंनदमय बनाया जा सकता है। इस प्रेम के अनेक रूप हो सकते हैं यथा देश–प्रेम, नर–नारी, राष्ट्र प्रेम, प्रकृति प्रेम। इसी प्रकार आलौकिक प्रेम के द्वारा उस प्रभु परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास में अनेक संतों–महात्माओं ने केवल प्रेम के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की है। गुरुबाणी में नाम, सबद, सत्संग, गुरु, आदि को प्रेम करते हुए उस प्रभु परमात्मा को पाया जा सकता है। गुरुओं ने प्रत्येक उस जीव से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के उपदेश दिए हैं जिनसे परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है। विभिन्न उदाहरणों के द्वारा उन्होंने मार्गदर्शन करते हुए ह्रदय में प्रेम की ज्योति प्रज्ज्वलित करने के उपदेश दिए हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि यदि प्रत्येक मनुष्य गुरुबाणी को अपने जीवन में धारण कर ले तो समाज में ईर्ष्या, द्वेष, जलन आदि तो स्वयं ही नष्ट हो जाएँगे। गुरुबाणी में प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में प्रेम धारण करने के लिए अनेक रास्ते बताए गये हैं, जिन पर चल कर हम उस परम प्रभु परमात्मा के प्रेम के भागी बन सकते है। गुरुओं ने भौतिक वस्तुओं से प्रेम न करके उस सच्चे परमात्मा से प्रेम करने के उपदेश दिए हैं जिनको अपने जीवन में धारण करके हम उचित जीवन निर्वाह कर सकते हैं और प्रत्येक प्राणी जीवन में खुश रह सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रामेश्वर लाल खंडेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृष्ठ संख्या 103
2. आप्टे, संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ संख्या 380
3. काहन सिंह नाभा, गुरूशब्द रत्नाकर महान कोष, भाषा विज्ञान, पटियाला, पंजाब, 1981
4. बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ संख्या 1641
5. कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृष्ठ संख्या 760
6. अयोध्या सिंह उपाध्याय, कबीर वचनावली, पृष्ठ संख्या 46
7. डॉ. बैकुण्ठ राय, भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा और दाउदकृत चंदायन, पृष्ठ संख्या 35
8. प्रेमचंद, कुछ विचार, पृष्ठ संख्या 12
9. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ संख्या 135
10. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ संख्या 62
11. वही, पृष्ठ संख्या 489
12. वही, पृष्ठ संख्या 635
13. वही, पृष्ठ संख्या 58
14. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ संख्या 58
15. वही, पृष्ठ संख्या 591
16. वही, पृष्ठ संख्या 465
17. वही, पृष्ठ संख्या 668
18. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ संख्या 1299

81463–84099, Deep35031@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 105-107

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उपन्यास साहित्य में प्रेम के विविध रंग

–डॉ. रहिम मिश्रा

सहायक प्राध्यापक, बी–13 एन. आई. टी. टी. टी आर कैम्पस, श्यामला हिल्स, भोपाल (म.प्र.)

संकेत शब्द– प्रेमचंद, नायक, प्रेम, मानव, समाज, सामाजिक बुराईयां।

शोध संक्षेप :–

हिंदी साहित्य की प्रमुख विधा उपन्यास हैं। अधिकतर उपन्यास प्रेम पर आधारित है जिस प्रकार प्रेम के विविध रूप होते हैं, ठीक उसी प्रकार उपन्यास के भी उतने ही रूप होते हैं, हर प्रेम का अपना एक वृहद आकार होता है और अंततः वैश्विक प्रेम पर ही जाकर अटकता है यानि परिपूर्ण होता है, प्रेम संवेदन की वस्तु है,जब स्पंदन अपने चरम पर होता है तब वैश्विक प्रेम की उत्पत्ति होती है। गागर में सागर भरने वाले प्रसिद्ध कवि बिहारी जी ने भी कहा था कि यह संसार तो कांच के समान है,मैंने इसे निराधार समझने की भूल की थी। इसका रुप अपार है जिसमें हर गतिविधि का प्रतिबिंब देखा जा सकता है।

मैं समुझ्यों निरधार, यह जग कांचों कांच सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ।।

प्रस्तुत शोध पत्र में उपन्यासों में व्यक्त प्रेम के विविध दृष्टिकोणों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना :–

लेखन के अविष्कार के बहुत पहले से, मनुष्य का जीवन प्रेम और जुनून के इर्द–गिर्द घूमता है। विभिन्न बह्मांणों से संबंधित सैकड़ों कहानियां पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक महिला और एक पुरुष और एक देवी और एक देवता के बीच प्रेम बंधन के बारे में बात करते हुए प्रेषित की गई–जिसने अन्य देवताओं को रास्ता दिया और एक निश्चित बिंदु पर मानवता को। हिंदी साहित्य के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के नायक और नायिका के माध्यम से जीवन में प्रेम के सामाजिक और धार्मिक स्वरूप का चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रेम संबंधित विविध रंग :–

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी के गोदान में प्रेम का स्वरूप कुछ इस प्रकार है– उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आंखें तरेर कर कहा– क्या ससुराल जाना है, जो पांचों को पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली–सहलज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ। होरी के गहरे सांवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कुराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा –ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली–सलहजे तुम्हें देखकर रीझ जाएंगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा – तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं। 'जाकर सीसे में मुंह देखो। तुम– जैसे मर्द

साठे पर पाठे नहीं होते। दूध–घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख– देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूं कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख मांगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आंच में झुलस गई। लकड़ी संभालता हुआ बोला– साठे तक पहुंचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे। धनिया ने तिरस्कार किया–अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने। होरी कंधों पर लाठी रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन– सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय–दान दे रही थी। उसके अंतः करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह–सा निकलकर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सुहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना– शक्ति आ गई थी। सच ही है– घायल की गति घायल ही जाने।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम उर्फ़ तीसरी कसम' हिरामन, हीराबाई पात्रों के माध्यम से प्रेममयी मनुष्यता की चरम अभिव्यक्ति है और जाहिर है कि शोषक तंत्र के खिलाफ प्रतिरोध की भी। आज के समय में एक तरफ जहां वर्चस्ववादी सत्ता सच्चे प्रेम के प्रति बेहद हिंसक बर्ताव कर रही है, वहीं बाजार इसकी आत्मा के साथ खिलवाड़ कर रहा है, जहाँ स्त्री–पुरुष को उसने अपने लाभ के लिए खेल के मोहरों में तब्दील कर दिया है। प्रेम पर दोतरफा हमला लगातार जारी है। एक तरफ से प्रेम का गला मरोड़ा जा रहा है तो दूसरी ओर से उसको प्राणविहीन करने की कोशिश की जा रही है। प्रेम के लिए इस अत्यंत कठिन समय में साहित्य में अनेक प्रेममय पन्नों में से कुछ पन्नों की प्रस्तुति प्रेम के पक्ष में जारी संघर्ष में शामिल होने का एक प्रस्ताव है। उपन्यास साहित्य में विविध प्रेम के प्रकार दृष्टव्य होते है– सुखद प्रेम, दुखद प्रेम, आदर्शीकृत प्रेम, असंभव प्रेम, संवेदनशील प्रेम, सौहार्दपूर्ण प्रेम, पारस्परिक प्रेम, अत्याचारी प्रेम आदि। हिन्दी साहित्य के उपन्यासकार अपनी लेखनी के माध्यम से प्रेम के विविध स्वरूपों का चित्रण बखूबी प्रस्तुत करते है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम को उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठा मिली है। बाणभट्ट कहता है कि 'मैं स्त्री शरीर को देव मंदिर के समान पवित्र मानता हूं'। वह नारी को विलास नहीं करुणा की मूर्ति मानते है। यहां प्रेम देह कामना से बहुत हद तक दूर है। भट्टिनी और बाण दोनों ही प्रेम को शारीरिक तृप्ति का माध्यम नहीं बनने देते। इसलिए विकारों को पल्लवित करने की कामना यहां दिखाई नहीं देती। भट्टिनी एवं भट्ट का प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। दरअसल यहां प्रेम के चरित्र में विश्व कल्याण की भावना निहित है। कथा साहित्य ऐसा हो कि पवित्र भूमि में नारी सौंदर्य की पूजा होती रहे और उसे अपमानित करने का साहस किसी को नहीं हो। अघोर भैरव ने कहा था कि भट्ट पशु नहीं है अर्थात उसकी वृत्तियां पशुवत् नहीं है। वैसे भी दैहिक प्रेम स्थायित्व नहीं दे सकती। भट्ट और भट्टिनी का प्रेम रोमानीपन को छूता हुआ दिखाई देता है। भट्ट का प्रेम व्यापक सामाजिक सरोकार से जुड़ जाता है। भट्टिनी का प्रेम और सौंदर्य पूरी तरह रचनात्मक हैं। यही कारण है कि भट्टिनी के प्रति भट्ट का प्रेम आर्यावर्त के उद्धार का महान लक्ष्य लेकर अग्रसर होता है जिसमें स्त्री जाति की शुचिता और सुरक्षा का भाव निहित है। यह रचनाकार की उदात्त दृष्टि का प्रमाण है कि उसने बाणभट्ट के प्रेम की वैयक्तिक सार्थकता को लोक की सार्थकता के साथ जोड़ दिया है और उसे एक उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए प्रेम का यह स्वरूप एकनिष्ठ होते हुए भी सामाजिक है।

बाणभट्ट और भट्टिनी के प्रेम को देवोपम बनाने का उद्देश्य यह भी रहा है कि लेखक नारी के प्रति सामंती दृष्टि को बदलना चाहता है। सम्राटों और सामंतों के अंतःपुर में बंधक की तरह रखी जाने वाली अपहृता स्त्रियों की पीड़ा भट्टिनी के माध्यम से व्यक्त हुई है। अंतःपुर का कार्य व्यापार वासनाजन्य दंभ, पौरुष और प्रमाद का कारण स्वरूप होता है। व्यक्ति

स्वतंत्रता का निषेध एवं सौंदर्य का शरीरी रुप प्रधान होता है।

अमानवीयकरण की यह प्रक्रिया शासक वर्गों के दमन का प्रमुख अस्त्र रही है। हजारी प्रसाद द्विवेदी स्त्री के इस सामंती पूंजीवादी रूप को अस्वीकार करते हुए उसे उच्च आदर्श भूमि पर स्थापित करते है। वह नारी के उस रूप को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं जो कम से कम इतना देवीमय हो कि उसकी मर्यादा भंग करने का कोई नैतिक साहस न कर सके। शायद इसलिए द्विवेदी जी ने भट्टिनी के प्रेम को इतना महिमामयी एवं गौरवशाली रुप प्रदान किया है। भट्टिनी, अपने हृदय के प्रेम भाव को व्यक्त करते हुए कहती है– 'तुम नहीं जानते कि तुमने मेरे इस पापंकित शरीर में कैसा प्रफुल्ल शतदल खिला रखा है। तुम मेरे देवता हो, मैं तुम्हारा नाम जपने वाली अधम नारी'। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हजारी प्रसाद द्विवेदी की लेखन प्रतिभा का साक्षात्कार है। उन्होंने स्त्री के प्रति सामंती दृष्टि के स्थान पर मानवीय दृष्टि का संधान किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट, भट्टिनी और निपुणिका का जो प्रेम त्रिकोण लक्षित हुआ है वह निपुणिका के चरित्र को गहराई से समझने की मांग करता है। जहां भट्ट और भट्टिनी के प्रेम में एक प्रकार का रोमानी आदर्शवाद झलकता है वहीं निपुणिका का भट्ट के प्रति प्रेम मानवीय रूप में प्रकट हुआ है।

बाणभट्ट परंपरागत रूढ़िवादी मूल्यों को अस्वीकार करते हुए दलितों की मनुष्यता को जिस ऊंचाई तक ले जाता है वह एक ओर तो तत्कालीन सामंती समाज व्यवस्था का अतिक्रमण है तो दूसरी तरफ वर्तमान के लिए उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास है। इस प्रेम संबंध की सार्थकता वर्तमान में भी उतनी ही है जैसी बाणभट्ट के जीवन काल में थी। डॉ. रमेशचंद्र शाह के उपन्यास 'किस्सा गुलाम' में व्यापक प्रेम जीवन के अतीत और वर्तमान का संघर्षपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत है। उपन्यास के प्रारंभ में ही कुंदन अपने खंडित दांपत्य जीवन का संकेत देकर अपनी मानसिकता का खुलासा करता दिखाई देता है। "मैं क्या कर सकता हूं श्रीमान्, मेरी मजबूरी तो समझिए। पैंतालीस की उम्र बड़ी खतरनाक होती है। पैंतालीस पर लोग अचानक मर जाते हैं और जो मर नहीं पाते वे अपने ही उजड़े घर में एक प्रेत की तरह रहने लगते हैं"। वस्तुतः उसके बसे–बसाये घर के उजड़ने और उसमें प्रेत की हैसियत को पहुँचने तक के मानसिक अनुभवों की यात्रा ही इस उपन्यास का केंद्रीय कथ्य है।

कुंदन अध्ययन के लिए विदेश चला जाता है। वहाँ वह विदेशी लड़की एलिस के प्रति आकर्षित होता है और प्रेम विवाह में परिणति हो जाता है। इस विवाह को लेकर पिता–पुत्र में विरोध पैदा होता है। पिता के इस विरोध को शाह ने अपने उपन्यास में बड़े सधे ढंग से व्यक्त किया है –"जो तुम्हारे देश की नहीं, समाज की नहीं, जिसे तुम्हारी जड़ों का पता नहीं, खुद जिसकी जड़ों की तुम्हें खबर नहीं, उसके साथ गिरस्ती बसा के तुम्हें सिवा पछताने के कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं, यह बात अच्छी तरह जान लो"। कुंदन–एलिस के प्रेम विवाह की वास्तविकता जल्द ही पूरी भयावहता के साथ सामने आने लगती है। यह अक्षरशः सत्य है कि हमारे भीतर गड़े–पड़े संस्कार वक्त आने पर अपना रंग अवश्य ही दिखाते हैं।

निष्कर्षत :– ढाई आखर का शब्द 'प्रेम' विश्व साहित्य में शायद सर्वाधिक चर्चित या विवादित रहा है। प्राचीन से आधुनिक साहित्य के केंद्रीय तत्व के रूप में प्रेम को व्यापक स्वीकृति एवं अभिव्यक्ति मिलना जीवन में इसकी अनिवार्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है। मानवीय गुणों में प्रेम को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी गई है।

अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में प्रेम के विविध रंगों का सर्जन करते हुए युगों–युगों से चली आ रही सामाजिक रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों पर प्रहार के हथियार के बतौर जब इसका इस्तेमाल करते हैं तो मानना पड़ता है कि प्रेम की ताकत और इसकी व्याप्ति सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन की दिशा में नई संभावनाओं का द्वार खोलने वाली है। रचनाकार अपनी लेखनी के माध्यम से वर्तमान समाज के बिखर रहे पारिवारिक ताने–बाने को सहेजने का संदेश देते है। इन्हीं मूल्यों के आधार पर समाज को स्वस्थ दिशा में अग्रसर कर सकते है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 108-110

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मृदुला सिन्हा के साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप

–रीना अग्रवाल, शोधार्थिनी, भाषा एवं विज्ञानद्ध,
–प्रो. दिनेश चंद्र चमोला, शोध निर्देशक,
उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, उत्तराखंड हरिद्वार

प्रेम एक ऐसा एहसास है जो दिमाग से नहीं ह्रदय से होता है। प्रेम में अनेक भावनाओं, विचारों का समावेश होता है। प्रेम सहजता, स्नेह से खुशी की और धीरे–धीरे आगे चलता है, मज़बूत आकर्षण है। प्रेम जुड़ाव की भावना के साथ आगे बढ़ने को अग्रसर करता है। नारी को जगत का सर्वाधिक बहुमूल्य रत्न कहा गया है। उसे प्रेम, ममता, स्नेह, बलिदान, सेवा, समर्पण इत्यादि की प्रतिमूर्ति कहा गया है। सृष्टि विधान में सदैव से ही नारी पुरुष की पूरक शक्ति के रूप में स्वीकार की जाती रही है, किंतु विडंबना ही है जो भारतीय समाज में आज भी स्त्री अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती नज़र आती है।

साहित्य समाज का आईना होता है। साहित्यकार अपने समाज एवं युग के परिवेश में रहकर जीवन का जिस रूप में दर्शन करता है उसे अपनी स्वतंत्र चेतना, बुद्धि एवं ह्रदय के माध्यम से व्यक्त करता है। प्रेम का एक विशेष भाव है। अतः हिंदी साहित्य में प्रेम की क्या स्थिति है। इसका विश्लेषण साहित्य के माध्यम से हमें प्राप्त होता है। हिंदी के प्रति जागरूक, संपन्न एवं प्रगतिशील साहित्यकार मृदुला सिन्हा का साहित्य अपने अनुभवों के आधार पर प्रेम का आगाज़ प्रस्तुत करते हैं।

जहाँ आज एक ओर समकालीन लेखक और लेखिकाएँ सामाजिक विमर्शो आदि पर बल दे रहें हैं, वहीं कुछ साहित्यकार प्रेम पर आधारित मूल्यों पर महत्त्व दर्शाते साहित्य का सृजन कर रहे हैं। ऐसे में मृदुला सिन्हा की लेखनी जीवन मूल्यों की आवश्यकता पर सुचारू रूप से गतिमान है। उनके साहित्य में भारतीय संस्कृति की पुकार है, रूढियों, परंपराओं में विरोधाभास है और नवीन मूल्यों के प्रति प्रेम की जागती सच्ची आस्था है। समकालीन महिला कथाकारों में श्रीमती सिन्हा विशिष्ट स्थान रखती है, उनके साहित्य में व्याप्त प्रेम के विविध रूपों से हमारी पहचान होती हैं। स्त्री मूलक विषयों की कथाकार होने के कारण उन्होंने स्त्री पात्रों को माध्यम बनाकर प्रेम के यथार्थ रूप का सहज–सजीव चित्रण किया है। श्रीमती सिन्हा की लेखनी वर्तमान समयानुकूल परिस्थितियों पर चलायमान रहते हुए समाधान तक पहुँची है। इस परिप्रेक्ष्य में स्वएं लेखिका के अनुसार, ''हर कथा अपने समय का आईना होती हैं पन्नों पर अक्षरों में उकेरी गई समय की पेंटिंग।''[1]

इसी परिप्रेक्ष्य में उनके द्वारा रचित कहानी ''उधार का सूरज'' एक सशक्त माँ के पुत्र के विदेश में होने के भावों से विह्वल रूप को दर्शाया गया हैं जिसमें पुत्र प्रकाश की माँ गाँव में अकेली रहती हैं। प्रकाश अमेरिका में नौकरी करता है। माँ बेटे की याद में दिन–रात अकेले जीवन व्यतीत करती हैं। गाँव वाले भाँति–भाँति की बात करते हैं जैसे, प्रकाश ने अमेरिका में ही विवाह कर लिया है, अब वह भारत कभी नहीं आएगा। कुछ समय पश्चात प्रकाश अमेरिका से अपनी एक महिला मित्र को भारत में अपनी माँ से मिलने के लिए भेजता है। माँ उसे पुत्र की पत्नी समझकर व्यवहार करती

हैं। अस्सी वर्षीय बृजुर्ग माँ घर में अकेली रहकर गाय, बकरी, तोता, चिड़िया पालती हैं और महिला मित्र से कहती है, ''अरे! बिटिया, मैं आदमी के संग–साथ को तरस गई हूँ ! अब गाय, बकरी, तोते, पक्षियों के साथ बोल–बोलकर थक गई हूँ मैं। ये जवाब देने का नाम नहीं लेते।''[2] सब सुनकर आँखें भर आती है महिला मित्र की। वह कहती है, आपका पुत्र बहुत ही लायक है। बहुत याद करता है आपको। उसने मुझे आपको अमेरिका ले जाने हेतु भेजा है। उत्तर में माँ कहती थी, ''ना बेटी! मैं कहीं न जाऊँ। मैं तो इसी मिट्टी में...! गला भर आया था उनका। फिर बोली, आठ कोठरी वाली हवेली में अकेली ही रहती हूँ। मैं चली भी जाऊँ तो साँझ की दिया–बत्ती कौन करेगा?''[3] ''एक बार प्रकाश को भेज देना। तुम भी आती रहना, मेरी बेटी बनकर रहना यहीं।''[4] ''अब तो चिंता रहती है। मेरे मरने पर प्रकाश कैसे आ पाएगा? सात समुंदर पार जो रहता है वह! गाँव वाला कोई खबर कैसे देगा उसे?''[5]

माँ समझ रही है कि युवती प्रकाश की पसंद है, बेटे की पसंद तो उसकी भी पसंद। प्रेम का एक अलग रूप है। प्रेम व वात्सल्य का रूप स्वयं लेखिका के शब्दों में, ''मेरी पोती गुड़िया से नहीं खेलेगी उसके लिए वह सब खिलौने खरीदो जिनसे खेलकर डॉक्टर बना जा सके।''[6] भारतीय संस्कृति में सदैव से ही सीता का चरित्र आदर्श रूप में पूजनीय रहा है। एक तरफ राम मर्यादा पुरूषोत्तम है तो वहीं दूसरी तरफ सीता आदर्श नारी की मर्यादा। पति का साथ देने के लिए उन्होंने भी वनवास जाने का निश्चय किया। सीता में जो सतीत्व और प्रेम के आदर्श रूप दिखाई पड़ते हैं उससे बड़ी संपूर्णता कहीं और उजागर नहीं होती। स्त्री के लिए प्रेम, सतीत्व, मातृत्व अनिवार्य माने गए हैं। श्रीमती सिन्हा 'सीता पुनि बोली' उपन्यास में सीता के प्रेम के स्वरूप, सतीत्व व समाज में व्याप्त मूल्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं – ''महाग्रंथों में सीता का चित्रण महाशक्ति जगत्जननी और देवी–स्वरूपा के रूप में करके उन्हें मानवीय गुण दोषों से परे कर दिया गया। किसी ने सोचा नहीं कि नारी की देह जगह पृथ्वी के गर्भ से जन्म लेने का समाचार सुनकर बालपन में ही सीता के हृदय पर क्या बीती होगी? पिता द्वारा विवाह के लिए धनुष भंग प्रतिज्ञा की पात्र बनी किशोवयः सीता के मन में किसी योग्य पुरुष द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा न चढ़ाने की सोचकर कितनी व्याकुलता हुई होगी? यज्ञशाला में धनुष भंग का प्रयास करते राजाओं के असफल होने पर पिता का अक्रोश उन पर कम और प्रतिज्ञा के कारण अधिक था। प्रत्येक पुत्री का पिता राजा जनक की मानसिक अवस्थाओं को स्वयं जीता है। मगर सीता के मन पर क्या बीती?''[7]

'ज्यों मेंहदी के रंग' उपन्यास में प्रेम एक–दूसरे के सम्मान और कर्तव्य परायण के भाव से परिपूर्ण नायिका शालिनी के विषय में है। जो कृत्रिम अंग बनाने वाली डॉ0 अविनाश की संस्था में कार्य करती है। उसके सभी सहकर्मियों से रिश्ते मैत्री व प्रेमपूर्ण हैं। विदेशों में ऐसा नहीं होता, जबकि हमारे देश में कार्यक्षेत्र में परिवार जैसे प्रेम व मैत्रीपूर्ण संबंध होते हैं। शालिनी संघर्ष करते हुए प्रेमपूर्वक कार्य करती हैं और नारी रूप की गरिमा को बनाए रखने पर बल देती हैं। नगरीकरण के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन स्पष्ट किया गया है। 'अतिशय' उपन्यास में प्रेम को अलग रूप में दर्शाने का सफल प्रयास किया गया है। लेखिका ने सर्वोच्च आदर्शों से भटकती युवा पीढी के समक्ष आदर्शों को रखते हुए प्रेम के यथार्थ रूप व स्वरूप को प्रस्तुत करने का सफल व सार्थक प्रयास किया है। आज भौतिकवादी युग में जब तक हम दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगें तो आने वाले समय में सम्मान पाना, प्रेम पाना हमारे लिए परिहार्य न होगा। पश्चिम की देखा देखी नकल में मार्ग से भटकने और परिणति स्वरूप हताशा, निराशा आदि को दर्षाते हुए लेखिका ने समाधान प्रस्तुत किया है।

उनकी ''स्पर्श की तासीर'' कहानी में मानवता के भावों को सरल व सहज ढंग से प्रस्तुत किया है । जिसमें डाक्टर नंदिता द्वारा बीमारों पर किए गए प्रेम, मानवता और चिकित्सा की चर्चा को लेखन का विषय बनाया। इलाज में न सिर्फ़ दवा, अपितु प्रेम पूर्वक व्यवहार तथा बातों से मरीज अपनी बीमारी भूल जाते हैं। आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य जब तक दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगा आने वाले समय में वह एक दूसरे का विरोधी ही होगा।

'घर का बैरागी' कहानी में मास्टर मोहनबाबू सेवानिवृत्त होकर पत्नी कनकलता के साथ गाँव में रहते हैं। उनके तीनों बच्चों की शादी हो जाती हैं। मोहनबाबू साधु बनने की इच्छा लिए बाहर का रास्ता निर्धारित करते हैं, मठों, मंदिरों में जाते हैं। पत्नी का प्रेम भरा व्यवहार, ''घर में रहकर भी बैरागी जीवन जिया जा सकता है। बैरागी एक भाव है जो घर में रहकर भी उत्पन्न हो सकता है।''[31] पत्नी कनकलता की प्रेम से दी गई सीख से वह घर वापिस आ जाते हैं। लेखिका ने 'बेटी का घर' कहानी में एक पिता के अपनी बेटी के घर आकर रहने और बेटी के घर रहने के प्रति समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। माता–पिता, भाई–बहन के संबंधों के बीच प्रेम में समानता को दर्शाते हुए लिखा है, ''भैया ने बेटे बेटी में कभी कोई अंतर नहीं किया। आखिर घर तो बेटी का ही है आखिर लोग क्या कहेंगे?''[8] 'सागर सा' कहानी में सुधा के पति सागर की अचानक मृत्यु हो जाती है परंतु सुधा अपने पति का अहसास सदैव अपने साथ बनाए रखना चाहती हैं इसलिए वह अपने सुहाग चिह्न के प्रतीक मंगलसूत्र, सिंदूर, बिंदी, बिछुवे को न त्यागते हुए शृंगार करके रहती हैं। तीनों बच्चों के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करती हैं। रिश्तेदार, सगे–संबंधी शृंगार को देखकर सुधा के दूसरे ब्याह होने का अंदाजा लगा अफ़वाह फैलाते हैं। सुधा की बचपन की घनिष्ट सखी मंजू तक बात पहुँचती है। वह मन नही मन सुधा को चरित्रहीन मानकर उसके प्रति घृणा के भावों से भर जाती है। कहानी के अंत में मंजू को सुधा और उसके पति के भावनात्मक प्रेम के बारे में पता चल जाने पर पुनः उन दोनों सखियों में आपसी संबंध घनिष्ट हो जाते हैं।

'सती का सम्मान' कहानी में प्रेम के स्वरूप को महत्त्व देते हुए लेखिका ने वर्तमान समय में पति पत्नी के मधुर रिश्तों में आए परिवर्तन को उजागर किया हैं। लेखिका ने आदर्ष जीवन को सम्मान देते हुए इंदिरा जी और उनके पति मि0 कुकरेजा के सात वर्षो के सफल वैवाहिक आदर्श जीवन को प्रस्तुत किया है। समय के साथ बदलते जा रहे प्रेम संबंधों के विषय में मृदुला सिन्हा 'सती का सम्मान' के माध्यम से कहती हैं, ''पुनः हमारे समाज को सती नारियों को सम्मान देने की आवश्यकता आ पड़ी है। दांपत्य जीवन, परिवार, समाज की बढ़ती विसंगतियाँ दूर करने का यह भी एक उपाय है।''[9]

इस प्रकार उपयुर्क्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि मृदुला सिन्हा की लेखनी प्रेम के विविध रूपों, स्वरूपों पर दृढ़ता से चलायमान है। उनके साहित्य में मूल्य भावों और संवेदनाओं के साथ भाव प्रकट होते हैं। उनका लेखन उनके पारिवेश में घटी घटनाओं पर आधारित है। उन्होंने अपने अंदर की घुमड़ती संवेदनाओं और चलते–फिरते पात्रों की स्मृति को सहेज कर प्राप्त प्रसंगों और पात्रों को लेकर कहानियाँ बुनी हैं।

मृदुला सिन्हा ने स्त्रियों को बुद्धि का प्रयोग करते हुए भावनाओं में न बहकर प्रेम के स्वरूप को समझने के लिए उद्यत किया है। सीता हो या मंदोदरी, शालिनी हो या शिवानी या हो कनकलता सभी अपने पतियों से प्रेम ही करती है। उनके समक्ष गिड़गिड़ाती नहीं। लेखिका ने साहित्य के माध्यम से प्रेम के विविध रूपों का भारतीय संस्कृति को आचरण और व्यवहार में पिरोते हुए आत्मसात कर प्रेम की एक कड़ी में पिरोने का प्रयास किया है। उनकी कहानियों का केंद्र बिंदु भारतीय संस्कृति के ताने–बाने में बुने जीवन मूल्य हैं जो विपरित परिस्थितियों से जूझते मानव को छुटकारा दिलाते हुए आगे बढ़ने का मार्ग दिखाने वाले हैं।

संदर्भ सूची :–

1. मृदुला सिन्हा; 'देखन में छोटन लगैं' पृ0 सं0 14
2. मृदुला सिन्हा, 'एक दीए की दीवाली' पृ0 सं0 37
3. वही.....पृ0 सं0 38
4. मृदुला सिन्हा; 'ढाई बीघा ज़मीन' पृ0 सं0 69
5. मृदुला सिन्हा; 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' पृ0 सं0 11
6. वही.....पृ0 सं0 18
7. मृदुला सिन्हा; 'सीता पुनि बोली' पृ0 सं0 32
8. मृदुला सिन्हा; 'ढाई बीघा ज़मीन' पृ0 सं0 19
9. मृदुला सिन्हा; 'बराबरी का विधान' पृ0 सं0 54

पता – श्री. सुनील कुमार जिंदल रीना अग्रवाल
शिवालिक इन्क्लेव मकान न.11 सै. 3, टीएचडीसी कॉलोनी पिन 2447
पायल थिएटर व रानीपुर कोतवाली के पीछे, ज्वालापुर, हरिद्वार, उत्तराखंड
मोबाइल– 9808963361 / 9927829991
मेल–reena_itc@rediffmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 111-113

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामायण में प्रेम के विविध स्वरूप

–रीनू चतुर्वेदी

शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र)

–डॉ. सनकादिक लाल मिश्रा

मार्गदर्शक, HOD हिंदी विभाग मऊँगंज रीवा (म.प्र)

प्रस्तावना :–

रामायण का जो प्रेम है वह लौकिक प्रेम भी है और परलौकिक रामायण हमें प्रेम मात्र नहीं अपितु सत्य, प्रेम, करुणा, तीनों का बराबर रूप से समन्वय कराता है। कहा गया है कि बिना प्रेम के भक्ति नहीं की जा सकती अर्थात् जहाँ प्रेम नहीं वहां भक्ति नहीं रामायण में प्रेम क्या है। यह खगपाती गरुण के प्रश्न करने पर कागभुसुण्डी जी अपनी कथा प्रारम्भ करके और अपना सारा जीवन वृत्तान्त सुनाया उत्तरकाण्ड के यह प्रसंग आध्यात्म – ज्ञान के बीज हैं उन्हीं में से एक प्रसंग की सम्पूर्ण साधनाओं का आधार मानते हुए उन्होंने कहा –

जाने बिनु न होई परतीती। बिनु परतीती होई नहिं प्रीती।
प्रीति बिना नहीं भगति दिढ़ाई। जिमि जगपति जल कै चिकनाई।।

अर्थात् परमात्मा की महत्ता पर जब तक विचार नहीं किया जाता तब तक ''ब्रह्मा है'' ऐसा विश्वास भी नहीं होता विश्वास के बिना प्रेम नहीं होता जब तक प्रेम नहीं भक्ति ऐसी ही है जैसे जल के ऊपर तेल फिरता तो है, पर मिल नहीं पाता।

अतः प्रेम भक्ति के लिए ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक है। रामायण को अगर हम आधार मानें तो सम्पूर्ण रामायण प्रेम पर ही ज्यादा बल देती है प्रेम अलग–अलग जगह अलग–अलग व्यक्तियों के माध्यम से दर्शाया गया है।

रामायण में प्रेम के विविध स्वरूप :–

रामायण में कई जगह पर प्रेम के कई स्वरूप का वर्णन मिलता है। इसमें लौकिक प्रेम से, दिव्य प्रेम के स्वरूप को अलग बताकर मनुष्य को अज्ञान से बचाने का प्रयत्न किया है विरक्ति कवि तुलसी ने प्रेम तत्व की सीधी परिभाषा इस तरह की है।

तात कुतरक करहु जनि जाएं। बैर प्रेम नहि दुरई दुराए।।
मुनि गन निकट बिहग मृग जही। बाधक बधिक बिलोकी परहीं।
हित अनहित पशु पचेऊ, जाना मानुस तनु गनु ग्यान निधाना।।

कोई कितना ही षडयंत्र करे बैर और प्रेम कभी द्वीप नहीं सकते मुनियों के आश्रमों में पक्षी मृग अभय घूमते है पर बधिक को देखते ही भाग खड़े होते है जिस तत्व को पशु पक्षी समझ सकते हैं मनुष्य जैसा गुणी–ज्ञानी जीव उसे कैसे नहीं जान सकता।

रामायण में कहा है :–

पय जल सरिस बिकायँ देखहु प्रीति की रीती भलि।
बिलग होई रसु जाई कपट जटाई परत पुनि।।

यहाँ प्रेम के दोनों रूपों का दिग्दर्शन है पहला सांसारिक प्रेम जिसमें स्वार्थ और कामनायें प्रधान रहती है। यद्यपि स्वार्थ पूर्ण प्रेम सही नहीं माना जाता है, यह केवल किसी स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए ही होता है। आज के मोहासवृत्त व्यक्तियों के लिए राम का यह कथन जीवनदायक है। धन, पद, वैभव और ऐश्वर्य के लिए माता–पिता अपने पुत्रों को आध्यात्मिक जीवन से विमुख रखने का प्रयत्न करते हैं। यह दोनों ही राम की दृष्टि में प्रेम के अपयशी है। इसे सांसरिक प्रेम कहा गया है इसे ही बंधन का कारण बताया है।

किन्तु रामायण में यह बिल्कुल नहीं कहा गया है, कि प्रेम न करो प्रेम होना आवश्यक है किन्तु प्रेम निष्काम होना चाहिए। जो कि आपको यश दिला सके। सिर्फ मोह युक्त प्रेम सही नहीं अगर हम रामायण पढ़ते है, तो दिखते हैं कि सम्पूर्ण रामायण में प्रेम की अतिश्योक्ति है, कोई राम के रूप को देख कर मोहित होता है तो कोई उनकी मुस्कान पर रामायण में राम के आलौकिक रूप और गुण का वर्णन किया गया है, जैसे कि पिता–पुत्र प्रेम अर्थात् राजा दशरथ और राम का प्रेम जिसमें दशरथ को प्रेम वश अपना प्राण ही त्याग दिया, केवट और राम का यह भी अनुपम प्रेम था केवट ने जो प्रेम राम से किया उससे उसने सम्पूर्ण पित्तर को हो तार दिया। निषाद राज और राम का प्रेम जो कि मैत्रेयी पूर्ण था। राम जो की रामायण में नायक है और प्रेम की जीति जागती मूर्ति उन्होंने प्रेम को बढ़े ही अच्छे ढंग से दिखाया है। अगर प्रेम निष्काम हो जाए तो राज्य का राजा बना सकती है, किन्तु यह स्वार्थहीन एवं निष्काम पूर्ण हो राजा राम ने केकैयी की आज्ञा मानकर राज्य का त्याग किया और चौदह वर्ष पश्चात राजा राम बनकर वापस आए। अगर पिता के प्रेम पर पड़ कर राम रुक जाते तो केवल अयोध्या के राम बनकर ही रह जाते कदाचित हमें यह नहीं भूलना होगा की राम कौशल्या माता से ज्यादा कैकेयी माता के प्रिय थे।

इसी तरह भरत भी अपने अग्रज भ्राता राम से अत्यधिक प्रेम करते थे। किन्तु राम के समझाने मात्र से ही वह राम के मार्ग पर बाधा न डालते हुए उनकी आज्ञा का पालन करते हुए मात्र उनकी पादुका लेकर वापस आ गए और उनके कहें अनुसार कार्य करने लगे।

निष्काम प्रेम का एक और सुंदर उदाहरण अयोध्या कांड में ही प्रस्तुत है। संसार की ऐसी कौन सी माता होगी जिसे अपने पुत्र से प्रेम न होगा कौशल्या का अपने पुत्र राम के प्रति अगाध प्रेम था पर इस प्रेम में उन्होंने स्वार्थ की झलक तक नहीं आने दी। उन्हें राम और भरत पर कोई अंतर नहीं जान पड़ा। दरअसल सच्चा प्रेम तो यही है अपने बच्चे की सच्ची स्नेहिल वही माता हो सकती है जिसे दूसरे बच्चो से भी समान प्रेम हों। यह संसार परमात्मा का बनाया हुआ है अपने–पराएं सब उसी के पुत्र है फिर एक से प्रेम और दूसरे से दुराव कैसे हो सकता है। जो अपनों से प्रेम करता है वह यदि मानव मात्र से प्रेम तो ही उसका प्रेम सच्चा है। ईश्वरीय प्रेम और प्रेममयी भक्ति से जीवन मुक्ति का यहीं स्वरूप हैं। यह कथानक राम का माता कौशल्या से वन जाने के आज्ञा मांगने से प्रारम्भ होता है। और कौशल्या के सुंदर उत्तर से समाप्त होता है –

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेहु मातु सन अति मृदुबानी।
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भांति मोर बड़ काजू।।
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता।
धरम सुनेह उभय मति घेरी। भई गति सांप छुछुंदर केरी।
राखऊँ सुतहि करऊँ अनुरोधू। धरम जाई अरु बन्धु बिरोधू।।
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सब जानी।।

तात जाऊं बलि किन्हेंहूँ नीका। पितु आयसु सब धरमकु टीका।।

इस कथन से स्पष्ट है कि सच्चा प्रेमी सरल होता है वह सबके कल्याण की कामना करता है धर्म करते हुए अपने पराये की भेद वृत्ति जिसमें न हो वही सच्चा प्रेमी है।

उपसंहार :-

रामायण एक ऐसा ग्रन्थ है जो हमें जीवन जीने की कला सिखाता है जो हमें हर परिस्थिति में रहना सिखाता है और जीवन में होने वाली विभिन्न कठिनाईयों से अवगत कराता है। हमें विषम परिस्थिति में भी संयम कैसे बना के रखे यह बताता है रामायण में प्रेम अत्यधिक महत्व दिया गया है। मानव जीवन में प्रेम का क्या मूल्य है। यह बताया है, मानव को आनन्द में रहना और जीवन में गति प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह हमें रामायण के माध्यम से पता चलता है। किन्तु प्रेम की भी एक सीमा है इसके भी कुछ रूप है अगर प्रेम निष्काम हो तो वह हमें प्रसिद्धी दिला सकता है। किन्तु स्वार्थ पूर्ण प्रेम हमें आगे नहीं बढ़ने देगा प्रेम एक सीमा तक ही आवश्यक है जिस तरह से निष्काम भाव से काम करना चाहिए। उसी तरह निष्काम प्रेम भी अगर हम निष्काम प्रेम करेंगे तो वह हमें अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 114-118

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों में प्रेम व करूणा

–डॉ. रिंकी सिंह

असि. प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, सर्वोदय विद्यापीठ पी.जी. कालेज सलोन, रायबरेली (उ.प्र.)

प्रेम दर्शन कोरा दर्शन नहीं है, जो तर्को के आधार पर केवल वैचारिक भूमि पर पलता है। यह दर्शन, जीवन का दर्शन है जो व्यावहारिक भूमि पर जीने के लिए प्रेरित करता है जिसे अपने नवगीतों के माध्यम से देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी ने सहज रूप में अभिव्यक्ति दी है। निश्चित ही आचार्यत्व और संवेदनशीलता का सर्जनात्मक सामंजस्य रखने वाले 'इन्द्र' जी के नवगीतों में प्रेम व करुणा का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। इन्द्र जी पराजित होना नहीं जानते और पराजय का श्रेय इन विसंगतियों और दुरभि सन्धियों को देते हैं, जो उनके भावुक और सहज सरल मन को वंचनाओं से घेरती है –

"मै भी युधिष्ठिर का सगा कौन्तेय था,
पर युद्ध में उनको मिला जो श्रेय था।
था कवच कुण्डल का दिया,
मैं युद्ध में हारा न था।"

ये वे दुरभि सन्धियाँ है जो ह्रदयहीन और निर्मम समाज में सदा से चली आयी हैं और जिन्होंने पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से स्नेह निर्झर बह गया है/रेत ज्यो तन रह गया है तथा उसी निर्मम समाज ने देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी से लिखवाया –

नाव सा औंधा पड़ा है पुल
कभी शायद यहाँ कोई नदी बहती थी।

'इन्द्र' जी अपने संग्रह 'गंध मादन के अहेरी' में 'यह अपरिचय और यह चुप्पी' शीर्षक कविता में प्रेम और करुणा को जिस रस से पाठक एवं श्रोता को अभिसिप्त करते हैं वह निःसंदेह अनुपमेय एवं नव्य आयाम से परिपूर्ण है –

"कौन है/जिसने तुम्हारे चेहरे की मुस्कराहट/
नोच डाली है/सुनो तुमको इन दिनों
यह क्या हुआ है/क्या तुम्हें भी। लग गयी/
निर्मम समय की बद्‌दुआ है/
खुशबुओं, फूलों भरा/आँचल तुम्हारा।
दीखता क्यों आज खाली है/यह परिचय
और यह चुप्पी/कहाँ से आ गयी है।
यह दरो–दीवार पर/नीली उदासी।
चील–सी मंडरा रही है।"[1]

मानवीय संवेदना और वेदना का विशिष्टि संगम 'इन्द्र' जी के गीतों में एक ऐसी करुणा ऐसी उदासी और दर्द भरी सिकन को उभारने में सफल हुआ है कि "दर्द को दे दिल में जगह न सिख इल्म से शायरी नही आती" वाली उक्ति मन को तरल कर उठती है 'इन्द्र' जी के गीतों का भाव इसी मानवीय करुणा के सूत्रों से बुना हुआ प्रतीत होता है उदाहरणार्थ–यह पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

"छटपटाती रातभर रहती
कहीं पर
दर्द से करवट बदलती
एक घायल मूक बेचैनी
धुंधलकों की। कांपती दीवार झीलों में
चुप्पियों की स्तब्ध खूंटी पर टंगी रहती
हवा तलवार–सी पैनी।"

"हम नदी को छोड़कर/मरु में चले आये/नाव के टूटे हुए
मस्तूल हैं/जेब में कुछ रेत होते फूल है/हंस पंखी/प्यास वाले/छन्द पथराये।"[2]

'जिन्दगी अश्रु से है बड़ी' शीर्षक कविता के माध्यम से प्रेम और करुणा का आस्वाद 'इन्द्र' जी इस प्रकार कराते हैं –

"अश्रु से ही/न तू गीत लिख
बूँद भर तो पसीना बहा/
जिन्दगी/अश्रु से है बड़ी/
थाह उसकी/नहीं पा सकी/
जादुई/आँसुओं की छड़ी/
गीत को प्राण का/कण्ठ दे
है बहुत–कुछ अभी अनकहा।"[3]

प्रेम और करुणा के सामंजस्य का चित्र इन पंक्तियों में विलक्षणता के साथ 'इन्द्र' जी ने प्रस्तुत किया है –

"हाथ बदलेंगे, नहीं सांटे/चोट सहकर भी/
न जो रोती/सिर्फ सबका/बोझ ही ढोती/
पीठ वह/फिर भी झुकेगी ही/
गाल खाते रहेंगे चाटे/नया मौसम/
घिरा पहले भी/स्वागतम्
तब कहा तूने भी/फूल तू/
जब–2 गया चुनने/उंगलियों में चुभ गये कांटे।"[4]

वेश्या बनी स्त्रियों की करुण एवं दारुण दशा के 'इन्द्र' जी चश्मदीद गवाह प्रतीत होते हैं –

"ला कोठे पर बेच दी औने–पौने मोल
काट विगत इतिहास से दिया नया भूगोल।"[5]

नारी की पीड़ा एवं करुणा 'इन्द्र' जी की पीड़ा बन गयी है तभी वह प्रेम एवं करुणा के इतने सशक्त चित्र देने में समर्थ हुए –

"मांग सिन्दूरी, कब हुई हल्दी रची न हाथ
बेटी ने जोड़ी नियति विधवाओं के साथ"।
बोधिसत्व तुम हो गधे अब सम्यक सम्बुद्ध
गोपा राहुल के लिए करती निज से युद्ध।"[6]

समय सन्दर्भ एक में 'इन्द्र' जी समय कितना क्रूर एवं दुरूह है उसे पूरी करुणा एवं निष्ठा के साथ व्यक्त करते हैं –

"यह समय कितना कड़ा है/सामने जिससे पड़ा है
स्तब्ध सन्नाटा/हवा में/खंख पीपल खड़खड़ाता
सुन रहा हूँ/नींद में कोई/निरन्तर बड़बड़ाता
दृश्य, उफ कितना भयावह/कील–सा मन में गड़ा है
बाल बिखरे/रक्त रञ्जित/पीठ कुबड़ी, छिले कांधे
पेट पिचका/नील लोहित/सॉकलों ने हाथ बाँधे
रेत पर जल ऑकता यह/देश संसद से बड़ा है।"[7]

'आग से गुजरना है' शीर्षक कविता में 'इन्द्र' जी प्रेम और करुणा का आस्वाद तिल–2 कराते हुए कहते हैं –

"तिल–2 कर जीना है/घुट–2 कर मरना है/
अपना जिसको कहते, यह तो वह नगर नहीं/
दो पग जिस पर चलते, मिली वही डगर नहीं
भीड़ों से घिरे रहे या रहे जुलूसों में
अन्ध चाटुकारों में, गूँगे जासूसों में
विष–ही–विष पीना है/कुए में उतरना है/
न्यायालय बन्द पड़े, न्यायी सब चले गये
प्रतिवादी के हाथों वादी ही छले गये
शबनम की बूँदों से ढके हुए अंगारे
प्यासे मृग रन–बन में फिरते मारे–मारे
जेठ का महीना है/सूखा हर झरना है।"[8]

'इन्द्र' जी आज भी गाँव को और ग्रामीण परिवेश को अपने अन्दर जीवित पाते हैं –

"तपती–2 रेत पर चलना नंगे पाँव,
जीवित है मुझमें कही अब तक मेरा गाँव,
घर घूरे छप्पर जले लगा आंच का दांव,
घुटनों–2 बाढ़ में डूब रहा अब गाँव।"[9]

कम शब्दों में पूरे युग की करुणा का चित्र 'इन्द्र' जी की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है –

ऐसे वैसे हो गये कैसे–2 लोग,
कैसे–2 हो गये ऐसे वैसे लोग।
अपने–2 कूप है अपनी–2 प्यास,
उस बस्ती का हो गया बँटवारा गत मास।

खुली आँख से जाग कर देखे हमने ख्वाब।
अब जिसके नीचे खड़े टूटी वह मेहराब।।
मत जा जोगी बावरे उस अरण्य के मध्य।
भीलों के उस देश में कोई नहीं अवध्य।।

'इन्द्र' जी कहते है कि कैसी विचित्र दशा है कि आज आदमी न मर सकता है न जी सकता है –

"मरना कब सम्भव हुआ जीना हुआ मुहाल।"[10]

'हम शहर में लापता है' संग्रह की "क्या हुए है मन हमारे" शीर्षक कविता में 'इन्द्र' जी कहते है –

"हम वही हैं, तुम वही हो,
और दुनिया भी वही है,
किन्तु क्या–से–क्या हुए है,
मन हमारे,
था किया/जिन पर भरोसा,
सिर्फ उनसे मिले धोखे,
जो कभी/खुलते इधर थे,
बन्द हैं वे सब झरोखे,
है खड़ी दीवार ऊँची,
और छोटे से हो गये,
आँगन हमारे।"[11]

'इन्द्र' जी के दोहो में भी प्रेम और करुणा का सामंजस्य दृष्टव्य है –

भला किया जो खींच दी, वहाँ एक दीवार।
रोज़ महाभारत न तो करते दो परिवार।।
गहमागहमी हर तरफ़, भीड़, शोर, अवसाद।
कौन किधर मुड़ जायेगा, इस उत्सव के बाद।।
दो गज धरती के लिए, करते तुम फरियाद।
लोगों ने कम उम्र में, उठा लिए प्रसाद।"[12]
धूप दोपहर जेठ की, लगे हुए हिमपात।
रही जलाती चाँदनी, हमको सारी रात।।
अब की बार बसन्त में ऐसी रही बयार।
हर पात सारे झरे, सूखे उरझे डार।"[13]

'इन्द्र' जी के नवगीतों का प्रेम–सौन्दर्य निरूपण न तो रीतिकालीन रीतिचित्रों का एल्बम है, न इसमें छायावाद की तरह अमूर्त कल्पनाओं की भरमार है और न ही आधुनिक फ्रायडियन लेखन की कुण्ठाग्रस्त तमस छायाएं इस पर पड़ी है। उसके लिए वह कभी पगडण्डी से जाने वाली कृषक वधू, तो कभी साँसों की राधा तो कभी धड़कन के मनमोहन तो कभी –

आधा गीत गोरा, आधा है साँवला।
आधा है संवेदन, आधा भर के कला।।

पंख लगाकर उड़ता।।[14]

की काल्पनिक रूपात्मकता में आभार पाती है। नारी के उल्लिसित सौन्दर्य के प्रति परिवेश के दबाव की प्रतिक्रिया भी दिखती है जिससे नारी के प्रति नवगीतकार 'इन्द्र' जी की भी मोहग्रस्तता बढ़ जाती है। यथा –

जिस दिन से देखा तुम्हें, मुझे लगे समरूप।
बिखरी–बिखरी चाँदनी, बिखरी–बिखरी धूप।।[15]

घर–परिवार से जुड़े नारी सन्दर्भों की मिठास, संवेग और सामीप्य बोध को 'इन्द्र' जी ने अपना विषय बनाया है। उसमें सम्बन्धों की जितनी मिठास है, उतनी ही उसकी पीड़ा को सहज आत्मीय परिवेश में बर्दाश्त कर सकने की कूबत भी। निहायत अनौपचारिक पारिवारिक सन्दर्भ के उनके नवगीत बतियाते हुए घर–दुआर के हाल–चाल, बताते हुए लगते हैं। यहाँ नवगीतकार 'इन्द्र' जी ने अपने प्रेम एवं करुणा की चेतना को नया आयाम देते हैं।

निःसंदेह 'इन्द्र' जी जिन्दगी के सुख–दुःख, राग–विराग, आशा–निराशा, उत्थान–पतन, प्रेम–करुणा, व्यष्टि–समष्टि के विभिन्न रूपों को अपने साहित्य में रूपायित करते हैं, उनके साहित्य की एक–एक पंक्ति जीवन की बहुमुखी भंगिमाओं की साक्षी है। उन्होने जीवन के हर कोने में झाँकने की सफल कोशिश की है खासतौर से मध्यवर्गीय जीवन की हर कोण से परख की है। जीवन से जुड़े समाज, राजनीति, धर्म, आदर्श, यथार्थ सभी पक्षों के 'इन्द्र' जी विशिष्ट दृष्टा रहे हैं। आधुनिक युग की विसंगतियों के 'इन्द्र' जी ने यथार्थ चित्र प्रस्तुत करके अपनी बेबाक चिन्तन शैली और अभूतपूर्व पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय देते हुए प्रेम और करुणा का जो आस्वाद अपने पाठक और स्रोता को कराया है वह अनुपमेय है, संवेदनशील हृदय की करुणाशील मनोहारिकता 'इन्द्र' जी के साहित्य की विशिष्ट पहचान है।

'इन्द्र' जी ने अपने नवगीतों में मध्यवर्गीय प्रेम और करुणा का आस्वाद अभिव्यक्ति कौशल एवं भाव–प्रवणता के नव उपकरणों से लैस करके कराया है। आपके प्रेम एवं करुणा के नवगीतों में एक ताज़गी है जो अन्तर्मन को आराम पहुँचाती है। मानव प्रेम एवं करुणा की अनुभूति के सापेक्ष मानव की परिस्थितिगत परिवर्तित चेतना का निष्पादन ही 'इन्द्र' जी का लक्ष्य प्रतीत होता है।

संदर्भ सूची :–

1. गन्धमादन के अहेरी : देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 18
2. सार्थक 2001, पृ. सं. 68
3. गन्धमादन के अहेरी : देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 106
4. अनन्तिमा – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 25
5. सार्थक 2001, पृ. सं. 124
6. सार्थक 2001, पृ. सं. 124
7. अनन्तिमा – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 27
8. पहनी है चूड़िया नदी ने – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 25
9. आँखों खिल पलाश – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', भूमिका
10. आँखों खिले पलाश – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', भूमिका
11. हम शहर में लापता हैं – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 34
12. सेन्दुर सा दिन धूल उठा – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 59
13. सेन्दुर सा दिन धूल उठा – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 59
14. दिन पाटिलपुत्र हुए – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 59
15. आँखों खिलो पलाश – देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', पृ. सं. 13

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 119-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामायण में प्रेम के विविध सरूप

–रितु चोपड़ा

169 –दसमेश नगर, नयी पुलिस लाईन के पीछे, पटियाला

भारतीय संस्कृति अपने विशेष गुणों के कारण संसार की संस्कृतियों में बहुत ही महत्वपूर्ण जगह रखती है। भारतीय संस्कृति में धर्म का विशेष महत्व है। धर्म मानवीय सद्‌गुणों को विकसित करके एक पूर्ण मानव बनाने में सहायक होता है। भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन का आपस में तालमेल स्थापित करता है। धर्म में कुछ मानवीय विचार, आदर्श, रीति रिवाज़ और संस्थायें शामिल हैं।

धर्म शब्द का असली अर्थ है किसी को आसरा देना, सहारा देना। यह धर्म वह है जो किसी चीज़ (असूल) को थामता (पकड़ता), बना कर रखता या कायम रखता है। महाभारत अनुसार संसार धर्म के सहारे कायम है।

भारत देश ऋषियों–मुनियों की धरती रहा है। ऋषि–मुनि परमात्मा की भक्ति में लीन रहते थे। भक्ति प्रेम का ही एक रूप है। भारतीय लोग प्रेम–प्यार करने वाले हैं और इस का कारण है भारतीय लोगों का धार्मिक होना और उन का धर्म। हरेक धर्म प्यार, शान्ति और सहनशीलता का संदेश देता है।

रामायण पुराने ऋषि–मुनियों के समय के भारतीय समाज और संस्कृति का वह अनमोल ख़ज़ाना और धरोहर है जिस की रचना महर्षि वाल्मीकि ने की। यह काव्य मई रचना छंदों में बद्ध है। इस में कुल 7 अध्याय और 24000 श्लोक 500 सर्ग हैं। रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि के मुख से एक श्लोक के रूप में हुई जो कि क्रोंच जोड़े में से एक निरअपराध नर क्रौंच की शिकारी द्वारा बाण मार कर की गई हत्या के नतीजे के तौर पर शोक और करुणा के रूप में उन के मुँह से निकला था, यद्यपि इस की शुरुआत करुणा के रूप में हुई थी परन्तु यदि ध्यान के साथ देखा जाये तो इस में स्थान–स्थान पर प्रेम दिखाई देता है।

प्रेम मानवीय जीवन का मुख्य आधार है जिसके आसपास सब की ज़िंदगी घूमती है। प्रेम ढाई अक्षरों का छोटा सा शब्द है परन्तु यह अपने आप में बहुत कुछ समाहित किए हुए है। प्रेम एक भावना या एहसास है जिस को लिखा या बयान नहीं किया जा सकता सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। मानवीय जीवन में प्रेम की भावना का विशेष महत्व है। प्रेम के बिना व्यक्ति ज़िंदगी में कभी भी खुश नहीं रह सकता। प्रेम के बिना मानवीय ज़िंदगी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

गोस्वामी अनुसार, प्रेम एक ऐसा खूबसूरत भाव है जो दिल को दयालु (कोमल) बनाता है और ममता के साथ भरपूर होता है। प्रेम ऐसी शक्ति है जो पराए को भी अपना बना लेती है। प्रेम में जीत–हार नहीं होती क्योंकि प्रेम में व्यक्ति जीत कर भी हार जाता है और हार कर भी जीत जाता है। प्रेम के साथ ही सारा संसार चल रहा है।

महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में लौकिक और अलौकिक दोनों तरह के प्रेम की उदाहरण मिल जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के माध्यम के द्वारा भाइयों के आपसी प्रेम भरपूर संबंधों का ज़िक्र कई स्थानों पर किया है। राम को अपने सभी भाई अपनी जान से भी ज्यादा प्यारे थे। महर्षि वाल्मीकि के अनुसार लक्ष्मण

राम की रक्षा करते थे और राम लक्ष्मण की। उन दोनों का उत्तम भाई–प्रेम दोनों अश्वनी कुमारों की तरह तीनों लोगों में प्रसिद्ध था।

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः।

अश्विनोरिव सौयभ्रत्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम, (वाल्मीकि रामायण 2/8/31)

इसी तरह भरत और शत्रुघ्न एक दूसरे को जान से प्यारे थे।

"रतस्एापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणवरजो हि सः।

प्राणैः प्रिएतरो नित्यं तस्य चासीत तथा प्रियः, (वाल्मीकि रामायण 1/18/32'33)

रामायण में भाइयों के गहरे प्यार की उदाहरण उस समय देखने को मिलता है जब लक्ष्मण के बेहोश हो जाने पर राम को सभी तरफ़ अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता है और वह विलाप करते हुए कहते हैं कि औरत और भाई तो कहीं भी मिल सकते हैं परन्तु तुम्हारे जैसा सहोदर भाई कहीं भी नहीं मिल सकता।

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बांधवाः।

त तु देशं न पश्यामि यत्र त्राता सहोदर। (वाल्मीकि रामायण 6.101.15)

लक्ष्मण का अपने बड़े भाई श्री राम के प्रति गहरे और अथाह प्रेम का इस बात से ही पता लगता है कि बनवास श्री राम को मिलता है परन्तु लक्ष्मण बिना किसी के बोले अपने बड़े भाई के साथ जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। श्री राम के प्रति लक्ष्मण का प्रेम भक्ति, सेवा वाला है जो जंगल में भी जाकर हर वक्त श्री राम–सीता की सेवा में लगा रहता है।

भरत का अपने बड़े भाई श्री राम के प्रति प्रेम तो जग ज़ाहिर है। वह बड़े भाई को भाई के साथ–साथ पिता के जैसे और भगवान की तरह समझते हुए उन की भक्ति, पूजा करते थे इसी कारण वह अपनी माँ कैकेयी के दो वर मांगने पर (भरत के लिए सिंहासन और श्रीराम के लिए 14 सालों के बनवास) सिंहासन ग्रहण नहीं करते बल्कि श्री राम के पास जंगल में जाकर उन को सिंहासन स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करते हैं परन्तु उन के इन्कार करने पर श्रीराम की चरण–पादुकाएं ले जाकर उन को राज सिंहासन पर रख कर अयोध्या से बाहर नन्दीग्राम में तपस्वियों वाला जीवन बिताते हुए बड़े भाई का इन्तज़ार करना भाई–प्रेम की एक अनोखी उदाहरण है जो कि हमें अपने इर्द–गिर्द देखने को नहीं मिलती। जैसे लक्ष्मण श्री राम के प्रति समर्पित होते हुए उन की सेवा में उपस्थित थे उसी तरह ही शत्रुघ्न अपने बड़े भाई भरत के प्रति भक्ति भाव के साथ समर्पित थे।

इस तरह महर्षि वाल्मीकि ने भाइयों के आदर्श प्रेम का चित्रण किया है जिस से हमारे आज के मानवीय समाज को एक बढ़िया सीख मिल सकती है।

महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में अलौकिक प्रेम की उदाहरण भीलनी शबरी के श्री राम के प्रति प्रेम और भक्ति के रूप में नज़र आती है। वह श्री राम का इंतज़ार करती है और उन के आने पर उन के सामने ही अपने प्राण त्याग देती है।

अश्विनोरिव सौएभ्रत्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम। (वाल्मीकि रामायण 2/8/31)

इस के इलावा शबरी का अपने गुरू मातंग ऋषि के प्रति विश्वास भी प्रेम और आदर के रूप में दिखाई देता है जब वह अपने प्राण त्यागने के बाद अपने गुरुओं के पास ही जाना चाहती है।

श्री राम का अपने पिता महाराज दशरथ के प्रति प्रेम का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह 14 सालों के बनवास के लिए बिना किसी तर्क या सवाल–जवाब के बहुत नम्रता के साथ जाने के लिए तैयार हो गए कि उन के पिता माता कैकेयी के आगे झूठे न पड़ जाएँ।

महाराज दशरथ का अपने पुत्र राम के प्रति प्रेम इस हद तक गहरा था कि वह उसे एक पल के लिए भी आँख से दूर नहीं होने देना चाहते थे परन्तु कैकेयी की तरफ़ से मांगे वर के कारण राम को मजबूरी में बनवास भेजते समय उस के प्रति असीम प्रेम ही उनके प्राण त्याग का कारण बन जाता है। माता कौशल्या का अपने पुत्र राम के प्रति प्रेम इतना गहरा था कि बनवास जाते राम के साथ–साथ पैदल ही दौड़ते रोते हुए जाने की ज़िद करती है।

अयोध्या की प्रजा अर्थात् लोगों का श्री राम के प्रति प्रेम इस हद तक गहरा था कि वह सभी भी अपना घर बार छोड़ कर श्री राम के साथ ही बनवास जाने के लिए चल पड़ते हैं। रामायण में पति राम के प्रति पत्नी सीता का प्रेम उस समय देखने को मिलता है जब राम अपनी माता कैकेयी के वचनों को पूरा करने के लिए जंगलों को जाने के लिए तैयार हो रहे होते हैं तो सीता को राम के बिना महलों में अकेले रहना मुश्किल लग रहा था इसलिए सीता राम को बनवास में अपने साथ ले कर जाने की प्रार्थना करती है कि मैं आप से विछुड़ कर निश्चित रूप से मौत को प्राप्त हो जाऊँगी।

पश्चादपिहि दुखेन मम नैवासित जीवितम।
उज्झितापास्तवया नाथ सदैव मरणं वरम्।।

रामायण के इस दोहे में पतिपत्नी के आपसी प्रेम की तस्वीर तो हमारे सामने नज़र आती ही है सीता का अपने पति राम के प्रति अटूट प्रेम भी नज़र आता है। राम सीता की भावना को समझते हुए जंगलों (बनवास) की ओर जाते हुए सीता को अपने साथ ले कर जाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

श्री राम के प्रति उनके दोस्त निषादराज गुह का प्रेम सेवक और भक्त के रूप में नज़र आता है। इसी तरह हनुमान का श्री राम के प्रति प्रेम भक्त और भगवान वाला है। सुग्रीव का श्री राम के प्रति प्रेम भक्त और दोस्त वाला है जो उन के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार था जिस का पता श्री राम चंद्र की प्यारी पत्नी सीता को रावण की कैद से छुडाने के लिए वानर और रीछों की सेना के साथ समुद्र पर पुल बना कर लंका पर चढ़ाई के समय लगता है।

वाल्मीकि रामायण में समाज के चारों वर्णों के आपस में मधुर प्रेम सम्बन्ध थे। चारों वर्णों के लोगों का आपस में और भरत और राम के प्रति प्रेम की भावना का उस समय पर पता (इस उदाहरण से) चलता है जब दंडकारण्य में भरत राम को अयोध्या वापस ले जाने के लिये अपनी, माताओ समेत जाते हैं तो अयोध्या में रहने वाले चारों वर्णों के लोग भी उन के साथ जाने के लिए अपने बढ़िया नसल के घोड़े, ऊँट, हाथी, गधे और रथों को जोतने में लग जाते हैं :–

ततः समुतथाय कुळे कुळे ते, राजन्यवैश्या वृषलाश्चविप्राः.
अणुपूजन्नुष्ट्रस्थान् खरांश्च, नागान् हयांश्चैव कुलप्रसूतान,

राम के प्रति लोगों के प्रेम का ही यह चिंतन है कि यदि हम राज पर सम्मानित हो कर पिता के घर से राम को निकलता हुआ देख लें तो फिर सभी भौतिक और अति उत्तम मन्नतों से हमें क्या लेना अर्थात् हमें सभी सुख प्राप्त हो जाएँगे।

अलमद्य हि भुकतेन परमार्थेरल च नः।
यदि पश्याम निर्यान्तं राम राज्ये प्रतिष्ठितम।।

राम की लोकप्रियता का आलम यह था कि लोगों के लिए राम के राजतिलक से अधिक कोई और खुशी वाली बात हो ही नहीं सकती थी। राम लोगों के प्राण थे। जो एक बार उन की तरफ देखता, वह राम के उन की नज़रों से दूर हो जाने पर भी अपने मन और नज़रों को नहीं हटाता था।

अयोध्या निवासियों में दशरथ के फ़ैसले का (श्री राम चंद्र को राज तिलक करने से सम्बन्धित) सभी ने तह दिल से स्वागत किया। लोग आपस में बातें करने लगे कि दशरथ और उन के पिता–दादा ने उन का भरण–पोषण किया, राम के राजा बनने पर उससे कहीं ज्यादा सुख प्राप्त करेंगे :–

यथाराम पोषिता पित्रा यथा सर्वेःपितामहैः।
ततः सुखतरं सर्वे रामे वत्सयाम राजनि।।

कैकेयी का राम के प्रति प्रेम उस समय सामने आता है जब कैकेयी भी राम और भरत में कोई भेद नहीं करती थी। मंथरा ने जब कैकेयी को राम के तिलक की सूचना दी तो वह बहुत खुश हो कर उसको हार देने लगी क्योंकि कैकेयी की सेवा राम अपनी माता कौशल्या से भी ज्यादा करते थे।

रामे व भरते वाहं विशेषं नोपलक्ष्त्रे।
तस्मातुटास्मि यद् राजा रामं राज्यैभ्षिेक्ष्यति।।

राम का अपनी, माताओं के प्रति प्रेम भाव का इसी बात से पता लग जाता है जब वह (राम) बनवास के मौके पर सीता को वहाँ घर रह कर अपनी, सभी माताओं की सेवा करने का आदेश देते हैं :–

माता च मम कौसल्या संतापकर्शिता।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वतः सम्मानमर्हति।।
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः।
स्नेहप्रणयसम्भागेः समाहि मम मातरः।।

सीता का राम के प्रति प्रेम उस समय पर भी देखने को मिलता है जब राम भरत के राजतिलक के बारे में और खुद अपने बनवास जाने के सम्बन्ध में सीता को बताते हैं और सीता को वहाँ राजमहल में रहने की बात (वहाँ रह कर माता–पिता की सेवा करने के लिए) कहते हैं तो सीता कर्मफल वाद और पत्नी के विशेष सम्बन्ध की दिल को छू लेने वाली व्याख्या पेश करती हैरू पिता, माता, भाई, पुत्र, बहु, यह सब अपने पुण्य आदि कर्म का फल भोगते हैं और अपनी–अपनी किस्मत (शुभ–अशुभ) के अनुसार आचरण करते हैं। सिर्फ़ पत्नी ही अपनी किस्मत के अनुसार चलती है सो आपके लिए जो बनवास का आदेश प्राप्त हुआ है, मुझे भी धर्म अनुसार जंगलों में जाने की आज्ञा प्राप्त हो गई है। पत्नी के लिए इस लोग में और परलोक में पति ही सहारा है, माता, पिता, पुत्र, सहेली आदि कोई नहीं। इस लिए वह आगे–आगे घास–फूस–काँटे को साफ़ करती हुई जंगल जाएगी क्योंकि सभी हालातों में उसे पति की छत्र–छाया के नीचे ही रहना है। राम ने बनवास दुखदायी है, कह कर सीता को जंगल जाने से रोकने की कोशिश की परन्तु सीता अटल रही।

कि पुनर्दश वर्षाणि त्रीणि चैंक च दुःखिताः।

फिर सीता ने साफ–साफ शब्दों में अपने स्वर्ग और नरक की व्याख्या की कि राम के साथ वह जहाँ रहे, वहाँ ही उसका स्वर्ग है और राम के बिना वह जहाँ रहे, वही उसका नरक है। राम ने कहा, 'तुम्हारे दुःख के कारण तो मैं स्वर्ग का सुख भी लेना नहीं चाहता और न ही मुझे स्वयंभू (ब्रह्मा) की तरह कहीं किसी से ज़रा भी डर है। तुम्हारी सुरक्षा के समर्थ होने पर भी तुम्हारा जंगल में रहना मुझे अच्छा नहीं लगता परन्तु जब तुम मेरे साथ जंगल में जाने के लिए तैयार हो ही गई हो तो तुम्हें उसी तरह ही नहीं छोड़ सकता जैसे आत्म ज्ञानी सहज आनंद को नहीं छोड़ते।

श्री राम का सीता के प्रति प्रेम वियोग में सीता हरण के बाद ज्यादा उभर कर सामने आता है जब उन को सीता की अलग–अलग स्थानों पर इकठ्ठा बिताये समय और वहीं पर की हुई बातें याद आतीं हैं।

वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने प्रकृति का बहुत खूबसूरती के साथ चित्रण किया है जिस से उन के प्रकृति प्रेमी होने का पता लगता है कहीं महर्षि वाल्मीकि ने खुद प्रकृति की प्रशंसा की है कहीं पर उन्होंने पात्रों के मुख से प्रशंसा करवाई है जैसे पम्पा सरोवर की खूबसूरती का वर्णन श्री राम के द्वारा करवा कर पाठकों को भी उस खूबसूरती का साक्षात एहसास इस तरह करवा दिया जैसे कि वह सामने कोई फ़िल्म देख रहे हों। पम्पा सरोवर के इर्द–गिर्द विभिन्न प्रकार

के फलों और फूलों से लदे वृक्ष बहुत ही मनोहर दृश्य पेश कर रहे थे जिन्हे ये रहकर श्री राम का मन सीता और लक्ष्मण के साथ वहाँ ही बस जाने का बन जाता है और यह बात वह लक्ष्मण के साथ भी सांझा करते हैं कि अगर सीता मिल जाये तो उसके और तुम्हारे साथ मैं हमेशा–हमेशा के लिए यहाँ पर ही बस जाऊँ।

रामायण में वर्णित विभिन्न तरह के प्रेम ज़िंदगी को सही तरीके के साथ जीने की प्रेरणा का संदेश देते हैं। रामायण महाकाव्य आज भी ज़िंदगी के हर क्षेत्र में लोगों को उन के प्रश्नों के उत्तर देने के साथ–साथ प्रेम का संदेश देता हुआ एक प्रेरणा स्रोत और रोशनी के एक प्रकाश स्तंभ की भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ :-

1. विश्व धर्म संग्रह : डा. एल.एम.जोशी, डा. जोध सिंह
2. संसार के प्राथमिक धर्म : डा. हरबंस सिंह, डा. एल.एम.जोशी
3. हरी भक्ति रसामृत सिंधु : रूप गोस्वामी
4. वाल्मीकि रामायण : महर्षि वाल्मीकि
5. वाल्मीकि रामायण (2.30.20 पन्ना नं 333) महर्षि वाल्मीकि का समाज शास्त्र ज्ञान
6. वाल्मीकि रामायण (2.82.32) महर्षि वाल्मीकि का समाज शास्त्र ज्ञान
7. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना 2.17.10
8. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना (2.17.9)
9. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना (2.7.35)
10. वाल्मीकि रामायण (2.26.31–32)
11. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना (2.32.17)
12. वाल्मीकि रामायण में मूल्य चेतना (2.30.27–29)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 124-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

खोरठा नाटकों में प्रेम के स्वरूप

–संजय रविदास

शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

खोरठा नाटक :–

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ नाटक का लक्षण करते हुए लिखते है– 'नाटक' वह रचना है, जिसकी कथावस्तु रामायणादि एवं इतिहास में प्रसिद्ध हो, जिसमें विकास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन हो, जहॉ सुख दुख की उत्पति दिखाई जा सके और उनके रसों का समावेश हो सके। जिसमें 5–10 तक अंक हो, जिसका नायक पुराणादि में प्रसिद्ध वंषोत्पन्न, धीरोदात, प्रतापी, एवं गुणवान पुरूष हो। जहॉ श्रृंगार अथवा वीर–रस प्रधान हो तथा अन्य रस अंगभूत हो''। साहित्य की अनेकानेक विद्याओं में नाटक एक लोकप्रिय साहित्य विद्या है इसकी परम्परा भी बहुत प्राचीन है। मनुष्य के जीवन में नित्यदिन कोई न कोई नाटकीय घटना मिलती है या होती है और मनुष्य अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की पुनरावृति नाटक के द्वारा करता है और उससे एक सृजन सुख प्राप्त होता है।

पाणिनी ने नाट्य/नाटक शब्द की उत्पति 'नट' धातु से माना है। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाट्य दर्पण में इसका उद्भव 'नट' धातु से माना है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र अपने विषय का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है कहा गया है कि भरतमुनि रचित प्रथम नाटक का अभिनय, जिसका कथानक देवासुर संग्राम था, देवों की विजय के बाद 'इन्द्र की सभा में हुआ था। आर्चाय भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र की उत्पति ब्रह्मा से मानी है क्योंकि शंकर ने ब्रह्मा को तथा ब्राह्मा ने अन्य ऋषियों को काव्य शास्त्र का उपदेश दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक का लक्षण देते हुए लिखे है– नाटक शब्द का अर्थ है– नट लोगों की क्रिया। नाटक की व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा है कि काव्य के सर्वगुसण संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं इसका नायक कोई महाराजा जैसे – दुष्यंत, ईश्वरांश जैसे श्री राम या प्रत्यक्ष परमेश्वर (श्री कृष्ण) होना चाहिए। वीर एवं श्रृंगार रस सम्पन्न होना चाहिए तथा पॉच–दस अंको के भीतर अंकों की संख्या होनी चाहिए। सामान्य अर्थ में नाटक साहित्य की वह विद्या है, जिसकी सफलता का परीक्षण रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरूची और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है। इस प्रकार हम नाटक के विस्तृत अर्थ में किसी भी अनुकरणात्मक कार्य को नाटक कह सकते है।

खोरठा भाषा में 'नाटक' शब्द का समानार्थी या पर्यावाची शब्द 'छेब' या छइब' है। इन दोनों शब्दों का खोरठा भाषा–भाषी अपने दैनिक जीवन में वैसे क्षणों या प्रकरण में करते है, जब कोई व्यक्ति सामान्य व्यवहार विपरीत अनजाने या अनायास नहीं वरन् जानबुझकर और सायास ऐसा व्यवहार या ऐसा व्यवहार या गतिविधि करता है तब ये शब्द स्वतः उच्चारित होते है– की छेब करे लागल हे, अर्थात क्या नाटक कर रहे हो, या देख ना ई छइब/छेब करे लागल हे, चल उठ काम कर अर्थात क्या नाटक कर रहे हो, चलो उठो काम करो। या देख न ई छेइब करे लागल हो अर्थात देखो न यह नाटक कर रहा है।

खोरठा नाटकों में प्रेम के स्वरूप :-

काव्य की उस भूमि में जहाँ आनंद अपनी पूर्णावस्था को प्राप्त दिखाई पड़ता है, प्रवर्तक भाव 'प्रेम' रहता है। इसी भाव के विविधा प्रकार के आलम्बनों और उद्दीपनों का चित्रण इस भूमि के विभाव पक्ष में पाया जाता है। दीप्ति, माधुर्य और कोमलता के नाना रूप यहाँ मिलते हैं। बाहर नयनाभिराम रूपरेखा, विकसित वर्ण वैचित्र्य, विभूति, प्रभूति, चमक दमक, शीतल स्निग्ध छाया; कलकंठ स्वर स्पंदित, सौरभ समन्वित समीर, स्मित आनन, चपल भू विलास, हास परिहास, संगीत सज्जा, वीण की झंकार इत्यादि हैं तो भीतर सौन्दर्य की मादक अनुभूति, प्रेमोल्लास स्वप्न, स्मृति विस्मृति, व्रीडा क्रीड़ा, दर्शन पिपासा, उत्कंठा, मुगधता इत्यादि।

इस भूमि के मनस या आभ्यन्तर पक्ष की खाली उलझन हमारे पुराने आचार्य सुलझाा गए हैं। यद्यपि प्रेम दशा के भीतर सुखात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार के भाव पाए जाते हैं, पर कान में 'प्रेमानंद' शब्द ही पड़ता है, 'प्रेमापत्र' नहीं। इससे, प्रेम आनंद स्वरूप है, यह लोकधारणा प्रकट होती है, जो साहित्य मीमांसाकों को भी मान्य है। वियोग काल की सारी अश्रुधारा के तल में आनंद की रेखाएँ दिखा पड़ती रहती है। विरह में आनंद नष्ट नहीं हुआ रहता, केवल 'आवृत' रहता है। विरहियों का रोना एक प्रकार हँसना ही है। उनके तीव्र ताप और ज्वाला की जड़ में एक रसमयी शीतलता रही है। जब तक प्रिय इस जगत् में रहता है, तब तक, कहीं दूर चले जाने पर भी, उसका कहीं पता न रहने पर भी, जो दुःख और वेदना होती है, वह प्रेम भाव की ही अनुभूति समझी जाती है और साहित्य में विप्रलम्भ श्रृंगार के ही अंतर्गत मानी जाती है।

सामान्यतः सुख देने वाली या चिरकाल से साथ रहने वाली वस्तुओं के प्रति राग और दुःख देने वाली वस्तुओं के प्रति द्वेष का बीत सबके हृदय क्षेत्र में ढँका रहता है। यही राग जब अंकुरित या व्यक्त होकर किसी व्यक्ति विशेष की ओर पहले पहल उन्मुख होता है, तब 'लुभाना' कहलाता है और जब उस विशेष में जाकर स्थिर हो जाता है, तब 'प्रेम' कहा जाता है। सीधी बात यह है कि वासनात्मक अवस्था से भावात्मक अवस्था में हुआ आया राग ही 'अनुराग' या प्रेम है। किसी के रूप गुण अदि का उत्कर्ष सुनकर जो 'पूर्वराग' होता है, वह भी उत्तेजित 'राग' ही रहता है, प्रेम नहीं। यद्यपि उत्तेजना व्यक्ति विशेष के ही उत्कर्ष का परिचय पाकर होती है, पर पूर्व राग की दशा में प्रेम की अनन्यता और पूर्णता एकनिष्ठता नहीं रहती, वह पीछे प्राप्त होती है। किसी के प्रति पूर्वराग उत्पन्न होने पर यह संभावना रहती है कि अन्य समय उससे अधिक उत्कर्ष वाले किसी दूसरे का परिचय पाकर वह उस पर हो जाए।

किसी के रूप सौंदर्य और शील सौंदर्य का पहले पहल साक्षात्कार या परिचय होते ही सबसे पहली अनुभूति आनंद की होती है। सबसे पहले हृदय विकसित और लुब्धा होता है। सारांश यह कि प्रेम काल जीवन का आनंदर काल ही है। इसी से भक्तगण भक्ति या प्रेम को ही साध्य कहा करते हैं। प्रेम वास्तव में 'रांग' का ही पूर्ण विकसित रूप है। राग और द्वेष दोनों की स्थिति वासना के रूप में प्रत्येक प्राणी में होती है। प्रेम सौन्दर्य के स्वरूप : प्रेम सौन्दर्य के दो स्वरूप प्राप्त हैं – (क) प्रकृति मूलक (ख) कलामूल।

(क) प्रकृति मूलक – विपत्र के अन्तर्गत दीख पड़ने वाले समस्त पदार्थ एवं व्यापार–जनित प्रेम प्रकृति मुलक है।

(ख) कलामूलक प्रेम – मनुष्य की व्यक्तिगत कल्पना एवं भावना जब किसी माध्यम से अभिव्यक्त हो यह प्रेम तत्व का रूप धारण करती है तो वह कलामूलक प्रेम कहलाती है।

प्रेम का अधिष्ठापन :-

इस संबंध में उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रेम का अधिष्ठापन क्या है? यहाँ दो प्रकार की विचारधारायें संलिप्त होती है। साहित्य–जगत में पहली विचारधारा प्रेम को विषयनिष्ठ (आब्जेक्टिव) या वस्तुनिष्ठ मानती है तो दूसरी विचारधारा प्रेम को विषनिष्ट (सब्जेक्टिव) अर्थात् व्यक्तिनिष्ट मानती है।

वस्तुनिष्ट प्रेम :-

वस्तुनिष्ठ प्रेम उसे कहते हैं, जिसमें सुन्दरता की सत्ता वस्तु अथवा प्राणी में ही सुनिश्चित होती है अर्थात् प्रेम प्राणी अथवा वस्तु में ही समाहित होती है। यानि सुन्दर वस्तु हर व्यक्ति को सुन्दर ही लगती है। भारतीय चिंतन में प्रेम मूलतः ब्रह्म की विभक्त ज्योति का ही प्रतिबिन्ब माना गया है। यहां सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ स्वीकारते हुए रूचि ने उनके अन्दर में प्रतिक्षण मानसमान नवलता को ही रमणीयता के रूप में व्यवस्थित किया हैं।

विषयनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य :-

कतिपय विचारों के अनुसार प्रेम वस्तुी में ना होकर दृष्टा के भीतर रहता है। दृष्टा की दृष्टि एवे रूचि के अनुकुल ही कोई वस्तु सुन्दर अथवा असुन्दर लगती है। प्रकृति अपने–आप में ना सुन्दर है और ना असुन्दर, अपितु दृष्टा की दृष्टि शक्ति एवं कल्पना शक्ति के कारण ही वह सुन्दर प्रतीत होता है। कल्पनाविहिन व्यक्ति सकुन्तला या पावर्ती के सौन्दर्य में भी सुन्दरता के दर्शन नहीं कर सकता। सौन्दर्य दर्शन के लिए दुष्यन्त की दृष्टि होनी चाहिए। महाकवि कालीदाय के सौन्दर्य शास्त्र में रूचि का एक विशिष्ट स्थान है। रूचि तत्व सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ नहीं मानकर आत्मनिष्ठ बना देता है। यही कारण है कि विश्व की अनिनन्ध सुन्दरी पार्वती का कायीक सौन्दर्य भुगवान शंकर को नहीं लुभा सका, महाकवि की दृष्टि में स्त्रियों का सौन्दर्य, श्रृंगार तकही सफल होता है। जब वह अपने प्रियतम के नयनों का प्रसाद पा सके।

खोरठा का एक नाटक अजगर नाटक पानुरी जी के संगी विश्वनाथ दसौंधी राज ने यह नाटक लिखे है। जिसका लुआठी सम्पादक गिरिधारी गोस्वामी आकाश खूँटी जी 2004 में छपाये है। इस नाटक में गाँव के जमीनदार, मंदीर के पुजारी और थाना के दरोगा को अजगर कहा गया है। यह नाटक में तीन अंक और 17 दृश्य है। इसमें 13 पात्र है, जिसमें 11 पुरूष और 2 महिला पात्र है। यह नाटक के मुख्य बिन्दु यह है कि एक लाला के बेटा एक महराइन लड़की से प्यार कर के विवाह कर लेता है जिसके चलते लाला अपना बेटा को घर से निकाल देता है और जगह–जमीन (जायदात) से बेदखल कर देता है। और थाना में भी लिखा देता है, थानेदार ने बहुत धारा लगा के फांसी लगवा देता है फाँसी लगाने के बाद फुलवा जिससे लाला के बेटा शादी किया था वह अब आगे, इसके खिलाफ कदम उठाती है, बाद में गाँव के लोग भी इसका साथ देते हैं।

निष्कर्ष :- ऊपरलिखित बातों से स्पष्ट पता चलता है कि खोरठा नाटकों में प्रेम, हमें विश्वनाथ दसौंधी राज के नाटक अजगर में प्रेम सौन्दर्य का रूप दिखाई पड़ता है। इस नाटक में गाँव के जमींदार, मंदिर के पुजारी और थाना के दरोगा को अजगर कहा गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. साढोतरी खोरठा पद्य–साहित्य –डॉ. आनन्द किशोर दॉगी, पृष्ठ संख्या– 13, एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।
2. खोरठा शिष्ट साहित्य एक अध्ययन – डॉ. अर्चना कुमारी, पृष्ठ संख्या –26
3. खोरठा भाषा एवं साहित्य उद्भव एवं विकास –डॉ. वी.एस. ओहदार, पृष्ठ संख्या –23
4. खोरठा भाषा और साहित्य – डॉ. गजाघर महतो प्रभाकर, पृष्ठ संख्या – 2
5. खोरठा भाषा एवं साहित्य उद्भव एवं विकास– डॉ. वी.एन ओहदार, पृष्ठ संख्या– 23
6. नाटय दर्पण – गायकवाड, ओरिएंटल सिरिज, पृष्ठ संख्या–28
7. साहित्य दर्पण – पंडित विश्वनाथ, पृष्ठ संख्या–7:11
8. भरत मुनि – इण्टरनेट विकिपीडिया
9. भारतेंदु नाटक भाष्य– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ संख्या–423
10. खोरठा भाषा और साहित्य उद्भव एवं विकास –डॉ वी. एन ओहदार, पृष्ठ संख्या–110
11. प्रेम का स्वरूप और कालिदास – प्रशांत कुमार, पृष्ठ सं.–204
12. कालिदास की प्रेम भावना, पृष्ठ–186

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 127-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष

–शाहबाज आलम

शोधार्थी (यू0जी0सी0–नेट) विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में प्रेम–मार्गी या प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने सर्वव्यापक परमात्मा को पाने के लिए प्रेम को साधन माना है। इस साखा के प्रायः सभी कवि सूफी साधक थे। इसलिए इसे सूफी साहित्य की संज्ञा दी जाती है। प्रेममार्गी काव्य ने एकेश्वरवाद का प्रचार करते हुए हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। इन प्रेममार्गियों का ईश्वर निर्गुण और निराकार है और उनके अनुसार प्रेम द्वारा उसके सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। इन प्रेममार्गी कवियों ने ईश्वर को अपनी प्रेमिका और स्वयं को उसका प्रेमी माना है। प्रेमाश्रयी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफी कवियों की है। सूफियों ने प्रेम मार्ग का महत्त्व दिखाया।[1] इन्होंने ईश्वर और जीव की एकता पर बल देते हुए उनके बीच प्रेमी और प्रेमिका के सम्बन्ध की प्रतिष्ठा की। ये इश्क मजाजी को इश्क–हकीकी का सोपान मानते हुए एक स्वतन्त्र चिन्तन विधि का विकास करते हैं।[2] अपने प्रियतम अल्लाह के लिए प्रेमी सूफी की तड़पन ही सूफी दर्शन का सार है। सूफी साधक अबू अब्द अल्लाह अल–कुरशी के अनुसार प्रेम वही है, जिसमें परम प्रियतम परमात्मा पर अपना सबकुछ समर्पित कर देना पड़ता है।[3]

वासना, भावना, किम्बा धारणा के प्रतिपादन में सूफी चाहे जितना तर्क करें, पर अन्तःकरण से वे सर्वदा प्रेम के पुजारी और इश्क के कायल है। इश्क के आधार पर ही उनका सारा श्रेय निर्भर है। प्रेम के पुल पर चलकर ही सूफी भवसागर पार करते हैं। यही उनका अमोध अस्त्र या परम साधन है।[4] सूफीवादी दर्शन पर मुल्ला दाउद, दामोदर कवि, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी इत्यादि प्रमुख कवि है। इन कवियों ने प्रेम काव्यों की रचनाएँ की।[5] प्रेमाश्रयी परंपरा का आरंभ 'हंसावली' नामक काव्य है। यह रचना प्रेमाश्रयी परंपरा की सबसे प्राचीन कृति है। इसका रचनाकाल 1370 ई0 है। इस प्रेमाख्यान में राजस्थानी भाषा के प्राचीन रूप का प्रयोग हुआ है। कवि असाइत ने इस कृति का रचना स्रोत विक्रम एवं प्रेम कथा को माना है। 'हंसावली' में बहुत सारी कथाएँ हैं जिनमें से एक प्रमुख कथा का संबंध पाटन की राजकुमारी हंसावली से है। राजकुमारी बहुत ही सुंदरी थी, किंतु उसने पूर्व जन्म के संस्कारवश पाँच पुरूषों की हत्या का व्रत ले रखा था। इसका नायक राजकुमार स्वप्न में राजकुमरी के दर्शन करके मुग्ध हो जाता है, उसका नायक प्रेम में पागल होकर योगीवेश में अपने मंत्री के साथ राजकुमारी की खोज में निकल पड़ता है और भारी संकटों के बीच वह राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है। इस काव्य को हिन्दी प्रेमाख्यान परंपरा का प्रथम प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है।[6]

हिन्दी प्रेमाख्यान की अगली कड़ी में मुल्ला दाऊद ने 1379 ई0 में 'चांदायन' नामक काव्य की रचना की। मौलाना दाऊद ने 1379 में लोरिक और चंदा के अहीर लोक–काव्य को विशिष्ट सूफी कथा का रूप दे दिया था। उन्होंने ईश्वर, सूफी एवं संसार के बीच अभिलाषा के नाटक को दर्शाने के लिए दो स्त्रियों के बीच श्रृंगारात्मक संबंध का विवरणात्मक सूत्र विकसित किया। इस उद्यम में दिल्ली सल्तनत के सैन्य अभिजात–तंत्र एवं उन सूफियों के बीच संतुलन रखने का कार्य निहित था जो हिंदवी में नए प्रेमाख्यान काव्यों की रचना, सूफी कार्यक्रम को व्यक्त करने के लिए भारतीय काव्य

की सामान्य परंपराओं के प्रयोग द्वारा कर रहे थे।[7] हिन्दी प्रेमाख्यान की एक प्रमुख कृति है–'लखमसेन–पद्मावतीकथा'। इसकी रचना दामोदर कवि ने 1459 ई0 में की थी। इसे कवि ने 'वीरकथा' कहा है, किंतु इसमें राजा लक्ष्मणसेन एवं राजकुमारी पद्मावती के प्रथम दर्शनजन्य प्रेम का चित्रण है। इस ग्रंथ की भाषा राजस्थानी है तथा शैली में इतिवृत्तात्मकता अधिक एवं भावनात्मकता कम है।[8] सूफी शाखा की एक महत्वपूर्ण रचना 'मृगावती' है। इसकी रचना कुतुबन ने 1503 ई0 में की थी। कुतुबन चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित थे। इसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। इसमें कवि ने प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है। कहीं कहीं पर सूफियों की शैलियों पर बड़े सुन्दर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास है।[9] प्रेमकथा के द्वारा कुतुबन ने मिलन के मार्ग में त्याग तथा कष्टों का निरूपण कर ईश्वर प्रेम की प्रवृत्ति है। इस प्रेमकथा की भाषा अवधि है।[10] कुतुबन ने अपने प्रेमाख्यान को जौनपुर के क्षेत्रीय सल्तनत का शासक हुसैनशाह शर्की (1458–1505 ई0) को समर्पित किया था। जिस परिवेश में कवि रह रहा था वह हुसैनशाह शर्की और दिल्ली के लोदी सुल्तानों के बीच अवध और जौनपुर पर अधिकार को लेकर बहुत तीव्र क्षेत्रीय संघर्ष का था। परंतु इस संघर्ष का उल्लेख कुतुबन में नहीं मिलता।

इस काव्य की तीन विशिष्ट लक्षण थे, पहला–कथानक अभिलाषा के जागने और उसे टालने या स्थगित करने द्वारा आगे बढ़ता है तथा पाठक को भी नायक के साथ खींचते हुए विवरणात्मक, सौंदर्यपूर्ण तथा श्रृंगारमय समापन की ओर ले जाता है। दूसरा–नायक और नायिका के सामने आख्यान के विकल्प रखे जाते हैं जैसे प्रेम के विविध रूप : वासनात्मक, पवित्र, उग्र इत्यादि तीसरा, पात्र बहुधा अमूर्त गुणों के उदाहरण होते हैं जैसे–प्रेम, बुद्धि, रहस्यात्मक तल्लीनता एवं आध्यात्मिक निर्देश। क्षेत्रीय सल्तनतों की दरबारी कलागत, साहित्यिक तथा प्रयोगात्मक संस्कृतियों में कुतुबन जैसे कवि उत्पन्न हुए थे। कुतुबन शेख बुद्धन सुहरावर्दी का शिष्य था, जिसका उन्होंने स्वयं उल्लेख किया है।[11] कुतुबन चिश्ती शेख बुद्धन से संबद्ध थे, बुद्धन एक बड़े संगीतज्ञ थे जो हुसैनशाह शर्की के जमाने में दिल्ली के समीप मेरठ के बरनावा में रहते थे।[12] कुतुबन ने अपने प्रेमाख्यान काव्य में चिश्तियों और सुहरावर्दियों दोनों के मिलते जुलते रहस्यवादी विचारों को लिया है, साथ–साथ मौलाना दाऊद के 'चान्दायन' के सामान्य ढाँचे को भी अपनाया है।[13]

मध्यकालीन भारत में प्रेमाश्रयी शाखा की एक प्रमुख कृति 'मधुमालती' है। इसके रचयिता 'मंझन' थे। मंझन के जीवन के संबंध में कम जानकारी प्राप्त होती है। इनकी रचना 'मधुमालती' में कनेसर के राजकुमार मनोहर तथा महारस की राजकुमारी मधुमालती का प्रेम वर्णन है।[14] इस ग्रंथ में मंझन ने प्रेमत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास कराया है। मंझन ने मधुमालती तथा मनोहर के प्रेम द्वारा ईश्वर तथा साधक के प्रेम का वर्णन प्रस्तुत किया है। 'मधुमालती' की भाषा भी अवधी है।[15] मधुमालती में कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कहानी को विस्तृत रूप दिया है, साथ ही प्रेमा और ताराचंद के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। जन्म–जन्मांतर और योग्यंतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मंझन ने प्रेमतत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिखाया है। 'पद्मावत' के पहले 'मधुमालती' की बहुत अधिक प्रसिद्धि थी। दक्षिण के शायर नसरती ने भी 'मधुमालती' के आधार पर दक्खिनी उर्दू में 'गुलशने इश्क' के नाम से एक प्रेम कहानी लिखी। मंझन ने इस कृति में प्रेम का महत्व दिया।[16]

प्रेमाश्रयी शाखा की सबसे प्रमुख कृति 'पदमावत' है। यह ग्रंथ संपूर्ण मध्यकालीन भारतीय इतिहास की हिन्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी थे। इनका वास्तविक नाम मलिक मोहम्मद था तथा अवध में स्थित जायस नाक ग्राम में उत्पन्न होने के कारण जायसी के नाम से प्रसिद्ध हुये।[17] इनकी मृत्यु 1542 ई0 के लगभग हुई। जायसी की मुख्य रचनाओं में 'पद्मावत्', 'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम' है, जिसमें पद्मावत का हिन्दी

साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। पद्मावत की रचना 1520 ई0 के लगभग प्रारम्भ हुई और लगभग बीस वर्ष पश्चात् शेरशाह के काल (1540 ई0) में पूर्ण हुई। जायसी से पूर्व के सूफी कवियों की रचनाएँ काल्पनिक थीं, किन्तु जायसी ने कल्पना के साथ–साथ ऐतिहासिक घटनाओं का भी समावेश किया।[18] जायसी ने 'पद्मावत' प्रेमकाव्य के द्वारा सम्पूर्ण सूफीवादी दर्शन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें कवि ने अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गुरू की महत्ता तथा सूफीवाद की शिक्षा पर प्रकाश डाला है। इसमें अवधी भाषा बोलचाल की भाषा है। कहीं–कहीं पर कहावतों एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है।[19] पद्मावत की हस्तलिखित प्रतियाँ अधिकतर फारसी अक्षरों में मिली है। जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजधानी में इनका बहुत मान–सम्मान था। अपने जीवन के अंतिम समय में ये अमेठी से दो मील दूर एक जंगल में रहा करते थे। वहीं पर इनकी मृत्यु हुई। पुस्तक 'अखरावट' में वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्त्वों से भी चौपाइयाँ कहीं गयी है। इस पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।

जायसी की कृति 'पद्मावत' जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था।[20] कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक–सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। जायसी मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई। 'पद्मावत' में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त मिलती है। यह ग्रंथ उस समय की परंपरा की सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है।

उसमान का प्रेम काव्य 'चित्रावली' काल्पनिक भावनाओं से भरा हुआ है। इसकी रचना 1613 ई0 में हुई। इसमें उसमान ने सुजान कुमार और चित्रावली की प्रेम गाथाओं का वर्णन किया है। इन्होंने इसमें पैगम्बर साहब, चार खलीफाओं, जहाँगीर और सूफी सन्तों की प्रशंसा की है। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में थे।[21] ये गाजीपुर के रहने वाले थे और सम्राट जहाँगीर के समकालीन थे।[22] चित्रावली नामक एक प्रेम कहानी दोहा–चौपाइयों में जायसी की रचना के ढंग पर बनाई गई। इनकी रचना सबल और मनोहर है।[23] मध्यकालीन भारत में प्रेममार्गी कवियों में शेख नबी, नूर मुहम्मद का भी प्रमुख स्थान है। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सूफी कवियों ने प्रेमगाथाओं के रूप में उस प्रेमतत्व का वर्णन किया है जो ईश्वर को मिलने वाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है। प्रेममार्गी कवियों ने हृदय को स्पर्श करने वाले प्रेम का सहारा लिया है।

संदर्भ सूची :–

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2016, पृ. 84
2. जाफरी, जमीला अली, हिन्दी कविता : इस्लामी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1975, पृ. 70
3. चौरसिया, केशनी प्रसाद, मध्यकालीन हिन्दी संत–विचार और साधना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1965, पृ. 444
4. पाण्डेय, चन्द्रबली, तसब्बुफ अथवा सूफीवाद, सरस्वती मंदिर, बनारस, 1945, पृ0–95
5. अहमद, लईक, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1976, पृ. 79
6. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, 2018, पृ. 152

7. खन्ना, मीनाक्षी, मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 188
8. नगेन्द्र, पूर्वोद्धृत, पृ. 154
9. शुक्ल, रामचंद्र, पूर्वोद्धृत, पृ. 84
10. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1953, पृ. 490
11. खन्ना, मीनाक्षी, पूर्वोद्धृत, पृ. 190
12. पांडे, एस0एम0, कुतुबन स मृगावती : इट्स कंटेंट एंड इंटरप्रेटेशन, कैम्ब्रिज यूनि. प्रेस, कैम्ब्रिज, 1991, पृ. 180
13. वर्मा, हरीशचंद, मध्यकालीन भारत, भाग–1, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2015, पृ0–495
14. विशारद, गंगा प्रसाद सिंह, हिन्दी के मुसलमान कवि, प्रोप्राइटर लहरी बुक डिपो, काशी, 1926, पृ0–10
15. अहमद, लईक, पूर्वोद्धृत, पृ0–80
16. शुक्ल, रामचंद्र, पूर्वोद्ध, पृ0–86
17. अहमद, अजीज, स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दि इण्डियन इनवायरनमेण्ट, ऑक्सफोर्ड क्लारेण्डन प्रेस, लन्दन, 1964, पृ0 241
18. शुक्ल, रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012, पृ. 6
19. अहमद, लईक, पूर्वोद्धृत, पृ. 80
20. शुक्ल, रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृ. 88
21. गुलाबराय, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, साहित्य–रत्न–भण्डार, आगरा, 1946, पृ0–36
22. चौबे, झारखण्डे, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1979, पृ. 459
23. मिश्र, गणेश बिहारी, मिश्रबंधु–विनोद, गंगा–पुस्तकमाला – कार्यालय, लखनऊ, 1926, पृ. 356

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 131-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन काव्य में प्रेम के स्वरूप

–शाहिद हुसैन

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), डॉ.सी. वी रामन. विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :–

परमात्मा या ईष्वर के संबन्ध मे जो शब्द सर्वाधिक सार्थक हो सकता है, वह शब्द प्रेम है। जो प्रेम स्त्री और पुरूष के बीच घटित होता है, उसी को अनंत गुना कर लें तो परमात्मा और मनुष्य के बीच जो प्रेम घटित होता है, उसका थोड़ा अनुमान हमें होगा। और इस जगत में कोई घटना नही है जिस से उसका अनुमान हो सके। प्रेम बहुत तलों पर अभिव्यक्त हो सकता है। प्रेम जब अपने शुद्धतम रूप में प्रकट होता है, अकारण, बेषर्त तब मंदिर बन जाता है। और जब प्रेम अपने अशुद्धतम रूप में प्रकट होता है, वासना की भांति, शोषण और हिंसा की भांति, ईर्ष्या और द्वेष की भांति, आधिपत्य की भांति तब कारगृह बन जाता है जिस से हम बाहर होना चाहे और हो न सके, जिसके भीतर हम तड़पते है मुक्त होने के लिए पर मुक्त हो न सके, द्वार बंद हो हाथ पैरों पर जंजीरें पड़ी हों। मंदिर का अर्थ है –जिसका द्वार खुला हो, जैसे भीतर आये हों वैसे ही हम बाहर जाना चाहें तो कोई प्रतिबंध न हो, कोई पैरों को पकड़े न। जिस प्रेम मे हमें अंततः परमात्मा का दर्शन हो सके वो तो मंदिर है और जिस प्रेम में हमे हमारे पशु के अतिरिक्त किसी की प्रतीति न हो सके वो कारागृह है। प्रेम मुक्त करता है बांधता नही, और जिस प्रेम में अंततः परमात्मा का दर्शन हो सकें वह प्रेम ईश्वरीय प्रेम हो जाता हैं।

''पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिले तो जीवना, नही तो छूटै प्रान।''. –संत चरणदास

प्रेम और भक्ति एक ही साधना के दो आयाम हैं। जो प्रेम लोक में अपनी पराकाष्ठा में वासना में परिणित होता है, वही प्रेम आध्यात्मिक जगत में भक्ति का स्वरूप धारण करता है। और यही कारण है कि हर एक भक्त कवि ने अपने अपने तरीके से प्रेम के स्वरूप को निर्धारित किया है और उसकी अभिव्यक्ति की है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के अंतर्गत हिन्दु धर्म को मानने वाले कवि भी आते है और इस्लाम धर्म को मानने वाले कवि भी आते हैं। इन कवियों को संत कवि व सूफी कवि के रूप मे बांट कर देखा जाता है। 'आचार्य रजनीश (ओशो)' ने अपनी पुस्तक ''कस्तूरी कुंडल बसै'' में कहा है –'' धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति–ऐसे प्रेम की जहाँ बूँद खो देती है अपने को सागर में और सागर हो जाती है; जहाँ सागर खो देता अपने को बूँद में और बूँद हो जाता है; व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा क्षण, जब दो नही बचते, एक ही शेष रह जाता है; प्रार्थना का एक ऐसा पल, जहाँ व्यक्ति तो शून्य हो जाता है; और समष्टि माहाव्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है। इसीलिए तो उस क्षण को हम कहते ईश्वर का साक्षात्कार...।'' हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन संत कवि और सूफी कवियों ने व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की प्रतीति को ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

''प्रेम बहुत तलों पर अभिव्यक्त हो सकता है। प्रेम जब अपने शुद्धतम रूप में प्रकट होता है, अकारण, बेशर्त तब

मंदिर बन जाता है, और जब प्रेम अपने अशुद्धतम रूप में प्रकट होता है, वासना की भांति, शोषण और हिंसा की भांति, ईर्ष्या और द्वेष की भांति, आधिपत्य की भांति तब कारागृह बन जाता है। कारागृह का अर्थ है – जिस से हम बाहर होना चाहें और हो न सकें, जिसके भीतर हम तड़पते है मुक्त होने के लिए पर मुक्त हो न सकें, द्वार बंद हों हाथ पैरों पर जंजीरें पड़ी हों।

मंदिर का अर्थ है–जिसका द्वार खुला हो, जैसे भीतर आये हों वैसे ही हम बाहर जाना चाहें तो कोई प्रतिबन्ध न हो, कोई पैरों को पकड़े न। भीतर आने के लिए जितनी आजादी थी उतनी ही बाहर जाने की आजादी सदा मौजूद है। मंदिर का अर्थ है जो हमें अपने से पार ले जाए, जहां से अतिक्रमण हो सके, जो सदा और ऊपर और ऊपर ले जाने की सुविधा दे।'' चाहे हम किसी के प्रेम मे पड़े हों और प्रारंभ अशुद्ध रहा हो लेकिन जैसे–जैसे प्रेम गहरा होने लगे वैसे – वैसे शुद्धि बढने लगे चाहे प्रेम शरीर का आकर्षण रहा हो, लेकिन जैसे ही प्रेम की यात्रा शुरू हो प्रेम शरीर का आकर्षण न रह कर दो मनो के बीच खिंचाव हो जाए और यात्रा के अंत तक मन का खिंचाव भी न रह जाए। दो आत्माओं का मिलन बन जाए। जिस प्रेम मे हमे अंततः परमात्मा का दर्शन हो सके वो तो मंदिर है और जिस प्रेम में हमें हमारे पशु के अतिरिक्त किसी की प्रतीति न हो सके वो कारागृह है। प्रेम मुक्त करता है बांधता नहीं और जिस प्रेम में अंततः परमात्मा का दर्शन हो सके वह प्रेम ईश्वरीय प्रेम हो जाता है।

हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन समयावधि में ऐसे अनेक संत कवि, सूफि कवि, भक्त कवि एवं रचानाकार हुए हैं जिन्होने अपनी रचनाओं में इसी ईष्वरीय प्रेम को अभिव्यक्त किया है जिनमे प्रमुख हैं कबीरदास, नानक, मीरा बाई, संत दादु दयाल, पलटु साहब, संत सहजो बाई, संत दया बाई, संत धरमदास, सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी, शेख फरीद, रसखान, आदि। इन कवियो ने जिस प्रेम के गीतों को गाया है वह निश्चित ही ईश्वरीय प्रेम के गीत हैं। इनकी रचनाओ मे ईश्वरीय प्रेम की मस्ती और विरह की तडप दोनो दिखाई देती है।

कबीर का आध्यात्मिक प्रेम तीन सोपानो से होकर गुजरता है – अनुराग, विरह और मिलन। आध्यात्मिक प्रेम की पहली जरुरत है, चित्त वृत्तियों को ईश्वरोन्मुख करना, विषयों से चित्त को हटाना। आत्मा (अंश) का परमात्मा (अंशी) से मिलने की अभिलाषा ही अनुराग है। संत कबीर कहते हैं जब हृदय में परमात्मा के प्रेम की लगन लगती है तब जिस आनंद का अनुभव होता है उसे शब्दों में ब्यान करना अत्यंत कठिन होता हैं। इस प्रेम के आनंद को केवल प्रेमी ही समझ सकता है। यह स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे ''गूंगे का गुड़।'' गूंगा गुड़ के मिठास का मजा तो लेता है मगर उसे व्यक्त नहीं कर सकता। ठीक ऐसे ही प्रेमी के लिए प्रेम से मिले आनंद को शब्दों में व्यक्त करना अत्यंत कठिन होता है। कबीर कहते हैं कि गुरू के द्वारा मेरे हृदय में जो प्रेम की घटना घटी है उसके कारण मेरे मन की चंचलता समाप्त हो गई है–

"अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाय,
गूंगे केरी सरकरा, खाइ और मुस्काय।
कहे कबीर सकति कछु नाहीं, गुरू भया सहाई,
आंवण जांवण मिटी गई, मन मनहि समाईं।"

अनुराग की अनुभूति होने के पश्चात विरह का तत्व कबीर के प्रेम में बहुत महत्वपूर्ण है। वे उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठते हैं यही विरह की स्थिति है। कबीर ने दांपत्य प्रेम के प्रतीकों के द्वारा इस व्याकुलता का वर्णन किया है।

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहि।
प्रेम गली अति सांकरी, जामे दो न समाहि।।"

बिरह से प्रेम और बढ़ता है। कबीर का यह प्रेम साधना और योग से अलग नहीं है। सुरति निरति द्वारा साधक

को परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। कबीर का प्रेम संतो और योगियों का प्रेम है जो प्रेम में अद्वैत की अवस्था को प्राप्त करते हैं –

"हम वासी उस देस के, जहां बारह मास विलास।
प्रेम झरे बिकसय कमल, तेज पुंज प्रकास।।"

मीरा कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम प्रकट करते हुए कहती है – मेरी आंखो मे बस जाओ नन्दलाल। मेरी आंखो में तुम ही रहो। मेरी आंखे तुम्हारा घर बन जाए। जागूँ तो तुम्हे देखूँ, सोऊँ तो तुम्हे देखूँ। ये तुम्हारी बड़ी–बड़ी आंखे मेरा पीछा करती रहे, ये सदा मुझे देखती रहें, मुझमे झांकती रहें। यह तुम्हारा लाल तिलक! ये तुम्हरे मछली के आकार के कुंडल! ये तुम्हारे मोर के पंखो से बना हुआ मुकुट! ये तुम्हारी बड़ी–बड़ी आंखे! हे नंदलाल तुम मेरी आंखो मे बस जाओ–

"बसो मेरे नैनन में नंदलाल,
मोहनि मूरति साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल।
मोर मुकुट मकराकृति कुंडल, अरूण तिलक सोहे भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ति माल।"

संत दादू परमात्मा के प्रकाश रूप का दीदार कर मतवाले होकर कहते हैं –

"प्रेम पियाला नूर का, आसिक भर दीया।
दादू दर दीदार में, मतवाला कीया।।
इसक सलोना आसिकां, दरगह थैं दीया।
दर्द मोहब्बत प्रेम रस, प्याला भरि पीया।।"

संत पलटू अपने गुरू में परमात्मा के दर्शन करते हुए कहते हैं कि अब मेरा दिल उस प्यारे से लग गया है अब मुझसे रहा नही जाता –

"अम्मा मेरा दिल लगा मुझसे रहा न जाय।।
मुझसे रहा न जाए बिना साहब को देखे।
जान तसद्दुक करों लगे साहिब के लेखे।।"

संत दयाबाई ईश्वरीय प्रेम से प्राप्त आनंद में मगन होकर कहती है –

"प्रेम मगन गदगद बचन पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रह्यो मन रूप में 'दया' न हव चित भंग।।"

संत धर्मदास जी कहते है कि उस प्यारे के बिना मुझे अब नींद नहीं आती, बिजली में भी उसी की चमक, बादलों में भी उसी की आवाज, उसी का नाद मालूम पड़ता है –

"पिया बिन मोहि नींद न आवै।
खन गरजे खन बिजुली चमके, ऊपर से मोहि झांकि दिखावे।।
सासु ननद घर दारूनि आहै, नित मोहि बिरह सतावै।।"

सूफी मलिक मुहम्मद जायसी कहते हैं, अब तो मैंने प्रेम के समंदर में बेड़ा बाँध लिया है। देखता हूँ, सारा समंदर उसकी एक बूंद के सामान हैं। मैं स्वर्ग का राज नहीं चाहता और न मुझे नरक से कोई काम है। मैं तो उसका दर्शन भर पाना चाहता हूँ जिसने कि मुझे प्रेम के इस मार्ग पर ला कर खड़ा कर दिया –

"प्रेम समुंद महं बाँधा बेरा। यह सब समुंद बूंद जेहि केरा।
ना हो सरगक चाहों राजू। ना मोहि नरक सैंति किछु काजु।

चाहौं ओहि कर दरसन पावा। जेई मोहि आनि प्रेम पथ लावा।"

प्रसिद्ध सूफी साधक रूमी ने एक स्थान पर कहा है कि – इश्क का मजहब सभी मजहबों से अलग है। खुदा के आशिकों का खुदा के अलावा कोई मजहब नहीं। मशहूर सूफी जुनैद का कथन है कि अपनी विशेषताओं को प्रिय की विशेषताओं में मिला देना ही प्रेम है। यह एक ईश्वरीय कृपा है जो लगातार विनय करते रहने से मिलती है –

''प्रेम हरि को रूप है त्यौं हर प्रेम सरूप
एक होय है यौं लसे ज्यौं सूरज औ धूप।
सिर काटो, छेदौ हियो, टूक टूक करि देहु,
पै याके बदले बिहँसि, वाह–वाह हि लेहु।''

इस्लाम धर्म में यह बात प्रचलित है कि मरने के बाद कयामत (महा प्रलय) होगी और उस समय हर इंसान को एक पुल से होकर गुजर ना होगा। वह पुल बाल से भी अधिक बारीक और तलवार की धार से भी अधिक तेज होगा। ईश्वर के सच्चे भक्त और प्रेमी व्यक्ति ही उसे पार कर पाएंगे–भक्त कवि रसखान ने भी कुछ इसी प्रकार के मनोभावों को यहां पर निरूपित किया है –

"कमल तंतु सो हीन, अरु कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार।"

उपसंहार :–

ईश्वर की जिज्ञासा करनी जीवन का सबसे बड़ा अभियान है। उसके पार फिर कोई और खोज नहीं। उस से बड़ी कोई चुनौति नहीं। ईश्वर या परमात्मा के संबन्ध में जो शब्द सर्वाधिक सार्थक हो सकते हैं, वे प्रेम के शब्द है। स्त्री और पुरूष के बीच जो प्रेम घटित होता है, उसी को अनंत गुना कर लें तो परमात्मा और मनुष्य के बीच जो प्रेम घटित होता है, उसका थोड़ा अनुमान हमें होगा। और इस जगत में कोई घटना नहीं है जिस से उसका अनुमान हो सके। प्रेम मुक्त करता है बांधता नहीं और जिस प्रेम में अंततः परमात्मा का दर्शन हो सके वह प्रेम ईश्वरीय प्रेम हो जाता है। प्रेम, वासना का नाम नहीं है और न ही खुद को आबद्ध करने का बंधन है, बल्कि प्रेम हृदय की वह उदात्त, अनिर्वचनीय और परिष्कृत भावना है जो मन को शुद्ध करती है, भावों को शुद्ध करती है तथा व्यक्ति के भीतर अहंकार विहीन चेतना जागृत करती है। यही कारण है कि मध्यकालीन भक्त एवं सूफी कवियों ने अपने–अपने ढंग से प्रेम के स्वरूप को निर्धारित किया है और उसकी अभिव्यक्ति की है।

"तड़प ये दिन रात की, कसक ये बिन बात की,
भला ये रोग है कैसा, सजन अब तो बता दे! सजन अब तो बता दे!"

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. कस्तूरी कुंडल बसै – ओशो
2. संतो की बानी – महाराज चरण सिंह जी
3. कबीर ग्रंथावली – श्याम सुन्दर दास
4. मेरे तो गिरिधर गोपाल (मीरा वाणी) – ओशो
5. संक्षिप्त पद्मावत – श्याम सुन्दर दास और सत्यजीवन वर्मा
6. संत काव्य – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
7. शोध–धारा – शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान उरई–जालोन (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 135-138

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

यशपाल के उपन्यास साहित्य में प्रेम का स्वरूप

–डॉ. शालिनी माहेश्वरी

प्रवक्ता हिन्दी विभाग, श्री जी बाबा इंस्टीट्यूट सेमरी छाता, जिला– मथुरा, उ0 प्र0

मानव जीवन में प्रणय–भाव की नैसर्गिक कामना है। प्रणय में एकाधिकार की भावना प्रमुख रहती है। आज की सामाजिक व्यवस्था में स्त्री–पुरुष के प्रणय अथवा उनके निकट संबंधों की अन्तिम परिणति विवाह को स्वीकार किया जाता है। 'प्रणय' से विवाह और विवाह से गृहस्थी बनती है। विवाह और गृहस्थी से एक मर्यादा की स्थापना होती है, जो भावना पर अधिक निर्भर है। उस मर्यादा में बाँधकर चलता हुआ मनुष्य अपने जीवन के भौतिकवादी मूल्यों को अपनाने में हिचकिचाता है। पाठकों की इस हिचकिचाहट को दूर करने के लिए यशपाल ने नारी–पुरुष के प्रणय–संबंधों तथा वैवाहिक मान्यताओं पर निरन्तर कुठाराघात किया है। उदाहरण के लिए, शैल (दादा कामरेड) को यशपाल ने ऐसी स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है जो स्त्री–पुरुष के पारस्परिक आकर्षण को केवल दैहिक आवश्यकता के रूप में देखती है। उस आवश्यकता के साथ किसी मानसिक भावना को जोड़ने के पक्ष आवश्यकता के रूप में देखती है। उसे पशुवत व्यवहार के स्तर पर ले जाने में उसे हिचक नहीं है। शैल की दृष्टि में, विवाह के परिणाम स्वरूप स्त्री, पुरुष की सम्पत्ति बनकर रह जाती है। उसके अनुसार विवाह अनावश्यक है।

इस विषय में उसका मत है – "....जहाँ स्त्री का अपना कुछ शेष नहीं रह जाता। यदि स्त्री को किसी न किसी की बनकर ही रहना है तो उसकी स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या हुआ? स्वतंत्रता शायद इस बात की है कि स्त्री एक बार अपना मालिक चुन ले परन्तु गुलाम उसे जरूर बनना है।"[1] वह विवाह के द्वारा पुरुष से बँधने में विश्वास नहीं रखती, प्रणय–बँधन द्वारा किसी की, केवल एक की मानसिक, शारीरिक रूप से बन जाने में भी उसे अपनी स्वतंत्रता की हानि जान पड़ती है। उसका प्रेम के संबंध में प्रश्न है – "क्या संसार भर की अच्छाई एक ही व्यक्ति में आ सकती हैं? और जगह अच्छाई दिखाई देने पर उसे कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? क्या मनुष्य–हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना जरूरी है?"[2] शैल प्रेम अथवा पुरुष आकर्षण द्वारा जीवन का प्रसार चाहती है।

अनन्यता की भावना उसकी समझ से बाहर है। यदि प्रेमी उस पर एकाधिकार की भावना जताता है तो उसकी यह स्वामित्व–भावना शैल को स्वीकार नहीं है। वह प्रथम प्रेमी महेन्द्र से यौन संबंध स्थापित कर गर्भ–निरोध द्वारा उसके परिणाम से मुक्त होती है। खन्ना उससे प्रेम जताता है किन्तु वह उसके पूर्व यौन संबंध की सूचना पाकर, उसे छोड़ जाता है। फिर शैल राबर्ट से प्रेम करने लगती है किंतु संयोगवश हरीश के बीच में आ जाने पर उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। हरीश सच्चा कम्युनिस्ट कार्यकर्ता है। वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओं, सुख–चैन को भी भुला बैठा है। उसके प्रति द्रवित होकर, उसकी इच्छापूर्ति की साधन शैल बन जाती है। शैल का यह शारीरिक समर्पण केवल हरीश की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर हुआ है। गर्भ धारण कर लेने पर वह, इस बार उसे नष्ट नहीं करती। यह हरीश की देन है। इसे सुरक्षित रखकर वह नये हरीश को जन्म देगी, जो हरीश के छोड़े हुए कार्य को आगे बढ़ायेगा।

'मनुष्य के रूप' में उपन्यासकार ने सोमा के माध्यम से दर्शाया है कि "प्रेम तुम्हारा हथियार है इस खंजर को

अपने पेट में न भौंक लेना।"[3] वह परिस्थिति में पड़कर पग–2 पर पुरुष द्वारा प्राप्त अपने आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती है। यशपाल कहते हैं प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है। यदि प्रेम बिल्कुल छिछला रहे तो वह असंयत वासनामात्र बन जाता है और यदि जीवन में प्रेम या आकर्षण का संयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक भी हो सकता है।[4]

जैसा कि मनुष्य के रूप में मनोरमा और सुतलीवाला के प्रेम–विवाह से स्पष्ट है। मनोरमा विवेक और बुद्धि से विचार न करके केवल आवेश में आकर सुतलीवाला से विवाह कर लेती है परन्तु अंत में उसे सुतलीवाला से उपेक्षा सहन करनी पड़ती है। घर पर सुतलीवाला और मनोरमा में बातचीत बंद हो जाती हैं खाने का समय दोनों का अलग–2 हो गया। पन्द्रहवें दिन सुतलीवाला बैरे के पास उसके लिए लिफाफा छोड़ जाता है जिसमें सौ रुपये थे।[5] बाद में सुतलीवाला की नपुंसकता तथा उसका विचार–वैभिन्य अनुभव कर उसे छोड़ देती है। यशपाल जी ने प्रेम को जीवन की उदात्त और सबसे ऊँची भावना तो माना है तथा यह भी कहा है कि इस भावना के अपूर्ण रहने पर व्यक्ति का जीवन व्यर्थ और बोझ बन जाता है परन्तु यह नहीं कहा कि यह प्रेम जीवन में पार्थिव या इन्द्रियजन्य प्रेम के अतिरिक्त भी कोई वस्तु है। अर्थात् वे प्रेम–भावना को आत्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना मानने को तैयार नहीं। आधुनिक काल में ही नहीं प्राचीन काल की सावित्री–सत्यवान की पौराणिक गाथा के माध्यम से तर्क के आधार पर उस प्रेम को भी इन्द्रियजन्य तथा पार्थिव माना है। "सावित्री ने सत्यवान से अपने प्रेम की निष्ठा पूरी कर सकने के लिए यम से आग्रह किया।....इसमें ऐसे प्राण डाल दो कि सौ पुत्र उत्पन्न कर सकने तक जवान बना रहे। क्या आत्मिक प्रेम से सौ पुत्र हो जायेंगे? सावित्री की निष्ठा में आत्मिक प्रेम की कल्पना थी या पार्थिव आवश्यकता।"[6]

इसी आधार पर यशपाल ने प्रेम को पार्थिक और इन्द्रियजन्य आकर्षण बताया है न कि अतीन्द्रिय। उनकी दृष्टि में, आध्यात्मिक प्रेम नपुंसक प्रेम है। वासना को पूरी करने की जब सामर्थ्य न हो तो मन को बहलाने का तरीका है। स्वयं जो कुछ कर सकने का अवसर नहीं।[7] 'भगवान के नाम से उसकी कल्पना कर मन को बहला दिया।' मैं यशपाल विश्वास नहीं करते। यशपाल जी कहते हैं "प्रेम जीवन की माँग होता है और प्रेम–पात्र उस माँग को पूरा करता है, प्रेम–पात्र कोई व्यक्ति भी हो सकता है। प्रेम–पात्र या व्यक्ति का उन्मेष पूरा कर सकने के कारण ही अच्छा या प्यारा लगता है।"[8]

अतः स्पष्ट है कि यशपाल की प्रेम संबंधी भावना नितांत आधुनिक है। परम्परागत प्रचलित मान्यताओं को उन्होंने तर्क के आधार पर निर्मूल सिद्ध कर दिया है। उनकी यह विशेषता हैकि सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप जीवन की विशाल भूमि पर बैठकर गहन अध्ययन और मनन के आधार पर नवीन मान्यताओं का प्रश्रय देकर एक नई दिशा प्रस्तुत करते हैं लेकिन इसके साथ ही यशपाल ने स्त्री–पुरुष के प्रेम को सहानुभूति से नहीं देखा है। उनके प्रिय साम्यवादी पात्र भी प्रेम की चरम परिणति के रूप में, मिलन को प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति की संभावना उत्पन्न होते ही, यशपाल पुरुष पात्रों की मृत्यु, उनके कारावास आदि जैसी परिस्थितियों का आयोजन कर लेते हैं। उदाहरण के लिए हरीश–शैल (दादा कामरेड), नासिर–जमुना (देशद्रोही), भावरिया–गीता (गीता), भूषण–मनोरमा (मनुष्य के रूप) आदि पात्रों के ऐसे प्रेम संबंध उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास में उषा नरेन्द्र कोहली से कहती है –

"प्रेम उत्सर्ग के लिए नहीं किया जाता, जीवन में पूर्णता और संतोष की ललक से किया जाता है। जब प्रेम आकर्षण अदम्य आवेग बन जायेगा, उसके उत्सर्ग की अपील की जरूरत नहीं होगी। जब आकर्षण की ललक खत्म, प्रेम खत्म। उसे निबाहने में ऊब और यातना।"[9] इसी संदर्भ में 'झूठा–सच' में गिल कनक से कहता है – "प्रेम जीवन का यथार्थ व्यवहार है। वह कल्पना और स्मृति में ही सफल नहीं हो सकता।"[10]

यशपाल के औपन्यासिक–पात्र प्रवृत्ति से विवाह विरोधी हैं। वे जान–बूझकर अथवा अनजाने में विवाह से कतराते हैं और यदि वैवाहिक बँधन में पड़ जाते हैं तो उसे तोड़–फेंकने के लिए छटपटाते हैं। उन्हें मुक्त कराने में उपन्यासकार

सहायक होता है। वह ऐसी परिस्थिति की सृष्टि करता है, जिनके फलस्वरूप प्रेमियों तक का विवाह संभव नहीं होता अथवा उनका विवाह, संबंध–विच्छेद में परिणत हो जाता है। उदाहरणार्थ, हरीश (दादा कामरेड) अपने विवाह के उपरान्त गौने के समय, घर चुपचाप छोड़कर चला जाता है। उसे अपनी इन निष्ठुरता पर पश्चाताप नहीं है। जब सोचता है, "पुरुष के जीवन में स्त्री का एक प्राकृतिक स्थान है, तब याद आती है, मेरी भी एक थी।"[11]

राबर्ट और शैल प्रेम करते हैं किन्तु उनका विवाह भी नहीं होता। शैल हरीश का गर्भ धारण करके भी उसकी परिणीता नहीं बन पाती। इसी उपन्यास में प्रौढ़ यशोदा हरीश के क्रांतिकारी तथा साम्यवादी मतों से प्रभावित हो घर से बाहर निकलती है। उनका दाम्पत्य जीवन टूटते–2 बचता है। राबर्ट और फ्लोरा का वैवाहिक सम्बन्ध टूट चुका है। 'देशद्रोही' में डॉक्टर खन्ना परिस्थति चक्र में पड़कर वजीरियो का बंदी बनता है। फिर गजनी में रहकर उसका विवाह अपने स्वामी की पुत्री नर्गिस से हो जाता है। नर्गिस का पूर्ण समर्पण उसे पशुवत जान पड़ा। एक दिन उस दाम्पत्य जीवन का त्याग कर, वह रूस जा पहुँचता है। रूस में आत्मनिर्भर विचारशील युवती गुलशाँ उसकी ओर आकृष्ट हो उससे विवाह करना चाहती है, किन्तु खन्ना विवाह–बँधन में बँधना स्वीकार नहीं करता। उसकी पत्नी राज दिल्ली में है। खन्ना को उसका स्मरण प्रायः हो जाता है, किंतु इस संबंध में तर्क करता रहा है, राज मुझे नहीं, मुझसे मिलने वाले संतोष से प्रेम करती थी या वह उस एकमात्र पुरुष को प्रेम करती थी जिस पर जीवन की प्रत्येक बात के लिए निर्भर थी, जिसके बिना जीवन सम्भव न था। मैं जैसे राज से प्रेम करता था, वैसे ही किसी दूसरी स्त्री से भी कर सकता हूँ। राज भी, जो भी उसका पति होता उसी से प्रेम करती। मुझ में ही क्या विशेषता है?[12]

खन्ना का यह चिन्तन पति–पत्नी का साधारण नर–नारी के रूप में देखता है। यह सही है, विवाह के द्वारा कोई भी स्त्री–पुरुष संयोगवश परस्पर समीप आ सकते हैं। इसमें उनकी विशिष्टता किसी बात की नहीं है किन्तु विवाह के बाद उनके संबंध में एक विशिष्टता आ जाती है, यह तथ्य झुठलाया नहीं जा सकता। नर–नारी पति–पत्नी के रूप में निकट रहकर एक विशेष प्रकार की आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं। जैसे दो व्यक्ति समीप आकर मित्रता का विशिष्ट संबंध प्राप्त करते हैं। उपन्यास में लेखक ने दिखाया है कि परिस्थितिवश राज खन्ना को मृत समझकर शनैः शनैः बद्रीबाबू की ओर आड्डष्ट हो, उससे विवाह कर लेती है। खन्ना का वैवाहिक नाता राज से भी छूट जाता है। खन्ना भारत लौटकर राज से पुनः संबंध जोड़ने का विचार, उदारतावश, त्याग देता है। वह राज की विवाहिता बड़ी बहन चंदा के स्नेहमय व्यक्तित्व से आकृष्ट हो उसके अत्यन्त निकट हो जाता है। चंदा और खन्ना को आकर्षण को लक्ष्य कर चंदा का व्यवहारिक पति राजाराम चिढ़ता–खीजता है। किन्तु लेखक की सहानुभूति उसे प्राप्त नहीं होती है। खन्ना एकान्त में चंदा की गोद में सिर रखकर लेटने की इच्छा प्रकट करता है और उसकी इच्छा पूर्ण भी होती है। चंदा का दाम्पत्य जीवन टूटने–2 को हो रहा है।

खन्ना चंदा के असमंजस पर टिप्पणी करता है – 'कुल के सम्मान के लिए तुम गल रही हो, अपने बलिदान से नारी–समाज के बँधन दृढ़ कर रही हो। बच्चों के प्रश्न पर मैं कहता हूँ कि एक घर से बढ़कर देश और मनुष्यता का ध्यान होना चाहिए..।[13] यशपाल ने उपन्यास में इस स्थिति का आयोजन साभिप्राय किया है। वे चंदा के वैवाहिक जीवन की निस्सारता प्रदर्शित करना चाहते हैं। 'पार्टी कामरेड' उपन्यास में लेखक ने नारी के नारीत्व के विकास पर दृष्टि न रखकर युवती गीता को कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ता मात्र के रूप में देखा है। गीता का स्पष्ट चिन्तन है, 'कोई स्त्री विवश हो वेश्या बनती है कोई विवश हो पतिव्रता।'[14] पार्टी के कार्य में रत गीता को स्त्री–पुरुष की पारस्परिक आवश्यकताओं पर ध्यान देने का अवकाश नहीं। उपन्यास में दिखाया गया है कि स्त्री हो या पुरुष, सभी लोग पार्टी की मशीन के पुरजे मात्र हैं। 'मनुष्य के रूप' में उपन्यासकार ने सोमा के माध्यम से दर्शाया कि 'प्रेम केवल जीवन का सहायक साधन है।'[15] वह परिस्थितियों में पड़कर पग–2 पर पुरुष द्वारा प्राप्त अपने आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर

से चुकाती है। इस उपन्यास में कई उदाहरणों द्वारा विवाह–संस्था को टूटते हुए दिखाया गया है। बरकत का विवाह सकीना से होता है। विवाह की प्रथम रात्रि में दोनों की अकारण अनबन हो जाती है। जिसके फलस्वरूप उनका चिर विच्छेद होता है। इस घटना का परिवर्तित रूप 'झूठा–सच' में दृष्टव्य है। यहाँ तारा और सोमराज के विवाह की प्रथम रात्रि में, इसी प्रकार मार–पीट होती है। परिस्थितिवश दोनों सदा के लिए अलग हो जाते हैं।

'मनुष्य के रूप' में परिस्थितियों से घबराकर मनोरमा आवेग में सुतलीवाला से विवाह कर बैठती है बाद में सुतलीवाला की नपुंसकता तथा उसका विचार–वैभिन्य अनुभव कर उसे छोड़ती है ठीक इसी प्रकार 'झूठा सच' में कनक तथा जयदेवपुरी के वैवाहिक संबंध का चित्रण है उनके प्रेम संबंध दीर्घ प्रकरण की चरम परिणति विवाह के रूप होते ही उपन्यासकार उनके संबंध विच्छेद की भूमिका तैयार करने में जुट जाता है। अन्ततः उनका विच्छेद होकर ही रहता है।

यशपाल ने स्त्री–पुरुष के प्रेम को सहानुभूति से नहीं देखा है। उनके प्रिय साम्यवादी पात्र यशपाल ने स्त्री–पुरुष के प्रेम को सहानुभूति से नहीं देखा है। उनके प्रिय साम्यवादी पात्र भी प्रेम की चरम परिणति के रूप में, मिलन को प्राप्त नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति की संभावना उत्पन्न होते ही, यशपाल पुरुष–पात्रों की मृत्यु, उनके कारावास आदि जैसी परिस्थितियों का आयोजन कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, हरीश शैल (दादा कामरेड), नासिर–जमुना (देशद्रोही), भावरिया–गीता (गीता), भूषण–मनोरमा (मनुष्य के रूप) आदि पात्रों के ऐसे प्रेम संबंध उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ संकेत :-

1. यशपाल रचनावली – दादा कामरेड, पृ0 32
2. यशपाल रचनावली – दादा कामरेड, पृ0 109
3. यशपाल रचनावली – मनुष्य के रूप, पृ0 186
4. यशपाल रचनावली – मनुष्य के रूप, पृ0 89
5. यशपाल रचनावली – मनुष्य के रूप, पृ0 226
6. यशपाल रचनावली – बारह घंटे, पृ0 106
7. चक्कर क्लब, पृ0 19
8. यशपाल रचनावली – बारह घंटे, पृ0 101
9. यशपाल रचनावली – मेरी तेरी उसकी बात, पृ0 344
10. यशपाल रचनावली – झूठा सच : देश का भविष्य, पृ0 217
11. यशपाल रचनावली – दादा कामरेड, पृ0 82
12. यशपाल रचनावली – देशद्रोही, पृ0 55
13. यशपाल रचनावली – देशद्रोही, पृ0 248
14. यशपाल रचनावली – पार्टी कामरेड, पृ0 26
15. यशपाल रचनावली – मनुष्य के रूप, पृ0 186

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 139-145

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरिशंकर परसाई की व्यंग्य–रचनाओं में प्रेम के विविध स्वरूप

–श्याम लाल

शोधार्थी, एन0आर0ई0सी0 कॉलेज–खुर्जा, बुलन्दशहर।

–डॉ0 कृष्णा शर्मा

(एसो0 प्रोफेसर), शोध निर्देशिका, एन0आर0ई0सी0 कॉलेज–खुर्जा, बुलन्दशहर।

हरिशंकर परसाई जी व्यंग्य विधा के सर्वाधिक प्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं। अनेक व्यंग्य देश, समाज एवं अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं की गहरी खबर लेते हैं। वे स्वातंत्रयोत्तर भारत की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि प्रसिद्ध समीक्षक विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं ''जिस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व के समस्त उत्तर भारत के विषय में प्रेमचन्द से जाना जा सकता है उसी प्रकार स्वातंत्रयोत्तर भारत के विषय में हरिशंकर परसाई जी से जाना–समझा जा सकता है। परसाई जी स्वर्णिम अतीत और सुखद भविष्य की कल्पना नहीं करते, बल्कि वर्तमान के यथार्थ पर अपनी दूरबीन–सी दृष्टि रखते हैं। वे समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडम्बनाओं को प्रकाश में लाकर उन पर कटु–व्यंग्य का प्रहार करते हैं। जिससे सड़ी–गली मान्यताओं, रूढ़ियो और परम्पराओं का उन्मूलन तथा समाज में परिवर्तन हो। उनका उद्देश्य केवल सुधारों तक सीमित नहीं है, अपितु परिवर्तन कर देश, समाज व मानव को उत्कृष्ट बनाना है।

परसाई जी ने वर्तमान समस्याओं पर ही अपने लेखन को केन्द्रित किया है। उनके साहित्य में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के भारत की सच्ची तस्वीर दिखती है। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं– ''परसाई ने वर्तमान समस्याओं को ही अपने लेखन का आधार बनाया है। आधुनिक काल के किसी अन्य रचनाकार ने वर्तमान समस्याओं तक ही अपने को व्यस्त नहीं रखा है। वर्तमान समस्याओं पर लिखते समय भी रचनाकार उन्हीं समस्याओं पर कलम चलाते हैं, जिस पर लोगों का ध्यान केन्द्रित हो चुका है। ..... वर्तमान के मामूलीपन या 'रोजमर्रा' को इतना प्रतिष्ठित पहले किसी और ने नहीं किया था।''[1]

हरिशंकर परसाई जी बालमुकुन्द गुप्त, कबीर, मुक्तिबोध तथा नागार्जुन की परम्परा के लेखक हैं। उनके साहित्य में विसंगतियों, विडम्बनाओं पर पर्दा नहीं, सीधा प्रहार है। प्रेम मानव का एक स्वाभाविक गुण है, जिससे सामाजिकता का समस्त ताना–बाना निर्मित होता हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने मनुष्य की 14 मूल प्रवृतियों में काम (Sex) को भी सम्मिलित किया है। जो प्रेम का ही दूसरा स्वरूप है। प्रेम के विविध स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। जैसे– भगवत् प्रेम, देश–प्रेम, लैकिक प्रेम, पारलौकिक प्रेम, सम्पत्ति प्रेम, धार्मिक प्रेम, पारिवारिक प्रेम, वात्सल्यपूर्ण प्रेम आदि। परसाई जी ने लौकिक या सांसारिक प्रेम पर अपनी लेखनी चलायी है। वे प्रेम में व्याप्त अस्थिरता, छल–छद्म, धोखेबाजी तथा अविश्वास जैसे विसंगतियों पर तीखा प्रहार करते हैं। क्योंकि वे केवल कल्पना में विश्वास नहीं रखते बल्कि तथ्यों को यथार्थ की कसौटी पर कसकर उनकी उपयोगिता का आँकलन करते हैं। कबीर दास जी जिस प्रेम को धार्मिक–आध्यात्मिक स्वरूप में स्वीकार करते थे तथा कहते थे–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े से पंडित होय।।

परसाई जी का मत इस विषय में बिल्कुल भिन्न है। वे धार्मिक व आध्यात्मिक प्रेम के पारलौकिक रूप की कल्पना नहीं करते, बल्कि इहलौकिक–सांसारिक प्रेम पर दृष्टिपात करते हैं। साथ ही उसमें व्याप्त विसंगतियों को उघाड़कर प्रकट करने का काम करते हैं। प्रेम जो मानव की संचालक–शक्ति है, उसमें जहाँ कहीं भी विकृति है, उस पर परसाई जी की तीक्षण नजर अवश्य पड़ी है। उनके उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' तथा 'तट की खोज' में प्रेम जैसे संवेदशील विषय पर व्यापक दृष्टि डाली गयी है। 'तट की खोज' में जहाँ उदात्त व समर्पित प्रेम तथा उसके विचित्र परिणाम को बहुत मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से उभारा गया है, वहीं 'रानी नागफनी की कहानी' में अस्थिर, चलते–फिरते और उच्छृंखल रूप वाले आजकल के प्रेम के स्वरूप का मनोरंजक रूप में चित्रण किया गया है।

परसाई जी के अनेक लेखों, कहानियों तथा उपन्यासों में प्रेम जैसे पवित्र क्षेत्र में आज के बदलते दौर में आयी विकृतियों तथा उसके दुष्परिणामों की न केवल खिल्ली उड़ायी गयी है, वरन व्यक्ति की अंतरात्मा को झकझोर कर उसे कुछ सोचने एवं करने को प्रेरित किया गया है। उनके व्यंग्य 'प्रेम–प्रसंग में फादर', 'बदचलन', 'तिवारी जी की कला', 'सुशीला', 'सर्वे और सुन्दरी', 'क्रान्तिकारी की कथा', 'एक भूमिका जैसा', 'बचाव पक्ष का बचपन', 'एक लड़की पाँच दीवाने', 'रमणीरमण मंत्री' आदि मे प्रेम के विषय में पर्याप्त चित्रण किया गया है। जो बहुत ही मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थपूर्ण हैं। उनके कई व्यंग्य रचनाओं में दहेज जैसी विकराल सामाजिक समस्या का समाधान प्रेम एवं प्रेम विवाह से करने का स्पष्ट संकेत मिलता है।

उनके लेख 'प्रेम–प्रसंग में फादर' में प्रेम जैसे संवेदनशील विषय पर गम्भीर एवं बड़ा मनोरंजक विवेचन मिलता है। वे प्रेम के तौर–तरीकों और प्रेम–जाल में फँसने या फँसाने सम्बन्धी नुख्सों के साथ बड़े विस्तार से इसका विवेचन करते हैं। साथ ही प्रेम जैसे विषय पर शोध तथा नई दृष्टि से विवेचन की भी सलाह देते हैं। इसमें प्रेमिका के प्रेमी को उसके 'फादर' को खुश करने की कला को प्रेमी की आवश्यक योग्यता माना गया है। बड़े ही चुटीले एवं व्यावहारिक संवादों के माध्यम से प्रेमी–प्रेमिकाओं की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के 'फादर' के प्रकार एवं स्वरूप की चर्चा की गयी है।

परसाई जी के व्यंग्य–लेख 'प्रेम–प्रसंग में फादर' के प्रेमी–प्रेमिका के संवाद बड़े ही मनोरंजक और उल्लेखनीय हैं– ''प्रेम प्रसंग में सबसे महत्वपूर्ण और विचारणीय विषय 'फादर' है– प्रेमिका के पिता को प्रेम की भाषा में 'फादर' कहते हैं। फादर का महत्व घोषित करने वाले ये उद्‌गार किसने नहीं सुने :–

– मैं क्या करूँ, फादर ने नहीं आने दिया।
– उस दिन फादर को शक हो गया था।
– फादर शाम को अक्सर घर में रहते हैं।
– फादर को कैसे समझाऊँगी कि इतनी देर क्यों हुई?
– अरे बाप रे, फादर सुनेंगे तो मार ही डालेंगे।
– उसने कहीं फादर को बता दिया तो?
– तुम्हीं न एक दिन फादर से बात कर लो।''[2]

इसी लेख में रिटायर्ड फादर एवं गैर–रिटायर्ड फादर के मध्य अन्तर को बड़े बारीकी से तथा विस्तार से बताया गया है। ये दोनों आधुनिक फादर के प्रकार हैं। इसमें प्रेम के चक्कर में कितनी यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं, उसका भी उल्लेख है।

''मैंने फादर की कोई बात नहीं टाली। वे जो भी कहते, उसमें मैं हाँ कहता। कभी उनकी बात का प्रतिवाद नहीं

किया और न कभी बहस की। फादर मुझे लड़के की तरह मानने लेगे थे।''[3] इसी में आगे उल्लेख है–

''मेरे मन में विद्रोह उठता। जी होता कि फादर को उठाकर जमीन पर दमच दूँ। पर यह सोचकर कि वे बुरा न मान जाएँ, मैं हाँ, हाँ करता जाता।''[4] प्रेमी ऐसा करता नहीं, क्योंकि 'फादर' की खुशी में ही उसका लाभ है। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य 'बचाव पक्ष का बचपन' में एक शिक्षक की प्रेम–सम्बन्धी समस्याओं की जटिलता का बड़ा मनोहारी चित्रण किया गया है। इसमें प्रेम के मामले में शिक्षक की विवशता का बड़ा ही यथार्थपूर्ण चित्रण है। लेख के एक शिक्षक पात्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है–

''मैं छः–सात साल एक स्कूल में मास्टर रहा। मास्टर होना एक अभिशाप है। आपने कोई प्रेमिका पटाई है। मिलने की जगह तय कर रखी है। पर एकाएक एक विद्यार्थी निकलता है। पूछता है– सर कैसे खड़े हैं? घबराकर मास्टर कहता है–रिक्शे का इंतजार कर रहा हूँ। वह कहता है– सर, मैं साइकिल पर जाकर अभी चौराहे से रिक्शा ले आता हूँ।''[5] अर्थात् छात्र ही बाधा डालता है।

परसाई जी के एक अन्य व्यंग्य 'प्रेम–पत्र और हेडमास्टर' में प्रेम–जगत् की विडम्बनाओं का बहुत सजीव एवं सार्थक रूप में चित्रण किया गया है। इसमें प्रेम सम्न्धी वर्जनाओं का अध्यापकीय दृष्टिकोण से विवचेन किया गया है। जिसमें वह अपनी सामाजिक–प्रतिष्ठा व मर्यादा के आवरण में अपनी नैतिकता का निर्वाह करता है तथा प्रेम जैसे मानवोचित गुण का विरस्कार करता है। एक हेड मास्टर ने लड़की को प्रेम–पत्र लिखने के कारण स्कूल से निकाल दिया। परसाई जी कल्पना करते हैं कि इसके बाद यह हुआ होगा कि–

''(अध्यापक ने) अपने प्रिय चमचे से कहा होगा–मास्साब, मुझे अनैतिकता बिल्कुल बरदाश्त नहीं है। इस मामले में मैं बहुत खराब हूँ। चमने ने कहा होगा–मास्साब, आपने बहुत अच्छा किया जो उसे निकाल दिया। ये आजकल के लड़के बहुत प्रेम करने लगे हैं। हमारी इतनी उम्र हो गयी, बाल–बच्चे हो गये, पर कोई बता दे, कभी प्रेम किया हो तो।''[6] इसी लेख में बहुत कटु व्यंग्य करते हुए अध्यापक के आचरण पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है– ''प्रेम पत्र बहुत पवित्र चीज है वह हेड मास्टरों के स्पर्श से दूषित हो जाता है। प्रेम पत्र और हेडमास्टर की दुश्मनी होती है। भूल से तेरे प्रेम–पत्र हमारे हाथ पड़ गये थे। आगे सावधानी बरतना, जैसे हम पखाने में सिगरेट पीते हैं।''[7] इस लेख में प्रेम सम्बन्धी विसंगतियों की बड़ी अच्छी तरह से खबर ली गयी है। यहाँ पवित्रता के लिए फामूर्ले बनाये गये हैं। एक फार्मूला यह भी है कि बुरी नजर से देखने वाले की भावना पाँव छूने से बदल जाती है।– ''क्यों रे, तू उस औरत को बुरी नजर से देखता है? उसे आजसे बहन मानना चल उसके चरण छू। उसने डरकर पाँव छू लिए। नियामक संतुष्ट हो गये कि मामला 'पवित्र' हो गया।''[8] समाज के लोगों की प्रेम के विषय में जो धारणा है, उसकी भी पोल इस लेख में खोली गयी है। उल्लेखनीय प्रसंग है– ''मुहल्ले में स्त्री–पुरूष की नजरों पर डंडा लेकर बैठे रहने वाले राधा–कृष्ण के प्रेम–विलास के पद आँखें बंद करके गर्दन हिलाते हुए गद्गद भाव से सुनते हैं– हरे नमः। वह भजन है। राधा और कृष्ण का मामला है। पवित्र है। ..... भजनीक ने सूरदास का पद गया– आज हरि नयन उनींदे आये! आगे इसमें रति–चिन्हों का प्रयोग है। भक्त डोलते हुए सुन रहे थे।''[9] – यह विरोधाभासी स्थिति है कि स्वयं प्रेम की पहरेदारी करने वाले प्रेम–विलास और रति–वर्णन का आँख–मूँदकर आनन्द लेते हैं। यह समाज का दोहरा मानदंड है जो परम्परागत रूप से चला आ रहा है। कितना बड़ा अन्तर्विरोध दिखाई देता है।

हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य–लेखों/कहानियों में सुशीला, तिवारी जी की कला तथा चौबे जी की कथा' भी उल्लेखनीय है, जिसमें प्रेम की माध्यम से दहेज जैसे विकराल सामाजिक समस्या के निराकरण का उपाय सुझाया गया है। 'सुशीला' नामक लघुकथा में सुशीला भागकर एक कायस्थ इंजीनियर के साथ 'कोर्ट–मैरिज' कर लेती है तथा उसके घर कुहराम मचता है। किन्तु सुशीला ने अपने पिता पांडे जी को चिट्ठी लिखी– ''पूज्य बाबूजी, आप बहुत दुःखी और

नाराज होंगे। मैंने रमेश वर्मा के साथ शादी कर ली है। रमेश को आप अच्छी तरह से जानते हैं। वह आपको बहुत पसंद भी है। आप उसकी बहुत तारीफ करते रहे हैं। मैं आपकी परेशानी देख रही थी। थोड़ी सी आपकी पेंशन है। कुछ प्राविडेंट फंड है। .....मेरी शादी अगर आप करते तो सारा प्राविडेंट फंड चला जाता और कर्ज भी हो जाता। आपका दुःख मैं समझती हूँ।''[10] इसी प्रकार 'तिवारी जी की कला' नामक लघुकथा में भी दहेज–लोभियों को ठेंगा दिखाकर प्रेम–विवाह कर प्रेमी अपने पिता को पत्र लिखता है– ''पूज्य पिता जी, रजनी के पिता पांडे जी आप से मिले थे। आपने उनसे तीस हजार माँगे थे। आपने उचित ही किया।पर पांडे जी की आर्थिक हालत अच्छी नहीं है। उनकी पुत्री को पुत्रवधू के रूप में पाकर आपको संतोष होगा। पर वे लोग मकान बेचकर बीस हजार का प्रबन्ध करने की कौशिश कर रहे हैं। मैंने सोचा अगर रजनी के पिता ने मकान बेचकर आपको रूपये दिये, तो वह परिवार संकट में पड़ जायेगा। और इसका असर रजनी पर पड़ेगा।''[11] इस प्रकार इस कहानी में प्रेम–विवाह को दहेज रूपी दानव के दहन की तरकीब के रूप में उपयोग किया गया है।

दहेज जैसी भीषण समस्या को परसाई जी के उपन्यास 'तट की खोज' में भी उठाया गया है। किन्तु इसका मूल प्रतिपाद्य प्रेम एवं तद्जनित संकटपूर्ण सामाजिक विडम्बनाएं हैं। जहाँ दहेज की मांग पूरी न हो पाने के कारण युवती शीला का विवाह नहीं हो पाता तथा उसके महेन्द्रनाथ से प्रेम और गुंडों से सुरक्षा हेतु महेन्द्र के घर में घुस जाने पर उसे कलंकित किया जाता है। जिसके कारण उसके पिता की असमय मृत्यु हो जाती है। शीला जहाँ भी आकर्षण और प्रेम का संचार करती है, वहीं अंततः ठुकरायी जाती है, अपमानित की जाती है। यद्यपि उसका प्रेम निश्छल एवं निष्कपट है किन्तु समाज रूढ़िवादी परम्परा में जकड़े होने के कारण इसे स्वीकार नहीं करता। शीला का वक्तव्य बहुत मार्मिक और समाज की मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। ''सिर नीचा करके चोरी की नजर डालने की अपेक्षा, माथा ऊँचा करके, ईमानदारी की दृष्टि डालना, अधिक अच्छा है। परन्तु ऊपर देखना बर्दाश्त नहीं किया जाता। जो ऊपर देख लेती है, उसे कलंक से पोत देने के लिए लोगों के मन के कटोरी में रंग तैयार होते रहते हैं। फिर किसी दिन जीभ की कूची से उसका चेहरा पोत दिया जाता है।''[12] यद्यपि बाद में शीला अपनी सहेली विमला के भाई मनोहर की ओर आकर्षित होती है, परन्तु वहां भी वह प्रेम में असफलता ही पाती है।

इस उपन्यास में प्रेम के एक उदात्त व आदर्श रूप की कल्पना की गयी है। स्वयं शीला के शब्दों में परसाई जी ने कहा है– ''मैं रात भर सोचती रही। रातभर कहाँ सोचती रही? सोचना तो 15–20 मिनट में समाप्त कर दिया, शेष रात मन उल्लास के लोक में विचरण करता रहा। .....उस रात मैंने जीवन भर की योजना निश्चित कर डली। घर बनाया और कमरों की संख्या निश्चित हो गयी। अध्ययन कक्ष कहाँ होगा, उसकी सजावट कैसी होगी, पर्दे का रंग, फर्नीचर की क्वालीटी, सुबह की चाय, शाम का भोजन। वे काफी पसंद करेंगे या चाय? कौन–सी चीज उन्हें अधिक पसन्द है? वे मुझे नौकरी करने देंगे या नहीं? पसन्द न होगा तो छोड़ दूँगी। यहाँ तक मैंने सोच लिया। मेरी गृहस्थी उस रात बस गई। मुझे लगा कि गृहस्थी हम लोगों की चरम साधना है। ..बच्चों को पहिले किंडरगार्टन भेजेंगे या घर पर ही पढ़ायेंगे– यह निर्णय मैं कर रही थी कि पिता जी का भजन शुरू हो गयी।''[13]

इस उपन्यास में जहाँ शीला समाज की दृष्टि में पाप की चलती–फिरती गठरी प्रतीत होती है, वहीं शीला सात्विक, आदर्श एवं त्यागमय प्रेम की प्रतिमूर्ति है। उसके स्त्री विषयक विचार बहुत साहसिक और क्रांतिकारी हैं। समाज के स्त्रियों सम्बन्धी धारणा पर वह कहती है– ''हाँ, स्त्री होना बहुत सी असमर्थताओं को भुगतना है। अबला कहा है तो अबला बनाकर ही छोडेंगे। जो अबला बनने से इंकार करेगी, उसे कुलटा बनायेंगे। अबला और कुलटा में से एक हमें चुनना होता है।''[14] उसके प्रेम में त्याग तो है, पर मिथ्या अभिमान के आगे आत्म–समर्पण नहीं है।

परसाई जी की कहानी 'एक लड़की पाँच दीवाने' की विषय–वस्तु प्रेम ही है। जिसमें एक ही लड़की से 5 व्यक्ति

प्रेम करते हैं। किन्तु लड़की इतनी चालू और सयानी है कि उन सभी प्रेमियों को 'उल्लू' बनाकर किसी दूसरे युवक से शादी कर लेती है। तथा माँग में मोटा सिंदूर पहनकर उन्हें जलाती है। इसमें पाँचों प्रेमियों के अलग–अलग प्रवृत्तियों व स्वभावों का बड़े मनोरंजक व यथार्थपूर्ण ढ़ंग से चित्रण है। साथ ही लड़की की चालाकी, काँइयापन तथा काम निकालने की कला का मनोहारी वर्णन है। उसकी चारित्रिक विशिष्टता ये है कि– ''लड़की छरहरी है। सुन्दर है और गरीब की लड़की है। मुहल्ला ऐसा है कि लोग 12–13 साल की बच्ची को घूर–घूर कर जवान बना देते हैं। वह समझने लगती है कि कहाँ घूरा जा रहा है। वह उन अंगों पर ध्यान देने लगती है। ब्लाउज को ऊँचा करने लगती है। नीचे कपड़ा रख लेती है। कटाक्ष का अभ्यास करने लगती है। पल्लू कब खसकाना और कैसे खसकाना, यह अभ्यास करने लगती है।''[15]

इसमें प्रेम–जाल में लड़की को फंसाने की विभिन्न तरकीबों तथा नुस्खों का अद्‌भुत निरूपण भी है। जैसे– लड़की के पिता को शराब पिलाकर प्रेमी ने शादी की बात छेड़ते हुए कहा– ''आपको लड़की की शादी भी तो करनी है। मिसिर जी ने झींकते हुए कहा– मुझे क्या चिंता? तुम जैसा दामाद किस..... वाले को मिलेगा?''[16]

परसाई जी का लघु उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' का विषय विविधतापूर्ण होते हुए भी मूलतः प्रेम पर केन्द्रित है। इसमें आधुनिक प्रेम में व्याप्त विसंगतियों और विडम्बनाओं का बहुत व्यवहारिक एवं स्वाभाविक रूप में चित्रण किया गया है। जो वर्तमान परिस्थितियों की जटिलता को व्यंग्यात्मक तरीके से उजागर करता है। इसमें प्रेमी–प्रेमिका के स्वभाव के साथ ही दहेज, जैसी विकराल सामाजिक समस्या का समाधान भी प्रेम विवाह से करने का संकेत दिया गया है। पात्रों के नामकरण 'यथा नाम तथा गुण' के सिद्धांत पर किये गये हैं। पात्रों के चरित्र बहुत स्वाभाविक एवं यथार्थपूर्ण हैं तथा वे आजकल के चलते–फिरते, अस्थिर प्रेम को सत्य रूप में उद्‌घाटित करते हैं। कुँवर अस्तभान तथा मुफतलाल की मित्रता के विषय में लिखा है– ''परीक्षा में दोनों एक–दूसरे की नकल करते, इसलिए अक्सर दोनों फेल हो जाते। बकरे की बोली बोलना दोनों ने एक साथ ही सीखा था और दोनों लड़कियों के कॉलेज के चौराहे पर साथ–साथ बकरे की बोली बोलते थे। इस प्रकार दोनों की शिक्षा–दीक्षा एक–सी हुई थी। पर एक राजकुमार था और दूसरा मुहासिब।''[17]

राजकुमारी नागफनी एवं उसकी सहेली करेलामुखी के आपसी संवाद तथा उनका पत्र–व्यवहार वर्तमान प्रेम के स्वरूप को स्वतः स्पष्ट कर देते हैं। उनकी वार्तालाप से प्रकट हो जाता है कि वर्तमान प्रेम में स्थिरता, पवित्रता, त्याग एवं सहानुभूति जैसे मानव–मूल्यों का पतन हो चुका है। उनके स्थान पर वासना, छल–छद्‌म, लोभ एवं स्वार्थ जैसे दोष मानव–स्वभाव में घर कर चुके हैं। अब त्याग एवं समर्पित टिकाऊ नहीं, अस्थिर, चलते–फिरते और क्षणिक प्रेम का बोलबाला है। नागफनी अपने प्रेम के टूटने पर अपनी सखी करेलामुखी से कहती है– ''कैसे धीरज रखूँ? तू ही बता सखि! आज पाँचवी बार मेरा प्रेम टूटा है। कितने आघात मेरे हृदय ने सहे हैं! अब तो मैं प्रेम करते–करते थक गयी हूँ।''[18] यह वार्तालाप आज के प्रेम की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है। प्रेम में धोखा खाने पर नागफनी आत्महत्या का संकल्प लेकर अपनी माँ को चिट्‌ठी खिती है, तथा अपने आपको धिक्कारती है–

''माँ, मैं तुम्हे छोड़कर सदा के लिए जा रही हूँ। मैं जीवन से निराश हो गयी हूँ। आज मुझे पाँचवे प्रेमी ने धोखा दे दिया। मैंने, पाँच बार प्रेम किया, पर किसी प्रेमी ने न मुझसे शादी की, न आत्महत्या की।'' आज की युवती स्वयं मन से प्रेम नहीं करती, लेकिन प्रेमी से प्यार में पागल होकर मरने की उम्मीद रखती है। इसी उपन्यास में राजा राखड़ सिहं के प्रेम जैसे शब्द से नफरत करने का बहुत सहज चित्रण है। वे नागफनी को अस्तभान द्वारा लिखा पत्र पकड़ लेने पर क्रोध में कहते हैं कि– ''हो गया है? (प्रेम) अब अगर उस बदमाश अस्तभान को चिट्‌ठी लिखी तो मैं तुम दोनों का सिर काट लूँगा। मैं तेरी शादी जल्दी ही करने वाला हूँ।''[19] राजा ने आँखे तरेरकर कहा– उससे नहीं हो सकती। वह बदमाश है। वह दूसरों की लड़कियों को प्रेम पत्र लिखता है। लुच्चा कहीं का।''[20] किन्तु राजा का यह क्रोध मात्र प्रेम के कारण

नहीं, बल्कि दहेज न मिलने की सम्भावना के कारण है। यदि दहेज में खूब पैसे और सामान मिले तो उसे प्रेम–विवाह भी स्वीकार है। इस प्रकार का दो मुँहापन व्यक्ति के स्वभाव में बहुत देखने को मिलता है। प्रेम के चक्कर में प्रेमी–प्रेमिकाओं की शारीरिक और मानसिक दशा कैसी हो जाती है, इसका विशद् वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। बहुत मनोरंजक किन्तु यथार्थपूर्ण रूप में अस्तभान की शारीरिक दशा का चित्रण किया गया है– ''उसने आस्तीन चढ़ाकर अपनी भुजाएं देखीं और कहा– मित्र, जरा देख तो। मेरी इन भुजाओं में बल है? मुफतलाल ने भुजाएं टटोलकर कहा– नहीं है। तो फिर? अस्तभन ने आँखें फाड़कर कहा– आपकी इन भुजाओं के बल को अपील करने से कुछ नहीं होगा। ये प्रेमिकाएं बड़ी विचित्र होती हैं। ये पहले नहीं बतातीं कि आगे बाहुबल का काम पड़ेगा। जब प्रेमी इनके विरह में टिटहरी हो जाता है, तब खबर भेजती हैं कि भुजाओं में बल हो तो मुझे ले जाओ। सारा बल छीनकर बल की दुहाई देती हैं।''[21]

सारांश :–

हरिशकर परसाई जी की व्यंग्य रचनाओं में प्रेम के सम्बन्ध में किसी आदर्श रूप की कल्पना नहीं है बल्कि व्यावहारिक धरातल पर उसके स्वरूप का विवेचन किया गया है। पुराने मानदण्ड–त्याग, समर्पण, सहानुभूति, बलिदान, सेवा आदि पृष्ठभूमि के रूप में तो हैं, किन्तु मुखर एवं प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान में प्रेम में आयी विकृति, काइयांपन, स्वार्थ, लोभ, विषय–वासना तथा भोग की प्रवृत्तियां हावी हैं। आज प्रेम नहीं प्रेम के नाम पर सर्वत्र प्रदर्शन, ढ़ोंग, छल–प्रपंच का ही बोलबाला है। इसीलिए परसाई जी ने डेरों, आश्रमों में चलने वाले गोरखधंधे को बहुत कठोर एवं बेबाक ढ़ंग से व्यक्त किया है। प्रपंच गिरि के माध्यम से योगियों, पाखंडियों एवं साधुओं के काले–कारनामों की पोल खोली गयी है। जो नागफनी को अपनी चालाकी से महल से निकालने और अस्तभान की शादी कराने हेतु तैयार हो जाता है। उनके व्यंग्यों में प्रेम जैसे संवेदनशील मुद्दे पर हास्य–पूर्ण कटाक्ष है, जिसे समझने पर हंसी तो आती है किन्तु बाद में बड़ी करूणा उत्पन्न होती है। साथ ही राजाओं की विलास–प्रियता भी अपने चरम रूप में प्रेम को कलंकित करते हुए दर्शायी गयी है। राजा निर्बल सिंह मरणासन्न अवस्था में होते हुए भी युवती से विवाह करने को लालायित है। समाज के तथाकथित आदर्श माने जाने वाले लोग जैसे– अध्यापक भी प्रेम को विकृत करने में सहयोग देने का काम करते हैं। कितनी विडम्बना है कि प्रेम जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाले 'सेतु' के रूप में काम करता है, उसके विषय में लोगों की मानसिकता, धारणाएं एवं मान्यताएं बदल चुकी हैं। कृत्रिमता, पाखण्ड एवं व्यभिचार प्रेम में सम्मिलित होकर उसे कलंकित और विकृत बना रहे हैं। जबकि प्रेम बाहर की नहीं अभ्यांतर की वस्तु हैं। आज मानव जाति व सृष्टि को बचाने के लिए सात्विक और मूल्य आधारित प्रेम की आवश्यकता है। जिससे मनुष्य, मनुष्य के काम आ सके। सृष्टि में समरसता बनी रहे।

सन्दर्भ संकेत :–

1. विश्वनाथ त्रिपाठी – देश के इस दौर में– (2000) पृ0–11–12
2. हरिशंकर परसाई, 'प्रेम–प्रसंग में फादर' पगडंडियों का जमाना– 2018 पृ0– 36
3. वही '' '' '' '' '' पृ0– 37
4. वही '' '' '' '' '' पृ0– 37
5. हरिशंकर परसाई, बचाव पक्ष का बचपन, वैष्णव की फिसलन– 2016 पृ0– 84
6. हरिशंकर परसाई, प्रेम पत्र और हेडमास्टर, शिकायत मुझे भी है– 2018 पृ0– 111
7. वही '' '' '' '' '' पृ0– 111
8. वही '' '' '' '' '' पृ0– 112
9. वही '' '' '' '' '' पृ0– 113

10. हरिशंकर परसाई, सुशीला, विकलांग श्रद्धा का दौर– 2018 पृ0– 138
11. हरिशंकर परसाई, तिवारी जी की कला, विकलांग श्रद्धा का दौर– 2018 पृ0– 142
12. हरिशंकर परसाई, तट की खोज, पृ0– 24–25
13. हरिशंकर परसाई, तट की खोज, पृ0– 27–28
14. वही '' '' '' पृ0– 73
15. हरिशंकर परसाई, एक लड़की पाँच दीवाने, प्रतिनिधि व्यंग्य– 2017 पृ0– 122–123
16. वही '' '' '' '' '' पृ0– 130
17. हरिशंकर परसाई, 'रानी नागफनी की कहानी'– 2013 पृ0– 9
18 वही '' '' '' '' पृ0– 19
19. वही '' '' '' '' पृ0–21
20. वही '' '' '' '' पृ0– 59–60
21. वही '' '' '' '' पृ0– 73

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 146-148

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेम एक सरोकार के रूप में : "सपनों की होम डिलिवरी" के संदर्भ में

–डॉ. षीबा शरत.एस

असोसियेट प्रोफसर, टी.एम.सरकारी कालेज, तिरूर, केरल।

प्रेम की शक्ति दुनिया के सब हथियारों से तीखा है। उसका असर हमारी आत्मा तक पहुँचता है। इतनी प्रभावशाली अनुभूति का अहसास विश्वास में निहित है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा – जहाँ प्रेम है वहाँ विश्वास है। उनका प्यार वैयक्तिकता से बाहर विश्व प्रेम में बदलता है। वैयक्तिक प्रेम में अपनापन ज्यादा होने से पोसेस्सीवनेस्स (Possessiveness) जाग उठता है। आजकल पुरुष के समान नारी भी ज़िन्दगी का फैसला करने में हक के साथ आगे आती है। आपस की समझौता प्रेम को अनश्वर बनाता है।

"सपनों की होम डिलिवरी" श्रीमती ममता कालिया का सन् 2016 का उपन्यास है। ममता जी इसमें प्रेम को नए वक्त के साथ ताल बिठाने की कोशिश कर रही है। इसकी नायिका रुचि शर्मा चालीस साल की है तो नायक सर्वेश नारंग पच्चास प्लस का है। इसमें प्रेम एक सरोकार के रूप में आता है। सर्वेश नारंग के औचित्यपूर्ण, विवेकी, परिपक्क व्यक्तित्व के कारण प्रेम सफल बन जाता है। खुद मन से घायल होकर भी अपनी पत्नी एवं परिवार को समेटने में वह कामयाब बन जाता है। सच्चा प्रेम हमेशा सुरक्षित रहता है। आधुनिक सभ्यता ने उनके जीवन को सुन्दर व आकर्षक बनाया है। "सपनों की होम डिलिवरी" नामक उपन्यास की नायिका रुचि शर्मा एक प्रसिद्ध पाककला विशेषज्ञ है। टीवी चौनलों पर उसका दो कार्यक्रम "सुरुचि" और "स्वाद" आता है। दोनों कार्यक्रमों में वह अपनी प्रभावशाली मुद्रा से दर्शकों को आकर्षित करती है। आधे घंटे के कार्यक्रम में रुचि दो व्यंजन प्रस्तुत करती। रुचि के नाम से व्यंजन पुस्तकों की श्रृंखला पाँच भाषाओं में अनुदित होकर छपती है। जैसे, रुचि की रसोई रुचि के रसीले व्यंजन, रुचि के नाश्ते, रुचिर पकवान, रुचि रसना आदि। अपने कार्यक्रम के संबन्ध में उसे कई प्रशंसा पत्र मिलती है। लेकिन एक बार पच्चास उम्र का एक खोजी पत्रकार सर्वेश नारंग ने चैनल में पत्र भेजकर शिकायत की कि रुचि के द्वारा पिछले कार्यक्रम में बनाए दलीयभरी आलू टिक्की उसके माँ ने घर में बनाया तो रात में यह खाकर माँ को वायु और बदहज़मी का दौरा पड़ गया। दिलचस्प खत लिखने वाले दर्शक को कार्यक्रम में बुलाता है। इससे कार्यक्रम की टी.आर.पी. बढ़ जाती है। सर्वेश ने रुचि के व्यंजन को चुनौती दी तो कार्यक्रम निर्देशक ने निर्णय लिया कि ऐसे दर्शक को कार्यक्रम में बुलाकर शान्त कराना आवश्यक है नहीं तो वह नकारात्मक वातावरण बनाता रहेगा। सर्वेश ने चैनल के कार्यक्रम में आकर अपनी ओर से परिवर्तित विधि प्रस्तुत किया। औपचारिकतावश सर्वेश और रुचि के बीच विज़िडिंग कार्ड का आदान–प्रदान होता है। एक दिन कूरियर सर्वेस से रुचि को एक कार्ड मिला। उसमें लिखा था– क्या तुम मेरी वेलेंटाइन बनोगी? वह कार्ड सर्वेश का था। यहाँ से दोनों की प्यार शुरू होती है। धीरे–धीरे चौट या एस.एम.एस. से दोनों बहुत करीब आये। किसी के द्वारा अत्यधिक प्रेम मिलने से हमें शक्ति मिलती है और साहस भी। उसी प्रकार कार्यक्रम प्रस्तुत करते वक्त अब रुचि में अतिरिक्त ऊर्जा आ गई।

कैफे कॉफी डे में दोनों मिलते रहे। सर्वेश ने रुचि से कहा कि तीन साल पहले अपनी पहली पत्नी मनजीत से तलाक ले चुका है। मनजीत अमृतसार के टेलिफोन एक्सचेंज में काम करती है। दोनों को अंश नामक सत्रह साल का

एक बेटा है जो अपनी माँ के साथ रहती है। तलाक के बाद सर्वेश होशियारपुर से अपने माँ को लेकर वर्लो के फ्लैट में रहते हैं। सर्वेश ने अपना उम्र पच्चास प्लस कहा तो रुचि ने कहा कि उसका उम्र चालीस है। रुचि भी तलाकशुदा है। उसका पति प्रभाकर शर्मा है। उसने अभी तक दूसरी शादी नहीं किया। उसे जीवन में शादी का मतलब शरीर था जो वह कहीं भी जाकर प्राप्त कर लेता था। प्रभाकर और रुचि का इकलौता बेटा गगन है। वह सत्रह साल का है। रुचि ने स्वेच्छा से गगन की परवरिश का अधिकार प्रभाकर को दे दिया। पैसों के लिए गगन माँ को तंग करता था। लेकिन रुचि ने अपने बेटे की बात सारंग से छुपा रखा।

सर्वेश और रुचि का प्रेम तीव्र बन जाते हैं। एक बार सर्वेश ने उससे खुल्लम–खुल्लम कहा कि मैं तुम्हारे कमरे में चलकर इतवार के दोपहर का अमूल्य समय का सदुपयोग करना चाहता हूँ। यह सुनकर रुचि सन्न रह गई। उसने कहा कि –"मेरा कमरा हर किसी का प्रवेश बर्दाश्त नहीं करता।"[१] रुचि को लगा उसका पौरुष चोट खा गया।

इस घटना के बाद रुचि का वाट्स अप का इनबॉक्स सर्वेश के नाम पर खाली था। एक दिन रुचि ने सर्वेश को मेसेज भेजा। उत्तर मिला कि उसका बेटा अंश ड्रग्ज़ ज्यादा लेने से मर गया। रुचि सर्वेश के फ्लैट में आती है। वहाँ उसकी माँ बीजी और नौकरानी मंदा थी। सर्वेश बहुत दुःखी है। उसने रुचि से कहा– "अकेली बनी रहने से कहीं बेहतर है तुम अपना लैपटॉप और सूटकेस लेकर यहीं चली आओ।"[२] रुचि के मन में पहली शादी की लाख कड़वाहट है और बिना शादी के सर्वेश के साथ सहजीवन के लिए वह तैयार नहीं थी। कैफे काफ़ी डे में बैठकर सर्वेश ने रुचि का हाथ दबाकर कहा– "मेरी ही रहना, मैं इन्तज़ार कर लूँगा।"[३] प्रेम की अनुभूति में दोनों खुश थे। अपने–अपने कार्यक्षेत्र में व्यस्त रहकर भी दोनों तुष्ट थे। रुचि के कार्यक्रों में प्यार के उमंग का प्रतिबिंब पड़ रही थी। कार्यक्रम में व्यंजन बनाते या परोसते वक्त वह कल्पना करती कि यह सर्वेश को देता है। सर्वेश भी 'खुलासा' टीम के साथ नये काम में व्यस्त था।

एक मुलाकात में सर्वेश ने रुचि से कहा कि पहले चैनल के कार्यक्रम में आने का उनका मकसद रुचि तक पहुँचना था। वह रुचि के पास पहुँचने का उनका प्रवेश पत्र था। रुचि ने सर्वेश की प्यार की गहराई को समझा। दोनों की मन की बेचैनी सिर्फ कैफे कॉफी डे में बैठने से दूर नहीं होती। वे दोनों रुचि के फ्लैट पर गये। एक साथ बिस्तर पर लेटे। सर्वेश को लगा उनकी बरसों की थकान दूर हो गई और वे आज़ाद हुये। रुचि को लगा कुछ हल्का हो गयी है। सर्वेश ने रुचि से कहा – "रिची हम एक दूसरे के पन्द्रह अगस्त बनेंगे। तुम मेरी छब्बीस जनवरी, मैं तुम्हारा पन्द्रह अगस्त। हम ऐसा रिश्ता बनाएँगे जिसमें खूब खुलापन हो। तुम अपना काम करती रहो, मैं अपना काम करता रहूँ। बाहर की सारी दौड़–धूप के बाद जब मैं घर आऊँ तो मुझे तुम मिलो।"[४] दोनों ने दो मित्रों की उपस्थिति में नोटरी से विवाह की रजिस्ट्री करवाई।

नूतन प्रणाली निर्मित कर रुचि और सर्वेश ने जीना शुरू किये। अपने कर्मक्षेत्र की व्यस्तताओं का ख्याल दोनों करते थे। दोनों के बैंक खाते अलग थे। कोई किसी के आय–व्यय में हस्तक्षेप न करता। रुचि पूर्ण रूप से आज़ाद इस बात पर थी कि जब वह अपने फ्लैट जाकर रहना, काम करना चाहती है तो उसे पूरी स्वतंत्रता थी। रुचि के दोस्त कहते हैं कि वह बड़ी किस्मतवाली है। कभी सर्वेश अपने बेटे की याद में मग्न होतो रुचि के मन में अपराध बोध आती है कि उसने गगन संबंधी बातें उससे छुपाकर रखी है। इसलिए बेटे की बातें वह पति से बाँट नहीं सकती थी।

एक दिन गगन माँ को ढूँढ़कर ओशिवरा पहुँचाता है। रुचि ने गगन को अपने फ्लैट में रखा। काम के बाद रुचि की अनुपस्थिति में फ्लैट पर पहुँचे सर्वेश सब कुछ समझता है। इसके संबन्ध में पति–पत्नी में मनमुठाव चलता है। उसने रुचि से कहा – "जब मैं बाप नहीं रहा तब तुम्हें भी मैं माँ नहीं रहने दूँगा।"[५] कैफे कॉफी डे में बैठकर सर्वेश ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर रुचि की गर्दन पकड़ ली। उस समय यह दृश्य देखकर वहाँ बैठे एक महिला पत्रकार ने अपने मोबाइल फोन पर यह दृश्य खींचा। अगले दिन के अखबारों में यह तस्वीर छपकर आई। तस्वीर के नीचे लिखा था कि

रुचि की रसोई का स्वाद बेस्वाद है। दोनों के सम्मुख हज़ारों सवाल आये। अपने–अपने ढंग से दोनों ने इसे टाल दी थी।

रुचि को लगा उसका सुख का सपना दूसरी बार टूटी है। वह अकेली बन गई। तीन दिन से गगन कहीं पर है। पति और पुत्र दोनों की ज़्यादती वह सहने को तैयार नहीं थी। उसने कामकाजी लड़कियों के होस्टल में जाना चाहा। होस्टल जाने से पहले उसने अपनी ईमेल खोला तो उसमें ग्यारह घंटे पहले के सर्वेश का मेल हो पाया। उसमें लिखा था कि दो रोज़ पहले उनके 'खुलासा' टीम को चरस के अड्डे से एक सत्रह–अठारह साल का लड़का मिला। वह पेट दर्द से बेहाल था। नशे की ओवरडोज़ से उसका हाथ–पैर पटक रहा था। सर्वेश ने उस लड़के को अपना घर ले आया। ईमेल पढ़ते ही तुरंत रुचि ने सर्वेश के फ्लैट में आई। देखा कि वह लड़का उसका गगन है। सर्वेश ने दो दिन का घटनाक्रम उसे सुनाया। सुनकर रुचि ने कहा कि उसने गगन को जीवनदान दिया है। गगन को लेकर रुचि लौटना चाहा तो सर्वेश ने रुचि से ऐसा कहा– "कहाँ जाओगी? यह तुम्हारा घर हैं, मैं तुम्हारा हूँ, बीजी और गगन भी तुम्हारे हैं। हम सब साथ रहेंगे।"[६] सर्वेश का प्रस्तुत वचन यह साबित करता है कि प्रेम की शक्ति नफ़रत की ताकत से हज़ारों प्रभावशाली होती है। प्रेम से भरा हृदय अपने प्रेम पात्र की भूल पर दया करता है और खुद घायल हो जाने पर भी उससे प्यार करता है। इसलिए ही सर्वेश ने बेटे सहित रुचि को अपनाया। सर्वेश की बात सुनकर रुचि ने कहा कि तुम मेरे पन्द्रह अगस्त हो। यहाँ पर उपन्यास का अंत होता है।

सच्चा प्रेम कभी नहीं टूटती। रुचि से अलग रहकर भी सर्वेश उसे प्यार करता है। उसने सोचा कि उसके जीवन का अकेलापन चंचल रुचि की वजह से दूर हुआ है। उसके आते ही घर में व्यवस्था आई। सही अर्थों में सर्वेश ने रुचि को अपना छब्बीस जनवरी माना। सर्वेश कहते हैं कि सभी अर्थों में रुचि उनके सपनों की होम डिलिवरी है। रुचि भी सर्वेश को चाहती रही। क्योंकि सर्वेश से उसे दोस्त, हमदम ही नहीं एक सलाहकार की तिहरी उपस्थिति मिलती थी। इस प्रकार गहरे, सच्चे प्रेम ने आदमी को आदमी बनाकर ज़िन्दगी आराम से बनाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 31
2. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 53
3. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 55
4. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 58
5. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 84
6. सपनों की होम डिलिवरी – ममता कालिया, पृ.सं. 96

Mob:9447743225

sheebasaraths@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 149-152

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तुलसीदास के काव्य के प्रमुख संदर्भ और महत्ता

–श्यामवीर सिंह

शोधार्थी–हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ।

तुलसी काव्य पर दृष्टिपात करें तो यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि तुलसी के पात्र एक ओर यदि शास्त्रीय गुणों से ओत–प्रोत बन पड़ते हैं तो दूसरी ओर कवि ने उनको डटकर शीलत्व से सम्बन्धित किया है। वास्तव में तुलसी यह नहीं चाहते कि राम के चरित्र को लौकिक पुरूष के रूप में देखकर कोई उसे आलोचना का विषय बनायें। वे तो हर दृष्टि से आदर्श ही हैं। राम के चरित्र में जो लोग त्रुटियाँ देखते हैं वे तुलसी की अनुभूति के साथ तादात्म्य करने में असमर्थ हैं। तुलसी की दास्यभाव की भक्ति ही राम के प्रति जागृत है। अतः अधिकांश पात्रों में भी उसी भाव की प्रतिष्ठा की गई है। इसका प्रभाव यह पड़ा है कि राम में सर्वत्र उपास्य रूप ही बना रहता है। ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति उनके चरित्र को एक सीमा तक अनुकरणीय बना सकता है। जो अलौकिक सौन्दर्य और शक्ति है। वह निश्चय ही भक्ति–भावना को जागृत करने में सहायक है। उसका अलौकिक प्रभाव पड़ता है तथा उनकी शक्ति भी अलौकिक कार्य सम्पादन करती है। वे भक्तिभाव से परिचालित आदर्श समाज के स्वामी, रक्षक और मित्र हैं तथा भक्ति प्रेरित समाज व्यवस्था के प्रतिष्ठापक हैं।

भारत में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था इतनी अधिक उखड़ी–उखड़ी है कि संसार में किसी अन्य धर्म के मानने वालों की उतनी नहीं है। यह महाकवि के काल से पहले से चली आ रही है और आज भी चलती चली जा रही है। इस व्यवस्था को समन्वित करने का अर्थ है– जाति और वर्ण की अस्वीकृति। तुलसी ने जब वर्णाश्रम के आदर्श पर समन्वित करने का प्रयत्न किया तब उन्हें वर्ण को जन्म अर्थात् जाति से सम्बन्धित मान लेना पड़ा और वर्णों के कर्त्तव्यों को जन्म के आधार पर ही उनके जिम्में कर दिया गया, व्यवहार में मानना न मानना उनके हाथ की बात स्वीकार कर ली गई। व्यवहार में उच्चता की दो कसौटियाँ उन्हें स्वीकार करनी पड़ीं–प्रथम, वर्ण या जाति की तथा दूसरी, भक्ति की। निषाद शुद्र होने से प्रथम कसौटी के अनुसार नीचा है परन्तु दूसरी कसौटी के अनुसार वशिष्ठ के गले लगने का अधिकारी है, भरत की श्रद्धा का पात्र है एवं राम का भरत–सा भाई है। तुलसी के युग के लिये यह समन्वय ठीक भी था।

उस काल में वैष्णव सम्प्रदायों में अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और द्वैतवाद कुछ विरोध सा उत्पन्न कर रहे थे। तुलसीदास ने श्रीमद्भागवतपुराण के आदर्श को लेकर उन्हीं का किया हुआ समन्वय स्वीकार कर लिया। राम का जो रूप उन्होंने स्वीकार किया उस पर किसी भी वाद वाले को आपत्ति नहीं हो सकती थी।

तुलसी ने भारतीय संस्कृति और विचारधारा में अनुस्युत् समन्वयकारक तत्त्वों को पहचाना तथा उनका उपयोग अपनी रचनाओं में इस प्रकार किया कि वह अधिकाधिक लोगों को मान्य हो सका, यही इसका वैशिष्ट्य है और यही महत्त्व। तुलसी दर्शनों द्वारा स्वीकृत ज्ञान परम्परा को ही स्वीकार्य मानते थे। यही कारण था कि संतों जैसे ज्ञानमार्गियों पर वे इतने बिगड़ उठते थे कि उनका भक्त रूप दब जाता था और लोक व्यवस्था का पक्षधर रूप ऊपर आ जाता था।

तुलसी की भक्ति की सरलता इसी में है कि सीधे राम से प्रेम करना है, जिसमें किसी साधन आदि की आवश्यकता नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य सहज वृत्तियों से संचालित होता है। अतः भाव द्वारा किसी के साथ सम्बन्ध स्थापित करना उसके लिए स्वाभाविक है, बुद्धि द्वारा बोध–मात्र होने से सम्बन्ध–स्थापन के लिए उससे भाव का सम्पृक्त होना अनिवार्य है। तुलसी इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्ञान और भक्ति की तुलनात्मक स्थिति को विचित्र बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

तुलसी रामभक्त ही थे, बेशक उन्होंने राम–कृष्ण–शिव का समन्वय किया और इस प्रकार अपने उदार धार्मिक दृष्टिकोण का परिचय दिया हो। उनके इसी रामभक्त होने का परिणाम है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में 'राम' या 'रामकथा' को ही अपनाया है, गाया है। रचनाओं का कथ्य और रूप इसी के साक्षी हैं। यूँ, मात्रा की दृष्टि से भी तुलसी की रचनाएँ कम नहीं हैं, गुण की दृष्टि से तो अत्यन्त समर्थ है हीं। एकदम सच तो यह है कि अपने सम्पूर्ण कृतित्व में तुलसी आद्योपांत 'राममय' बने रहे हैं–'प्रिय लागिहि अति सबहिं मम भनिती राम जस संग' उनकी काव्य–रचनाएँ इसी सत्य की उद्घोषक हैं।

तुलसी की भक्ति भावना में नवधा–भक्ति और नारद–भक्ति सूत्र की ग्यारह आसक्तियों के भी लक्षण देखे जा सकते हैं, किन्तु सभी में तुलसी का दैन्य मुखर होता रहता है। तुलसी का भक्त हृदय सर्वत्र दैन्य भावना से अपने आराध्य के सामने उपस्थित हुआ है और अपना सारा दायित्व अपने इष्ट देव पर डाल देता है। भगवान राम की कृपा ही तुलसी के लिए सर्वोपरि और सब कुछ है।

तुलसी का दार्शनिक तत्वचिन्तन एक सच्चे भक्त के रूप में अभिव्यक्त हुआ है न कि तत्वचिंतक दार्शनिक के रूप में। इसीलिए तुलसी के ब्रह्म, जीव–जगत् और माया सम्बन्धी दर्शन के केन्द्र में भक्ति विद्यमान है। भक्ति तुलसी की साधन भी है और साध्य भी। तुलसी ने निर्गुण–सगुण में कोई भेद नहीं माना है–'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।' निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकारते हुए भी तुलसी ने ईश्वर के सगुण रूप को ही ग्रहण किया है, क्योंकि भक्ति के लिए ईश्वर का सगुण रूप ही सहज ग्राह्य है। उसकी सरस अनुभूति भक्त के हृदय में भक्ति का संचार करती है।

इसी प्रकार तुलसीदास भक्ति और ज्ञान दोनों को एक मानते हुए भक्ति का ही पक्ष लेते हैं, क्योंकि भक्ति का मार्ग उन्नयन का मार्ग है और ज्ञान का मार्ग दमन का मार्ग है। गीता में श्रीकृष्ण भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग में भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। तुलसी के राम परमब्रह्म हैं। जगत् की सृष्टि एवं उसका पालन करने के लिए विष्णु उसी परमब्रह्म के अवतार हैं। अतः तुलसी ने राम को निर्गुण ब्रह्म और सगुण दोनों माना है।

तुलसी का मर्यादा भाव सप्रयोजन है। लोक प्रचलित 'राम' के नाम–रूप और चरित्र को मर्यादा पुरूषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित करने के मूल में तुलसी की लोकमंगल की साधना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति हुई है। तुलसी का मर्यादा भाव उनकी भक्तिभावना, शीलनिरूपण एवं चरित्र–चित्रण, सामाजिक और सांस्कृतिक संघटन अनेक आयामों में दृष्टि–गोचर होता है। यहाँ तक कि राम–सीता के प्रथम मिलन में उत्पन्न प्रेम सौन्दर्य की व्यंजना में भी तुलसी मर्यादा का पूरा ध्यान रखते हैं। मर्यादा के निम्नलिखित तत्व बताए गए हैं– आत्म त्याग, शील, सत्यनिष्ठा और पवित्रता। तुलसी के सभी आदर्शवादी पात्र मर्यादा के इन्हीं तत्वों से परिपूर्ण हैं। पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में तुलसी ने आदर्शों की जो संकल्पना की है, वह उनकी मर्यादावादी दृष्टि की ही परिणति कही जा सकती है।

तुलसी लोकधर्मी कवि हैं। लोक धर्म में मर्यादा और शील मूल्यों की प्रतिष्ठा अनिवार्य मानी गई है। तुलसी की भक्ति के संदर्भ में यदि उनकी मर्यादावादी दृष्टि की विवेचना करें तो वहाँ न तो कबीर की तरह खण्डन और डाँट–फटकार

की अधिकता है, न सूर का लोक मर्यादा विहीन माधुर्य भक्ति का लीला संसार। यदि शीलसाधना और भक्ति का सदाचार से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना जाय तो उसका सर्वोत्तम रूप 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' में देखा जा सकता है। वस्तुतः तुलसी की कवि दृष्टि के केन्द्र में लोकनीति और लोक मर्यादा का भाव सदैव विद्यमान रहा है। तुलसी के सामाजिक आदर्श की विवेचना के लिए तुलसी के समय की उत्तर भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों और समाज पर पड़ने वाले उनके प्रभाव को ध्यान में रखना होगा। तुलसी का समय समाज में धर्म और कर्म की अराजकता का दौर था। सांस्कृतिक रूप में भक्ति आन्दोलन अपने चरम पर पहुँच चुका था, किन्तु उसको एक समग्र अथवा केन्द्रीय प्रभाव के रूप में नियंत्रित करने वाला कोई लोकनायक नहीं था।

तुलसी ने अपने समय की स्थिति को भलीभाँति परखते हुए सामाजिक आदर्श की संकल्पना समन्वय के रूप में की। उन्होंने कबीर की तरह क्रान्तिकारी समाज सुधारक की भूमिका नहीं ग्रहण की, बल्कि अपनी भक्ति संवेदना को सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों से सम्पृक्त करते हुए लोक नायक की भूमिका का निर्वाह किया। तुलसी की भक्ति में परस्पर विरोधी तत्वों को समन्वित करने की भरपूर चेष्टा दृष्टिगोचर होती है, समन्वय तुलसी के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। तुलसी की भक्ति अन्य भक्त कवियों की तरह ऐकान्तिक नहीं वरन् समाज सापेक्ष है। उसमें परमार्थ के साथ लोकमंगल की साधना भी है। तुलसी की लोकमंगल की साधना स्वान्तःसुखाय से आरम्भ होकर 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई' के रूप में बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय तक की साधना है।

तुलसीदास का समय मध्ययुगीन सामंतीयुग है। तुलसी की रचनाओं में अपने युग की अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई है। 'मानस' में वे अपने युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक विसंगतियों को दूर करने के लिए 'रामराज' की आदर्शवादी कल्पना करते हैं। राजा–प्रजा, समाज के सभी वर्ग, परिवार के सभी सदस्यों के बीच मर्यादा, प्रेम, स्नेह एवं कर्त्तव्य भावना को प्रेरित करने के लिए तुलसीदास राम, भरत, सीता, लक्ष्मण, शबरी, निषाद, हनुमान, विभीषण आदि चरित्रों की सर्जना करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रामचरितमानस' में तुलसी का युगबोध प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त हुआ है। वहाँ रामराज्य का भावनालोक है।

परन्तु तुलसीदास की अन्य रचनाओं 'कवितावली', 'विनय पत्रिका' और 'हनुमान बाहुक' में युगबोध अपने यथार्थ रूप में है जिसमें तुलसीदास केवल दृष्टा नहीं, अपितु भोक्ता भी हैं। 'कवितावली' में तुलसी ने जिस 'कलिकाल' की व्यथा–कथा का वर्णन किया है, वह वस्तुतः 16वीं–17वीं शताब्दी के उत्तर भारत का युगीन चित्रण है, जहाँ अकाल, महामारी, दारिद्रय, वर्ण भेद, जाति भेद आदि विषमताएं हैं। इन विषमताओं की मार तुलसी को भी सहनी पड़ी थी। अपने जीवन की दारिद्रय की पीड़ा को तुलसी प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद भी नहीं भूलते।

तुलसी का काव्य युगीन बोध की अभिव्यक्ति और युगीन आवश्यकताओं की संकल्पना का काव्य है। युगीन आदर्शों की संकल्पना 'मानस' में हुई है। तो युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति अन्य रचनाओं में। सामाजिक दृष्टि से तुलसी अपने युग की विद्रूपताओं से परिचित थे। इसलिए वे भिन्न–भिन्न मतावलम्बियों को राम भक्ति के माध्यम से एक भक्ति भाव में लाना चाहते हैं। वे निर्गुण–सगुण में एकत्व की बात करते हुए अपनी जागरूक सामाजिक संवेदना का परिचय देते हैं। साथ ही तुलसी शबरी, निषाद, कोल–किरात आदि निम्न वर्गों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए सामाजिक पक्षधरता का संकेत करते हैं।

तुलसी ने स्वान्तः सुखाय मानस की रचना की है। जैसा कि उन्होंने कहा भी है–'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' किन्तु तुलसी के लिए काव्य रचना वही श्रेष्ठ है, जो सुरसरि अर्थात् गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

तुलसी को लोक कल्याण अथवा लोक मंगल राम की भक्ति में ही दिखाई पड़ा। अतः उन्होंने राम के मर्यादा पुरूषोत्तम और लोक रक्षक चरित्र को मानस की प्रबन्ध कथा का मूल आधार बनाया।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. महाकवि तुलसीदास और युग सन्दर्भ– भगीरथ मिश्र
2. तुलसी सन्दर्भ– डॉ0 नगेन्द्र
3. तुलसी आधुनिक वातायन से–रमेश कुन्तल
4. तुलसीदास––आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5. गोसांई तुलसीदास–आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
6. तुलसी काव्य मीमांसा– डॉ0 उदयभानु सिंह

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 153-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समाज में नारी एक प्रेम के स्वरूप में

–सुभाष कुमार नौहवार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज मेरठ, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ उत्तर–प्रदेश।

सबसे पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि समाज क्या है? तब हम उसमें नारी के प्रेम स्वरूप को उजागर कर सकते हैं। मैकाइवर और पेज के अनुसार " समाज चलनों व प्रणालियों की सत्ता व पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों व भागों की, मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वाधीनताओं की एक व्यवस्था है।"

रायट के अनुसार– "यह व्यक्तियों का एक समूह नहीं है, अपितु विभिन्न समूहों के व्यक्तियों के बीच की एक व्यवस्था है। "

सीधे सरल शब्दों में अगर कहा जाए तो समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने हुए एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। मानवीय क्रियाकलापों में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

अब बात करते हैं नारी की। नारी शब्द का शाब्दिक अर्थ हैः–"न+अरि"। अर्थात जिसका कोई शत्रु ना हो, वही नारी है। भला जननी से शत्रुता कैसी, माँ से वैर कैसा? नारी कई रुपों में बस प्रेम का संचालन करती है। माँ बन कर प्रेममयी आँचल में लोरी सुनाती है, पत्नी बन जीवन के हर सुख दुख में साथ निभाती है। बहन बन भाई की रक्षा हेतु व्रत रखती है, तो पुत्री स्वरुप हमारे घर में लक्ष्मी का पदार्पण कराती है। नारी जगत की आधारभूत सत्ता होती है, जो समस्त समाज और राष्ट्र को इक अनोखी डोर में बाँध कर रखती है, जो प्रेम होता है।

प्रेम जगत का सर्वाधिक कोमल, सार्थक और संवेदनशील भाव है, जिसके बिना सारी सृष्टि निरर्थक है। यदि प्रेम के उद्भव और उत्पति पर दृष्टि डाले तो प्रेम बस स्त्री तत्व के ममत्व का ही दूसरा स्वरुप है। इक नारी के हृदय सरिता से छलकने वाली कुछ बूँदें ही प्रेम की संज्ञा पाती है। विशाल हृदय धारण करने वाली नारी, अपने हृदयाकाश में संवेदनाओं और भावनाओं में लिपटे एक अनोखे प्रेम को छिपा के रखती है। नारी के बिना सृष्टि सम्भव नहीं है, और प्रेम बिना सृष्टि का संतुलित संचालन। नारी के प्रेम से ही सिक्त बाल्यमन प्रेम की प्रतिमूर्ति बन जाता है। नारी सृष्टि की सबसे कोमलतम हृदय को धारण करने वाली होती है। प्रेम की जननी होती है नारी जो कि प्रेम का ही एक मूर्त स्वरुप होती है।

समाज में प्रेम के स्वरूप की कल्पना बिना नारी के की ही नहीं जा सकती। आज का समय अलग है कि कुछ मानसिक विकृतियों को विविध कानूनों का रूप देकर सामाजिक स्वीकृति देने की कोशिश की जा रही है लेकिन वो प्रेम नहीं है। वह एक शारीरिक भूख या संतुष्टि हेतु एक व्यवस्था है। प्रेम शरीर से नहीं रूह से होता है। प्रेम की कल्पना बिना नारी के कहाँ सम्भव है? नारी का प्रेम पुरुष या नर की पूर्णता का द्योतक है। नारी धात्री है। नारी निर्मात्री है। नारी ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। नारी प्रेम का स्वरूप है। नारी नर का अस्तित्व है। उसके अधूरेपन के पूर्ण होने का अहसास है। नारी प्रेम स्वरूप की एक मिशाल है। नारी हरिशचंद्र की तारा के प्रेम का वह स्वरूप है जो जीवन की विकट परिस्थितियों एवं सत्य की परीक्षा में वह हरिशचंद्र के साथ अपने जीवन को तार–तार कर लेती है लेकिन वह प्रेम स्वरूपा

है। हरिशचंद्र को सत्यवादी हरिशचंद्र बनाने के लिए अपने पुत्र रोहिताश्व की अंतिम क्रिया के कर के रूप में अपने तार–तार हुए पल्लू का भी एक भाग दे देती है लेकिन कर्त्तव्य निर्वहन के साथ अपना प्रेम नहीं छोड़ती। माता सीता के प्रेम की पराकाष्ठा तो देखिए कि रावण के द्वारा दिए विभिन्न प्रलोभन भी उनके सतीत्व को न हिला सके। कितनी अग्नि परीक्षाओं से गुजरीं लेकिन श्री राम के प्रति उनके मन में प्रेम कभी कम न हुआ। राधा का कृष्ण प्रेम जग जाहिर है। कितनी ही सामाजिक प्रताड़नाएँ, अवहेलनाएँ झेलनी पड़ीं लेकिन उसी प्रेम ने वेद वाक्यों में उनका नाम कृष्ण से पहले लिखवा दिया। राधे–कृष्ण, सीता–राम, लैला–मजनू, शीरीन–फरहाद, आदि आदि अनगिनत उदाहरण दिए जा जकते हैं। नारी के इस प्रेम स्वरूप ने समाज को एक प्रेम धारा दी है। अपने समर्पण की आहुतियाँ दी हैं। नारी के इन बलिदानों के परिणाम स्वरूप ही समाज प्रेम स्वरूप को पहचान पाया है। सत्यवान–सावित्री का वह प्रेम कौन भूल सकता है जो पति के लिए सम्पूर्ण समर्पण में यमराज को भी परास्त कर देती है। मौत के मुँह से अपने पति को खींच कर वापस लाती है। माता अनुसइया, माता सती। आधुनिक युग के पृथ्वीराज चौहान और संयुक्ता, बाजीराव और मस्तानी। राजघराने के प्रति अपनी निष्ठा और कर्त्तव्य की पराकाष्ठा में पन्ना धाय का त्याग कौन भूल सकता है!!

वह नारी का प्रेम स्वरूप ही था जो बिहार के दशरथ माँझी को पहाड़ से टकराने पर पर मजबूर कर देता है और पहाड़ के घमंड को चूर–चूर कर नतमस्तक हो रास्ता देने पर मजबूर होकर उसे माउंटेन मेन बना देता है।

सृष्टि का एक ऐसा भाव जिसके बस में इंसान क्या भगवान भी मानव तन धारण करते हैं और उस जननी की कोख से उत्पन्न हो, खुद को गौरवान्वित महसूस करते हैं। नारी ही सृष्टि है, संहार है, द्वेष है और प्यार है। उग्र रुप धारण करने पर यही रौद्र चण्डी हो जाती है, और सौम्य रुप में ये प्रेम की जननी, प्रेम की पावन गंगा सी बहती रहती है। जिस गंगा में डुबकी लगा नर और नारायण दोनों अपने अस्तित्व की धूमिलता को दूर करते हैं।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन वैदिक काल से ही नारी का स्थान सम्माननीय रहा है और कहा गया है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः।। अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा, वस्त्र, भूषण तथा मधुर वचनादि द्वारा सत्कार नहीं होता है, उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। ऋग्वेद काल में स्त्रियां उस समय की सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकतीं थीं। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। माँ सरस्वती का वीणा के प्रति प्रेम और समर्पण ही था। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। नारियां शिक्षा ग्रहण करने के अलावा पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करतीं थीं। यह भी उनके प्रेम के स्वरूप एवं समर्पण का ही रूप था। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोषाल, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं जो अपने प्रेम स्वरूप एवं समर्पण के कारण ही विश्व में ख्याति प्राप्त कर सकीं। नारियों का प्रेम स्वरूप पूरे संसार में विभिन्न धर्म संस्कृतियों में जग जाहिर है। चाहे उनका प्रेम देश के लिए हो या प्रदेश के लिए। महारानी लक्ष्मी बाई के देश प्रेम को कौन भूल सकता है? गुरु गोविंद सिह की पत्नी माता सुंदरी के धर्म और अपनी संस्कृति की रक्षा के प्रेम स्वरूप को एक सच्चा देश प्रेमी भला कैसे भूल सकता है!! जो अपनी आँखों के सामने अपने बच्चों को कुर्बान कर देती हैं। शहीद भगत सिंह की माँ विद्यावती जी का नाम कोई कैसे भूल सकता है? नारी प्रेम सिर्फ कामुकता या संभोग से नहीं बल्कि उनके प्रेम स्वरूप में समर्पण के लिए है। समाज में नारी ने अपना प्रेम स्वरूप अपने विविध रूप में वक्त–वक्त पर न सिर्फ न्योछावर किया है बल्कि प्रमाणित भी किया है।

मैं स्त्री हूं 'मैं नारी हूं,
मैं कली हूं, मैं फुलवारी हूं।
मैं दर्शन हूं, मैं दर्पण हूं,
मैं नाद मैं ही गर्जन हूं।।
मैं बेटी हूं, मैं माता हूं,
मैं बलिदानों की गाथा हूं।।
मैं श्रीमद्भगवद्गीता हूं
मैं द्रोपदी हूं मैं सीता हूं।

इसलिए नारी के प्रेम स्वरूप को किसी एक साँचे में नहीं ढाला जा सकता। उसका स्वरूप वृहद है, असीमित है। सनील मिश्र जी की इन पँक्तियों को देखिए–

विश्व में नारियों का सम्मान होना चाहिए,
है जगत आधार नारी मान होना चाहिए।
सृष्टिदाता जन्मदात्री प्रेम की प्रतिमूर्ति है,
अबला नहीं है ये अभिमान होना चाहिए।
अग्रणी होती रही हर युगों हर काल में,
प्रेरणा की स्रोत नारी गुणगान होना चाहिए।
प्रेम की अनुभूति ये श्रृंगार की सरिता रही,
विश्व की ज्योति रही ये गान होना चाहिए।
ममतामयी ज्योतिर्मयी ये त्याग का प्रतीक है,
जगत के नभ तल में प्रतिमान होना चाहिए।
ये वरदानी जननी जन की जीवन धारा है,
विश्व पटल में नारी का उत्थान होना चाहिए।
शौर्य कौशल निहित बलिदान ये होती रही,
बीरगठा में वीरांगना का स्थान होना चाहिए।
विश्व में नारियों का सम्मान होना चाहिए,
है जगत आधार नारी मान होना चाहिए।

समाज में नारी के प्रेम स्वरूप के इतने आयाम है कि इसे शब्द सीमा ने नहीं बाँधा जा सकता। इस विषय पर कोई आलेख नहीं एक वृहद ग्रंथ लिखा जा सकता है। नारी के प्रेम स्वरूप एवं उनके समर्पण पर श्री सत्य नारायण गोयंका जी की पंक्तियाँ देखिए–

– जबसे धरती पर माँ जनमी, जब से माँ ने बेटे जनमे।
– ऐसी मिसाल कुर्बानी की, देखी न गई जनजीवन में।
– तू पुण्यमयी, तू धर्ममयी, तू त्यागतपस्या की देवी।
– धरती के सब हीरे पन्ने, तुझ पर वारें पन्ना देवी।
– तू भारत की सच्ची नारी, बलिदान चढ़ाना सिखा गयी।
– तू स्वामिधर्म पर, देशधर्म पर, हृदय लुटाना सिखा गयी।।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 156-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रेम का स्वरूप

-सुरेंदर सिंह

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

उपन्यास मानव जीवन का जीवंत एलबम है। मानव जीवन की समस्त छोटी है बड़ी घटनाओं को उपन्यास के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है। प्रेमचंद के अनुसार, 'मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।' उपन्यास के क्षेत्र में महिला कलाकारों का अमूल्य योगदान है। उन्होंने उपन्यासों में सुंदरता रोचकता एवं मनमोहकता के रंग भर दिए हैं। वास्तव में हिंदी महिला उपन्यासकारों ने जीवन के अंश को स्पर्श किया है जिसका संबंध भावना और अनुभूतियों से संबद्ध होता है। 'प्रेम' ऐसा ही एक कोमल तत्व है जिसका निरूपण यदि संतुलन के साथ किया जाए तो जीवन में विभिन्न प्रकार के रंग भर जाते हैं। मानव जीवन अनेक परिस्थितियों से गुजरता है यदि इस दौरान प्रेम में कहीं असंतुलन हो जाए तो व्यक्ति का जीवन निराशा, अवसाद, पीड़ा, घुटन, अविश्वास, पलायन, आत्मग्लानि से भर जाता है। इन महिलाओं उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में प्रेम के दोनों रूपों का वर्णन किया है।

प्रेम शब्द की व्याख्या :-

'प्रेम' शब्द अपने आप में बड़े ही व्यापक अर्थ समाहित किए हुए है। प्रेम को समझा तो जा सकता है लेकिन समझाया नहीं जा सकता। प्रेम के बिना संसार की कल्पना करना भी व्यर्थ है। यहां पर विभिन्न कोश ग्रंथों एवं विद्वानों के अनुसार 'प्रेम' शब्द को समझने का प्रयास किया जाएगा।

प्रेम :-

"प्रीति, आत्मीयता, अनुराग, दयालुता, सहस स्वभाव, खुशी, प्रसन्नता, हर्ष, प्रीति, प्रणय, आसक्ति, किसी के प्रति होने वाला लगाव, कोमल अनुभूति, स्नेह, प्यार, मोहब्बत, मानसिक लगाव, मोह"।

जयशंकर प्रसाद के अनुसार, 'प्रेम गगन से भी अनंत और सागर से भी अधिक गंभीर है। क्या आकाश और सागर को बांधा जा सकता है।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'प्रेम' के लिए पहले 'परिचय' का होना आवश्यक माना है :– 'परिचय प्रेम का प्रवर्त्तक है। बिना परिचय प्रेम नहीं हो सकता।'

कोश ग्रंथ अर्थों और विद्वानों के मतानुसार कहा जा सकता है कि संसार में प्रेम एक शाश्वत तत्व है जिसके बिना संसार की कल्पना करना भी मुश्किल है। प्रेम एक अनंत्य भावुक संबंध है जो एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य या जीवों के साथ स्वाभाविक ही पैदा हो जाता है। एक व्यक्ति का दूसरे के साथ स्नेहपूर्ण संबंध, साहचार्य एवं संयोजकता, उसके प्रति अनन्यता, आस्था और विश्वास, मंगल भावना, हृदय की भावना आदि तत्व प्रेम को प्रकट करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। प्रेम जीवन में अतः प्रविष्ठ है इसे मनुष्य की शाश्वत भावनाओं और मनोवृतियों पर समाज की इच्छाओं, नियमों, प्रथाओं, विश्वासों और आदर्शों एवं परिस्थितियों के जुड़े हुए प्रभाव का परिणाम माना गया है।

हिंदी साहित्य में महिला उपन्यासकारों ने अपने साहित्य में यथार्थवादी परिस्थितियों को मुख्यतः उकेरा है व अपने अस्तित्व को लेकर समाज से लड़ाई लड़ रही हैं। इसके साथ ही प्रेम रूपी भावनात्मक पक्ष जो कि स्त्री का पर्याय माना जाता है, को भी अपने साथ–साथ लेकर चलती हैं। प्रेम के विभिन्न रूपों को चाहे वह मानवीय प्रेम हो या प्राकृतिक प्रेम हो या आध्यात्मिक या राष्ट्रीय हो, को अपने अंतर्मन में समाहित किए हुए है। इस कारण एक यह भी है क्योंकि स्त्री के हृदय में प्रेम रूपी नदी बहती है इसलिए वह अपने साहित्य में चाहे यथार्थ का चित्रण करे या कोई और पक्ष का लेकिन प्रेम भाव की निरंतरता बनाए रखती है।

हिंदी उपन्यासकारों ने अपने रचनात्मक क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है। प्रेम जीवन की वह अनुभूति है जिसमें मनुष्य अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक इत्यादि शैलियों व उत्तरदायित्वों को निर्धारित करता है। आजकल प्रेम का आशय मात्र शारीरिक सुख या आकर्षण से लिया जाता है परंतु प्रेम का दायरा इतना संकुचित नहीं है। वह तो भौतिक जगत से आध्यात्मिकता की और उन्मुख होता है। हिंदी महिला उपन्यासकारों ने प्रेम की विभिन्न स्थितियों जैसे भौतिक प्रेम, आंतरिक प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम, प्राकृतिक प्रेम व राष्ट्रीय प्रेम आदि को अपने साहित्य में प्रमुखतः रखा है।

भौतिक प्रेम को हम सांसारिक वस्तुओं व शारीरिक आकर्षण से लेते हैं किसी वस्तु या मनुष्य की सुंदरता को देख उस और आकर्षित होने या उसे पाने की लिप्सा करना ही भौतिक प्रेम की अवधारणा है। यह सहज आकर्षण है। लेकिन महिला साहित्यकारों ने भौतिक प्रेम को मात्र सेक्स का पर्याय ना मानकर या क्षणिक सुख न मानकर उसे हृदय में उठने वाली कोमल भावनाओं से सम्बंधित किया है, जो कि वासना से कोसों दूर है। शरद सिंह ने अपने उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' के अंतर्गत सदियों से दबी–कुचली स्त्री जो शारीरिक व मानसिक सुखों से वंचित थी, को दर्शाया है। इसमें उन्होंने एक पारंपरिक स्त्री जो अनचाहे भी अपने पति से प्रेम ससंर्ग कर लेती है। उसकी इच्छा को हमेशा नजरअंदाज कर दिया जाता है, पर व्यंग्य करती हुए स्त्री मन में उत्पन्न प्रेम भावनाओं का तुष्टिकरण किया जाता है। वह प्रेम को मात्र शारीरिक संबंधों के निर्वहन से ऊपर बताती हुई कहती है" "यदि आपने एक–दूसरे की बाहों में मधुर बातों के साथ दो घड़ी नहीं बिताई, एक दूसरे की भावनाओं को समझने का प्रयास नहीं किया तो यह 'रोबोट' की तरह यान्त्रिकता नहीं हो गई?' समाज की संकीर्ण मानसिकता होने के कारण प्रेम को मात्र सेक्स का पर्याय मान लिया जाता है। एक चली हुई परिपाटी के अंधानुकरण से हम प्रेम के वास्तविक रूप से कोसों दूर हो जाते हैं। प्रेम की सजीवता को बनाए रखने के लिए क्षणिक सुखों से ऊपर उठ; अपने साथी के सुख दुख में साथ खड़ा होना, एक दूसरे की भावनाओं की इज्जत करना, व अपने साथी से जुड़ी हर चीज से प्रेम करना है। शरद सिंह के उपन्यास की नायिका सुगंधा ऋषभ के हररोज घर आने पर प्रतिकार करते हुए कहती है कि 'ऋषभ प्रतिदिन आ खड़ा होता है। कुछ 'स्पेस' भी तो होना चाहिए पारस्परिक संबंधों में, वरना संबंधों में ठहराव आने लगता है। किसी ठहरे हुए पानी की तरह उसमें भी सड़ांध पैदा होने लगती है जो उस संबंध से जुड़े लोगों को बीमार बना देती है।' इस प्रकार प्रेम के जो अवधारणा मात्र क्षणिक सुख तक समझी जाती है उस पर पड़े पर्दे को हटाने के लिए लेखिका ने अपनी नायिका के ज़रिए विरोध प्रस्तुत किया है। प्रेम की आजीवन नवीन स्फूर्ति व ताजगी को बनाए रखने वाले विचारों को अपने उपन्यास में दर्शाया है।

समाज की प्रमुख इकाई परिवार है। एक परिवार को प्रेममय, स्नेहिल व शांतिमय बनाने के लिए एक स्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सम्पूर्ण परिवार के सदस्यों के बीच एक प्रेमाभाव ही उन्हें आपस में जोड़ने का कार्य करता है। आजकल भूमंडलीकरण के दौर में एकल परिवारों की स्थिति आ चुकी है, लेकिन संयुक्त परिवारों की टूटन से व्यक्ति के अंतर्मन में अकेलापन, निराशा व अवसाद की स्थिति भी घर कर चुकी है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास शिगाफ़ में अमिता संयुक्त परिवार के प्रति अपने प्रेम भावनाओं को दर्शाते हुए कहती है कि 'कितना सूखता एक मध्यवर्गीय संयुक्त

परिवार में रहने का। कोई भौतिकता नहीं, अच्छे कपड़े और अच्छा खाना और स्कूल। एक बच्चे के लिए संयुक्त परिवार नियामत होता है। हरदम कोई ना कोई सुनने वाला, टोकने वाला, कुछ नाराज करने वाले तो उतने ही मनाने वाले भी।'

स्त्री प्रकृति का पर्याय मानी जाती है क्योंकि उसकी शारीरिक बनावट पुरुष से भिन्न है। जिस प्रकार स्वयं प्रकृति दूसरों को कुछ ना कुछ आबंटित करती है उसी प्रकार स्त्री भी इन्हीं गुणों से परिपूर्ण पाई जाती है। प्रकृति से भी विमुखता उसके स्वभाव के प्रतिकूल है। नासिरा शर्मा ने अपने–अपने कुइयाँजान में प्रकृति विषयक प्रेम का एक छोटा सा नमूना प्रदर्शित किया है 'कई जिलों में पानी की जांच से पता चला है कि नलकूप से आने वाला पानी पीने योग्य नहीं है भोजपुर जिले में आर्सेनिक (संखिया) की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है। जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अब सारे नलकूप सील कर दिए गए हैं और उस इलाके में टैंकर की सहायता से जनता को सरकार जल उपलब्ध करवा रही है।' प्रकृति के प्रेम या उसके क्षरण के प्रति चिंता व्यक्त प्रकृति प्रेमी का प्रमाण दर्शाता है। लेखिका पृथ्वी पर धीरे–धीरे खत्म होते पोखर, जलाशय, तालाबों के प्रति चिंतित है व पृथ्वी पर पानी की कमी को लेकर गंभीर समस्या में दिखलाई देती है। इसी प्रकार अलका सरावगी के उपन्यास –एक ब्रेक के बाद' में लेखिका ने प्रकृति द्वारा दिए जाने वाले संदेशों की ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित किया है।

लेखिका ने फैंटेसी के माध्यम से मनुष्य द्वारा प्रकृति की आवाज को अनसुना करने पर भविष्य में पैदा होने वाले खतरों या नुकसान की ओर उसे ध्यान आकर्षित किया है। मनुष्य की उन्नति–अवनति के पीछे प्रकृति की अहम भूमिका रहती है। हमारे ग्रंथों में भी देव ऋण को प्रकृति के संरक्षण के साथ जोड़कर दर्शाया गया है। यदि मनुष्य प्रकृति का संरक्षण नहीं करता तो वह अपने विनाश का स्वयं जिम्मेवार होगा जिसके आधुनिक समय में परमाणु बम, प्रदूषण इत्यादि उदाहरण है। लेखिका ने प्रकृति प्रेम को अपने नायक गुरचरण के माध्यम से प्रदर्शित किया है कि 'मैं इस धरती पर अपना छोटा ही सही लेकिन स्वर्ग बना सकूंगा। हम जहां चलेंगे वहां खुशबुएँ रह जाएंगी। हम जहां बहेंगे वहां हमारे प्रवाह का स्वर गूंजेगा। हमने अपने आसपास के वृक्षों, हवाओं, पानी और सारे लोगों की सारी वेदना समेट लेंगे।'

समाज में रहते हुए हर एक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह सबसे पहले स्वयं से भी ज्यादा राष्ट्र प्रेम करें। क्योंकि धर्म, राजनीति, समाज, उनके मूल्यों की रक्षा एक छत्र के नीचे रहकर ही हो सकती है। जिस प्रकार किसी परिवार को सम्भालने के लिए एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र ही हमारी संस्कृति, मूल्य व सभ्यता की रक्षा करता है। हिंदी महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में राष्ट्रप्रेम का उल्लेख किया है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'कहे ईसुरी फाग' की नायिका रजऊ अपने प्रेम को देशप्रेम का रूप देकर स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ जाती है। रानी लक्ष्मीबाई का अनुसरण कर वह भी उनके साथ स्वतंत्रता संग्राम में शामिल हो जाती है। वह आरक्षण के माध्यम से उचित प्रावधान नियम लागू करवाकर अपनी प्राथमिकता चाहती है। वह रघु के माध्यम से कहती हैं कि ""जनी के लिए अपनी समाज व्यवस्था और राजनीति में नीची नजर का आरक्षण है। कोशिश भी यही हो रयी है कि वे नीची नजर करके ही गएं""।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिंदी महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में प्रेम तत्व का विभिन्न रूपों में चित्रण किया है। प्रेम के विविध रूपों मानवीय, प्राकृतिक, अध्यात्मिक, राष्ट्रीय इत्यादि का बखूबी से वर्णन किया है। संपूर्ण मनुष्य जाति माला के मोती के समान है और प्रेम उस धागे के समरूप है, जो उसे बांधे रखता है। जीवन में संतुलन, उसे रसमयी व उच्चत्तम बनाने के लिए प्रेमानुभूति का अहम योगदान रहता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृष्ठ स. 47

2. केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, पृष्ठ 1641
3. जयशंकर प्रसाद, नीरव प्रेम (कविता), पृष्ठ 167–168
4. रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, पृष्ठ 77
5. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ 123
6. वही, पृष्ठ 200
7. मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ 67–68
8. नासिरा शर्मा, कुइयांजान, पृष्ठ 62
9. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ 42
10. मैत्रेयी पुष्पा, कही ईसुरी फाग, पृष्ठ 141

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 160-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में प्रेम के विविध स्वरूप

–सुशील कुमार

शोधार्थी, पंजाबी वि.वि. पटियाला।

प्रेम के स्वरूप को व्यक्त करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि ''मानवीय जीवन का सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व काम है। स्त्री–पुरुष के प्रेम के मूल में ही नहीं मनोविज्ञान के अनुसार संसार के प्रत्येक कार्य की जड़ इसी में निहित है। साहित्य में प्रेम की अभिव्यंजना सर्वदा से होती रही है, लेकिन देशकाल के अनुसार इसके बाह्य रूप में परिवर्तन होता रहा है।''[1] साहित्य में स्त्री–पुरुष के पारस्परिक संबंधों में निम्नप्रकार से परिवर्तन आया है। हिन्दी काव्य की वीर–गाथाओं में नारी का यौवन केवल भोग का साधन है। भक्ति–काव्य में वैराग्य में युवती की निंदा है, किंतु उसके मातृत्व की उपासना है। तत्कालीन सूफी कवियों में हम युवती के वर्णन की प्रशंसा भी पाते है और प्रेम में पुरुष को भी उसके लिए समान रूप में आकर्षित पाते हैं, जबकि वह प्रेम सदैव रूप के आकर्षण से ही जन्म लेता है। रीतिकाव्य में नारी का नखशिख–वर्णन है, जिसमें स्त्री–पुरुष की शारीरिक वासना को ही विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया है। हिंदी के पुनर्जागरण–युग में हम नारी का सम्मान फिर देखते हैं और पुरुष को नारी के प्रति अधिक सम्मान देते हुए पाते है। द्विवेदी काल में वासना के पक्ष को पारिवारिक मर्यादा में ढक दिया गया है। किंतु छायावादी काव्य में प्रेम को फिर स्वतंत्र करने की चेष्टा की गई। उसके मूल में शरीर की वासनाओं का दमन ही था। नयी कविता ने उस दमन को उदात्त रूप देने की उन चेष्टाओं को अस्वीकार करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार साहित्य में प्रेम का स्वरूप बदलता रहा है। ''प्रेम हमारे सबके हृदयों में रहता है। किन्तु वह अपनी अभिव्यक्ति अपने समाज के नियमों के अनुकूल रहकर किया करता है।''[2] प्रेम को अनेक ढंग से व्याख्यायित किया गया है, दार्शनिकों ने प्रेम को तत्वचिन्तन का विषय बनाया, भक्तों ने भकित का माध्यम, कामियों के लिए काम(भोग) का विषय रहा, तो जीव शास्त्रियों के लिए जैविक आकर्षण, मनोविश्लेषकों के लिए प्रेम एक राग(लिबिडो) के रूप में पाया गया, तो समाजशास्त्रीयों के लिए समाज में परिवर्तन लाने का एक प्रबल कारक मात्र। कवियों और साहित्यशास्त्रीयों के लिए प्रेम काव्य का सनातन विषय रहा है। विभिन्न ढंग से प्रेम की व्याख्या की गई है। मनुष्य और अन्य प्राणियों में काम भाव तो समान होता है लेकिन मनुष्य ने काम–भाव को परिष्कृत तथा परिवर्तित एवं विकसित कर प्रेम भाव तक पहुंचाया है।

प्रेम संसार का एक चिरंतन सत्य है। हमारे मन को अनेकों वृत्तियों में से प्रेम की वृत्ति सर्वोपरि एवं सर्वाधिक शक्ति मान है। प्रेम हमारे हृदय का सर्वोत्त्म रत्न है। वस्तुतः प्रेम वह भाव है जिसके अनुसार किसी दृष्टि से अच्छी लगनी वाली वस्तु या व्यक्ति को देखने, भोगने, पाने या सुरक्षित करने की इच्छा होती है। प्रेम की कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। प्रेम का सीधा सम्बन्ध लोकमानस से है और इसका मूलाधार है आकर्षण। ''प्रेम भावना मूलतः एक मानवीय गुण है जो केवल नर–मादा या जीवाणुओं से सम्बन्धित न होकर व्यापक मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भाई–बहन, माता–पिता, पति–पत्नी, प्रेमी–प्रेमिका, मित्र सबसे जुड़ी हुई है।''[3] प्रेम का सबसे पहला लक्षण है हृदय में एक प्रकार की कोमलता का उद्‌बुद्ध हो जाना है। जिस समय कोई व्यक्ति किसी के प्रति आकर्षित होता है। उस समय उसके अन्तर

में कोमल, काव्यमयी एवं मधुर भावनाएँ उमड़ कर उसके होठों तक आ जाती है और वहीं भावनाएँ व्यक्त होकर काव्य का रूप धारण करती है। ''वस्तुतः जीवन की मधुरता को बनाए रखने के लिए प्रेम अति आवश्यक तत्व है। प्रेम मानव को ईश्वर का ऐसा वरदान है जिसे पाकर वह धन्य हो उठता है।''[4]

मानव जीवन में प्रेम अनेक रूप ग्रहण करता है, यद्यपि प्रेम की आत्मा सब प्रेम–रूपों की विकसित अवस्थाओं में समान रूप से व्याप्त रहती है, फिर भी प्रत्येक रूप के क्षेत्र, परिधि एवं उसकी व्यक्तिगत निजी विशेषताओं के जो उसे अन्य प्रेम–रूप से स्पष्ट पृथक कर सकें, व्यवस्थित परिज्ञान के लिए प्रेम का वर्गीकरण या विभाजन कुछ विशिष्ट बौद्धिक आधारों पर किया जा सकता है। ये आधार इतने तरल है कि जो एक दूसरे की सीमा में वह जाते हैं। अतः प्रेम को किसी आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयत्न करके उसका विवेचन करने की अपेक्षा उसके विविध स्वरूपों का स्वतन्त्र विवेचन ही उपयुक्त है।

1. दाम्पत्य प्रेम :–

दाम्पत्य वह है जो कि स्त्री–पुरुष के रूप–गुण–जन्म पारस्परिक आकर्षण, सयोगमुखाभिलाषी से अनायास उत्पन्न होता है। यह प्रेम केवल मादन–भाव के प्रेम तक ही अपनी गति–विधि सीमित नहीं रखता, हृदय के भाव–क्षेत्र के सभी पक्षों व कार्य–व्यापारों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित कर मन की रागात्मिका वृत्ति के द्वारा ही हम अपना नाता बाहरी जगत् से जोड़ते है। यह और कुछ नहीं अपनी ही आत्मा को विश्वव्यापक बनाने का अभ्यास व उद्योग है। जो व्यक्ति अपने–पराये की भावना से जितना मुक्त होगा यह वृत्ति उसमें उतनी ही ऊँची होगी। ''हमारे रागात्मक हृदय में माँ, भाई–बहन, ग्रामवासी, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी नदी–समुन्द्र आदि के प्रति सहज–स्वाभाविक लगाव है तथापि हमारे हृदय की पूर्ण तथा वास्तविक रागात्मकता इनके माध्यम से पूर्ण नहीं होती। हमारा हृदय जब यदा सम्भव सभी प्रकार के प्रेम–संबंधों से परिपूर्ण हो जाता है तभी हमारी प्रेमानुभूति पूर्ण समझी जा सकती है, अन्यथा अपूर्ण।''[5] हिन्दी साहित्य में केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम कविताएँ मूलतः दाम्पत्य जीवन से जुड़ी हुई हैं। दाम्पत्य प्रेम की जितनी मार्मिक अनुभूति केदारनाथ के काव्य में मिलती है वैसी हिन्दी साहित्य के इतिहास में देखने को नहीं मिलती।

''प्राणमयी मुस्कान तुम्हारी,
जब कूलों को पार करेगी,
दीन दुखी मेरे जीवन में,
तब विद्रोही ज्वार भरेगी।
ज्वालामयी मुसकान तुम्हारी,
जब शोषण को क्षार करेगी,
पर पीड़ित मेरे जीवन में,
तब आशा–उद्‌गार भरेगी।''[6]

2. वात्सल्य प्रेम :–

बहुत छोटी आयु के बालक के प्रति हृदय में जो रतिभाव उत्पन्न होता है उसे वात्सल्य प्रेम कहते हैं। सामान्यताः यह प्रेम छोटी आयु के बच्चों के प्रति ही उत्पन्न हुआ समझा जाता है। ''वात्सल्य प्रेम प्रायः स्तन–दुग्ध–जीवी, कलबल व तोतरी बैन बोलने वाले, लार टपकाने वाले, माटी खाने वाले, किलकने वाले, घुटनों के बल रेंगने वाले और पेट भरा रहने पर प्रसन्न तथा भूख लगने पर रो–रोकर मुख लाल करके घर को सिर पर उठा लेने वाले नितान्त अबोध बालक के प्रति प्रकट होने वाले प्रेम को ही कहते हैं।''[7] साहित्य में महाकवि सूरदास ने वात्सल्य भाव का वर्णन अत्यंत मार्मिकता से किया है। उनके इस वर्णन में कवि की गहन अनुभूति दिखाई देती है। श्रीकृष्ण की बाल–सुलभ चेष्टाओं एवं विविध क्रीड़ाओं

के अत्यंत स्वाभाविक एवं मनोपुग्धकारी चित्र अंकित किये हैं। पालने में शयन करते समय बालक कृष्ण की स्वाभाविक बाल–चेष्टाएँ द्रष्टव्य हैं–

''कर पग गहि, अंगूठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रंग खेलत।''[8]

3. भक्ति :–

''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम 'भक्ति' है।''[9] शुक्ल ने भक्ति के दो प्रकार बताए हैं, निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। निर्गुण भक्ति ही सगुण रूप में प्रकट होती है अतः आदि या मूल रूप भारतीय चिन्तन धारा के अनुसार 'निर्गुण' ही है। भक्त या कवियों ने भक्ति का स्थान सर्वोच्च बताया है। क्योंकि इसमें साधक को अखण्ड ज्ञान की प्राप्ति करने के बाद मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, अमर हो जाता है, निष्काम व तृप्त हो जाता है, द्वेष व शोक रहित हो जाता है। ''इस प्रेम में केवल आत्म समर्पण है। प्रेमी बदले में कुछ नहीं चाहता।''[10] यह प्रेम सांसारिक गुणों से परे है। यह प्रत्येक क्षण बढ़ता जाता है। कामनारहित और अटूट प्रभाव जारी रहता है। यह इतना सूक्ष्म है कि केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। कबीर की वाणी में भक्ति रूपी प्रेम के दर्शन निम्नानुसार होत हैं।

''कबीर बादल प्रेम का, हम परि बखया आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरि भई बनराइ।।''[11]

4. प्रकृति प्रेम :–

प्रेम सौंदर्य व कला के सूक्ष्म भावनाओं व आदर्शों से सम्बन्ध रखने वाला भी होता है। जब कोई कवि 'रति' की सीमित परिधि को तोड़कर अपने भाव–प्रसार का परिचय देता है, उसी अनुपात में हम उस कवि या युग–हृदय की समृद्धि या विकास आँकने में समर्थ होते हैं। प्रकृति संबंधी 'रति' या प्रकृति–प्रेम हमारे हृदय में रति–वृत का एक महत्वपूर्ण खंड है। इसे प्रेम की वाणी देना सम्पूर्ण हृदय की पूर्णता को वाणी देने का एक अनिवार्य अंग है। महादेवी वर्मा प्रकृति के अजर सौन्दर्य में अपनी दिव्य प्रियतम का प्रतिबिंब देखती है। उस अलौकिक प्रिय की दीप्त अंग–प्रत्यंग पर विद्युत का अंगराग है। इन्द्रधनुष उसकी भृकुति है और उसकी चितवन में अंधकार की श्यामलता है। उसका छोर–रहित नवनील चीर सम्पूर्ण नभ में व्याप्त है–

''चितवन तम–श्याम रंग,
इन्द्रधनुष भृकुति–भंग,
विद्युत का अंगराग,
दीपित मृदु अंग–अंग,
उड़ता नभ में अछोर तेरा नव नील–चीर।''[12]

5. मानव प्रेम :–

मानव प्रेम से तात्पर्य है सम्पूर्ण मानवजाती से प्रेम। संसार के प्रत्येक पदार्थ जड़–चेतन आदि से प्रेम। जो भी प्राणी पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, मानव आदि से प्रेम करेगा वास्तव में वही संसार से भी प्रेम करेगा। वह सदा संसार की प्रगति व उन्नति की ही कामना करेगा। संसार में ऐसे बहुत से लोग मिल जाते है जो केवल अपनो से ही प्रेम करते है पर कुछ लोग ऐसे भी होते जो इंसान से प्रेम करते है। धरती पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी ही भगवान है और जो व्यक्ति धरती में रहने वाले प्राणीयों से प्रेम नहीं कर सकता। वह ईश्वर से प्रेम कहां से करेगा।

''कया करेगा प्यार वह भगवान् को?
क्या करेगा प्यार वह ईमान को?

जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को।''[13]

6. राष्ट्र प्रेम :–

किसी भी व्यक्ति की पहचान उसके राष्ट्र से ही होती है क्योंकि वह जिस भी देश में जन्म लेता है, जिस मिट्टी में वह पलता है, जिस देश में वह अपने सपनों के बूनता है और उन सपनों को साकार करता है। उस राष्ट्र के प्रति वह व्यक्ति अपना सब–कुछ न्यौछावर कर देने की ईच्छा रखता है वही ईच्छा वही कामना राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त में भी दिखाई देती है। ऐतिहासिक पृष्ठ में नूतन अध्याय पर खड़े होकर मैथिलीशरण गुप्त ने एक क्रांतिकारी राष्ट्रीयता का उद्घोष गम्भीर किन्तु सशक्त शब्दों में किया। राष्ट्रीयता के इस महान चिन्तक ने भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों पर दृष्टि डाली और कह उठे–

''हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।
यद्यति हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।''[14]

अतः साहित्य में प्रेम के उपर्युक्त स्वरूपों का वर्णन हमें मिलता है। हिन्दी साहित्य प्रमुख्तः प्रेम पर ही आधरित है, जिस प्रकार प्रेम के विविध रूप होते हैं, ठीक उसी प्रकार साहित्य के भी कई रूप होते हैं। हर प्रेम का अपना एक वृहद आकार होता है, और वह अंततः वैश्विक प्रेम पर ही जाकर अटकता है अथार्थ परिपूर्ण होता है। प्रेम संवेदन की वस्तु है, जब स्पंदन अपने चरम पर होता है, तब प्रेम की उत्पत्ति होती है। विभिन्न कवियों ने अपने काव्य में प्रेम के विविध रूपों का जो चित्रण किया है वह उच्चकोटि का है। अंतः कह सकते हैं कि प्रेम का स्वरूप सूक्ष्म एवं शाश्वत है जो कि केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि पशु–पक्षियों एवं प्रकृति तक में अपने प्रसार की क्षमता रखता है।

संदर्भ :–

1. बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, 2015, पृ. 45.
2. वहीं, पृ. 17.
3. विजय मोहन सिंह : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, प्रथम संस्करण, पृ. 18.
4. डॉ जगदीश गुप्त : हिन्दी की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, प्रथम संस्करण, पृ. 19.
5. डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966, पृ. 118.
6. केदारनाथ अग्रवाल : जमुन जल तुम, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, सं.1984, पृ. 75.
7. डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.1966, पृ. 124.
8. द्वारिका प्रसाद सक्सेना : हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आग्रा, 2012, पृ. 155.
9. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि (भाग एक), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2012, पृ. 18.
10. नारद भक्ति सूत्र : पृ. 24.
11. डॉ. श्यामसुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, सं. 2015, पृ. 55
12. डॉ. राधिका सिंह : महादेवी का काव्य वस्तु और शिल्प, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2005, पृ. 98–99.
13. नीरज : प्राणगीत, आत्माराम एण्ड संज, सं. 1985, दिल्ली, पृ.10.
14. मैथिलीशरण गुप्त : भारत–भारती, साहित्य सदन, चिरगाँव, सं. 1984, पृ. 4.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 164-167

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्यार की बदनामी झेलनेवाली अभिशप्त नारी

(अल्पना मिश्र की कहानी 'स्याही में सुर्खाब के पंख' के विशेष संदर्भ में)

–श्यामलतिका. एस

शोधछात्रा, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी कॉलेज, केशवदासपुरम, तिरुवनंतपुरम–695004, केरल।

दुनिया के सबसे सशक्त, सबसे अनमोल, सबसे सुंदर व अप्रतिम अनुभूति है प्रेम। दुनिया में जितने ही जीवन पलते हैं उन सबमें किसी–न–किसी रूप में प्रेम विद्यमान हैं। प्रेम ईश्वर होते हैं और प्रेम से विमुख होना ईश्वर से विमुख होना है। इसे अनुभूत न करने वाले दुनिया में कोई नहीं होगा। जब भी मानव में प्रेम की दिव्यानुभूति जागृत होती है वह ईश्वर से जुड़ने लगता है, ईश्वर की दूरी कम होने लगता है। प्रेम को परिभाषित करना बहुत मुश्किल है या फिर कर दिया तो भी अपूर्ण ही रह जाएगा। प्रेम को केवल महसूस किया जाता है। "मानव संबंधों का महत्वपूर्ण भावात्मक पक्ष प्रेम है। प्रेम की परिभाषा करने की कोशिश सदियों से की जा रही है, फिर भी आज तक इस शब्द की गहनता वैसी ही बनी है। आज का मानव सितारों की गति नापने में सफल रहा है पर यह कहने में असमर्थ ही है कि प्रेम क्या है? वास्तव में प्रेम मानव हृदय की सबसे उदात्त और मौलिक भावना है।[1]

मानव के अंदर होने वाली इस रागानुभूति के बारे में साहित्य में बहुत ही विस्तार से चर्चा हुई है। आदिकाल से लेकर आज तक की साहित्यिक रचनाओं में प्यार के अनेक पक्ष उपलब्ध हैं। समय के साथ–साथ प्यार में भी परिवर्तन आ गया है और समय का प्रभाव उस पर भी पड़ने लगा। आदिकाल व भक्तिकाल की रचनाओं में प्रेम के अलौकिक रूप का खूब वर्णन हुआ है तो रीतिकाल तक आते–आते उसका लौकिक पक्ष का भी वर्णन समृद्ध रूप में होने लगा। आधुनिक काल में भी प्रेम को विषय बनाकर अनेक रचनाएँ सामने आने लगी। आधुनिकीकरण के फलस्वरूप साहित्य में भी अनेक विमर्श सामने आने लगे जैसे दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरण विमर्श, नारी विमर्श आदि।

नारी विमर्श के आगमन से पुरुष सत्तात्मक समाज द्वारा निर्मित नियमों के अंदर दासता की जीवन बिताने वाली नारी का जागरण की प्रक्रिया शुरू हुई। उसमें सदियों से अपने ऊपर डालने वाली बेडियों को तोड़ने का साहस आ गई। अपने स्वत्व के बारे में, महत्ता के बारे में, अधिकारों के बारे में नारी मन में सोच पैदा हुई। नारी का यह जागरण एक दिन में घटित नहीं हुआ है बल्कि इसके लिए वह युग–युगों से प्रतीक्षा लिए बैठी रही थी। नारी जागरण का लहर साहित्य में तेज़ी से लहराने लगी और उसे अपनी सोच व बात दुनिया से कहने के लिए एक सशक्त जगह मिल गई।

कहा जाता है कि स्त्री व पुरुष एक–दूसरे के पूरक है। फिर भी पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने हमेशा स्त्री को पुरुष से निचली स्तर की दर्जा दी गई। पुरुष ने उनके हितों के अनुसार समाज का निर्माण किया है और स्त्री को इसके लिए अनुकूलित कर दिया है। यदि कोई स्त्री पुरुष द्वारा निर्मित इन सामाजिक मर्यादाओं को पार करने का साहस करती है तो उसे भय,दंड व कटु वचनों से फिर से अनुकूलित करने की प्रक्रिया शुरू होती है। "जो औरत अपने बल पर खड़ी होती है, पितृसत्ता उसे नहीं बख्शता। सबसे पहले उसके चरित्र पर हमला होता है।"[2] कभी–कभी औरत के अनुकूलित न होने पर उसकी हत्या भी होती है।

पुरुष सत्तात्मक मानसिकता के चलते रहने के कारण युगों से कोई यह नहीं सोचता है कि जिस वातावरण में पुरुष ऐश और आराम की ज़िंदगी जीता है उसी वातावरण में उसका गुलाम नारी भी जीती है। अगर पुरुषों पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है और अपने इच्छानुसार वे लोग जीवन बिताते हैं तो स्त्रियों के लिए ये सब मना क्यों? स्त्री इसके लिए अधिकारिणी नहीं है? क्या स्त्री का कोई दिल या चाहत नहीं? पुरुष अपने वर्चस्व स्थापित करने के लिए इन सारी बातों को कुचलाकर स्त्रियों के जुबान व सोच में ताला लगाकर उसे अपने अधीन बना दिया है। स्त्रियों के मन में लोक–लाज, सामाजिक मर्यादाओं व कर्तव्यों को ठूँसकर उसे ऐसी ज़िंदगी जीने के लिए मज़बूर करती है। पुरुषों के लिए नियमों का निर्धारण कौन करेगा? यदि निर्धारित किया तो भी पुरुष के अहं उससे सहमत होगा? बिल्कुल नहीं, क्योंकि पुरुष किसी के अधीनता में रहना पसंद नहीं करते,चाहे वह प्यार की रिश्ता भी क्यों न हो जाए। क्योंकि वह दूसरों को यानि स्त्रियों को अपने आदेश में रखना सीखा है और आजीवन यही चाहता है।

प्रेम के संदर्भ में भी पुरुष सत्तात्मक समाज ने द्विरंगी नीति अपनाई है। पुरुष का किसी नारी से या फिर नारियों से प्यार करना पाप नहीं है और यदि नारी प्यार करती है तो वह सबसे बड़ा पाप बन गयी। पुरुष सत्तात्मक समाज ने नारी को समस्त अधिकारों से वंचित करने की कोशिश ही ज़ारी रखा है। यदि कोई लड़की –लड़के के बीच में प्यार हो जाए तो प्यार की बदनामी सिर्फ लड़की को ही झेलनी पड़ती है, जबकि प्यार की रिश्ते में दोनों ही उपस्थित हैं। समाज की दृष्टि में गलती सिर्फ नारी की ही है। पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी को अपनी भावनाओं को मान्यता देने वाला प्रेमी या साथी मिलना मुश्किल ही है। फिर भी कोई नारी अपने साथी का चयन खुद करती है तो वह पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था पर पड़ने वाली गहरी चोट है, जिसे वे लोग सहन नहीं कर सकते। पुरुष चाहे प्रेम करे, मार–पीट करे, किसी का खून करे, शराब या नशीली पदार्थों का इस्तेमाल करे दुनिया उतनी हंगामा नहीं मचाती जितनी नारी प्रेम करते वक्त। पुरुषों की गलतियों को लोग बहुत जल्द ही भूलते हैं या फिर छोड़ देते हैं। लेकिन नारी की गलती का दोष उसे आजीवन भुगतना पड़ता है। प्यार की बदनामी उसके जीवन से कभी नहीं मिटती। यही समाज की नीति है और नारी की नियति भी। अगर नियति को कोसकर रहती है तो जीवन वहीं खत्म हो जाएगी, उससे आगे निकलने में ही भलाई है। इसी सत्य का अंकन सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती अल्पना मिश्र ने अपनी कहानी 'स्याही में सुर्खाब के पंख' के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

कहानी में दो प्रेमिकाओं के बारे में बताई गई हैं – वैशाली सारस्वत और निरुपमा दी। पुरुष सत्तात्मक समाज में प्रेम करने की हद तक जाने वाली लड़की को आवारा और बुरी समझती है। लोगों के मन में उनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है। वैशाली सारस्वत डॉ सुनयनधीर सारस्वत की बेटी है जो सगाई होने के बाद किसी दूसरे पुरुष के साथ भाग गई। वैशाली का भाग जाना पूरे शहर में चर्चा का विषय बन गयी। "नगर के ,घर के घर अपनी लड़कियों को लेकर सतर्क हो उठे थे। कोई लड़का कहीं था, जिसके साथ भागने की संभावना छिपी हुई थी। कई और तरह के लोग इस संभावना का लाभ अपनी–अपनी तरह उठा लेना चाहते थे। लोग इससे और भी डर रहे थे।"[3] वैशाली क्यों भाग गयी? भागने के अलावा उसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं थी? प्रेमी के साथ भागने के बजाय लोगों के सामने सिर उठाकर उससे विवाह करने के लिए क्यों नहीं सोची? क्या हमारा सामाजिक व्यवस्था उतना खराब हो गया है कि नारी को अपने जीवन साथी चुनने का अधिकार से भी वंचित कर दिया है? किसी ने भी ऐसी कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया और प्रेमी के साथ भागने वाली वैशाली सारस्वत को गलत स्थापित करके दूसरे लड़कियों के मन में फिर से इस बात को सख्त प्रमाणित कर दिया कि लड़कियों को प्यार करने से सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलेगी। समाज के नियमों के अनुसार जीना

ही उसके लिए भला है।

वैशाली का भाग जाना सिर्फ उसके लिए ही नहीं पूरे इलाके की लड़कियों के सामने भी समस्या उत्पन्न कर दी। खासकर पुरुष सत्तात्मक मानसिकता रखने वाली सोनपती बहनजी के जैसे लोगों के घर की लड़कियों को। जब पुरुषों द्वारा नारी के स्वप्नों व सोच–विचारों को सामाजिक मर्यादाओं की बेडियों से बाँध दिया है, वहीं औरत ही औरत को इस तरह बाँधने के लिए खड़ा हो जाए तो उन बेचारी लड़कियों को कहाँ सहारा मिल जाएगा? यह सोचने की बात है।

वैशाली के जाने के सालों बाद की कहानी है निरुपमा दी की, लेकिन सामाजिक माहौल वहीं के वहीं है। निरुपमा दी के बारे में जनश्रुति थी कि वह डॉ. सारस्वत के पुत्र सूरज कुमार की प्रेमिका है। कॉलेज आते–जाते वक्त मनचले लड़के उसे इसी बात को लेकर छेड़ने की कोशिश करते हैं। "सूरज कुमार को बहला–फुसलाकर दिल्ली पढ़ने भेज दिया गया था, लेकिन निरुपमा दी के लिए महिला डिग्री कॉलेज ही एकमात्र विकल्प था। वे इसके अलावा और कहीं नहीं हो सकती थीं। उनकी प्रसिद्धि सूरज कुमार के साथ जुड़ चुकी थी।"[4] एक दिन उसके भाई इस दृश्य को वहाँ से गुज़रते वक्त देखा कि उसकी बहन को लड़के तंग कर रहे हैं। भाई व लड़कों के बीच झगड़ा हुआ और भाई घायल हुए। पुलिस द्वारा मनचले लड़कों को पकड़ने के सिलसिले में नगरपालिका के चेयरमैन का लड़का भी पकड़ा गया।

जब चेयरमैन को गुस्सा आया और हवलदार को पीटकर लड़के को थाने से ले गया वहीं पुलिस कार्यवाही भी खत्म हुई। घायल भाई के नाम लेकर डॉ. सारस्वत निरुपमा से प्यार से पीछे हटने की शर्त भी रखते हैं। इन सबके बाद भी निरुपमा दी सूरज कुमार पर विश्वास रखती है। जब सूरजकुमार अपने माँ–बाप के पसंद के अनुसार जीने की बात कहता है तब उसका दिल टूट जाती है।

निरुपमा दी खुद सोचती है कि "जाति आज तक नहीं थी, न जाने कहाँ से बीच में आ गई? दोस्ती भी तब तो जाति देखकर करनी चाहिए। उसी घर में वैशाली के आगे जाति नहीं आई थी! उसको गए भी कितना अर्सा हो गया। इन लोगों की इसी सोच के कारण उसे सबको छोड़कर जाना पड़ा। नहीं तो कौन जाना चाहेगा अपनों से दूर? अब देखो, आज माँ–बाप का मान–सम्मान भी बीच में आ गया। पता नहीं सम्मान को ठोस क्यों पहुँचेगी? समझाया तो जा सकता है लेकिन नहीं, जब खुद ही आदमी ऐसा सोचे, तो दूसरों को क्या बताएगा?"[5]

निरुपमा दी ने सूरज कुमार पर भरोसा किया लेकिन वह उसकी प्यार व भरोसे के लिए लायक सिद्ध नहीं हुआ। उनके ही विचार में "सूरज कुमार को भी क्या दोष दें? सब लड़कों में हिम्मत कहाँ है? सहूलियत भर दोस्ती चाहिए। सहूलियत भर प्यार चाहिए। 'जिम्मेदारी भर' नहीं चाहिए।"[6] सूरज कुमार से प्यार की रिश्ता तोड़ने के दुःख में चिंतित होकर आने वाली निरुपमा दी का खुले सड़क पर चेयरमैन के लड़के व साथियों ने मिलकर बेइज्ज़त कर दिया और माँग में सिंदूर डालने का उत्सव शुरू करके उसके कपड़े फाड़ दिए। किसी से प्रेम करने की साहस रखने वाली को कोई बेइज्ज़त ही कर दिया जाए तब कोई भी लोग उसे रोकने के लिए तत्पर नहीं है। जबकि नारी का किसी पुरुष से प्यार करने में ध्यान ज़रूर आते हैं और उसे दो–चार लगाकर फैलाने व नारी को बदनाम करने के लिए तत्पर रहते हैं।

समाज के इस दृष्टिकोण में बदलाव लाना ज़रूरी है। बदलाव तभी संभव है जब औरतें एक–दूसरे के मददगार बन सके। यानि कि औरत ही औरत का दुश्मन न बने। सदियों से लोगों के विचार में मिल–जुल गयी विचारधाराओं में परिवर्तन लाने के लिए औरत को पहले अपने सोच में यह बदलाव लाना है और आने वाले पीढ़ी को भी इसी दिशा में सीख देनी चाहिए। जब परिवार में ही उसे सांत्वना व प्रेरणा मिल जाए तो नारी का उद्धार भी संभव है और समस्याओं का सिर उठाकर सामना करने की शक्ति भी वह अर्जित करेगी जैसे निरुपमा ने अर्जित की है।

प्रेम संबंध में पुरुष व स्त्री को समान उत्तरदायित्व है। समस्या उत्पन्न होते ही नारी को प्यार की बदनामी झेलने के लिए छोड़कर चले जाना पुरुष के लिए शोभा नहीं देता। आज भी नारी उस प्रेमी की तलाश में है जिससे वह भरोसा कर सके। कहानी में भी निरुपमा दी और रेलवे स्टेशन पर आने वाली सभी लड़कियों के लिए भी उस जगह की तलाश है जहाँ उनके सपने साकार हो– "इस दुनिया की वह कौन–सी जगह थी, जहाँ सब जाना चाहते थे? किसी ने कहा कि वह अभी बनी ही नहीं है। किसी ने कहा कि मौका आया है, सब लोग आज मिल भी गए हैं तो चलो, कोशिश करके देखें।"[7] कोशिश ज़ारी रखिए और अपने आप उम्मीद रखिए, सुबह जल्द ही आने वाला है।

संदर्भ :-

1. साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में परिवर्तित नारी जीवन मूल्य, डॉ छाया देवी घोरपडे, पृ. सं. 83–84
2. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, गीताश्री, पृ. सं. – 9
3. स्याही में सुर्खाब के पंख, अल्पना मिश्र, पृ. सं. – 13
4. वही, पृ. सं. 21–22
5. वही, पृ. सं. 38
6. वही, पृ. सं. 38
7. वही, पृ. सं. 44

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 168-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामायण में प्रेम के विविध रूप

–डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर।

प्रेम शब्द संस्कृत भाषा के प्रिय शब्द में इमनिच् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। जिसके अनुसार प्रेम का अर्थ है प्रिय का भाव अथवा प्रिय होना। प्रिय शब्द प्री धातु में क प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है, जिसे प्यारा, अनुकूल, सुखद, अभिलषित, अनुरक्त, प्रेमी, पति आदि अर्थों में ग्रहण किया गया है। अमरकोश में अप्रियता के अभाव, हार्दिक प्रीति एवं स्नेह भाव को प्रेम की संज्ञा दी गई है। एक दूसरे के प्रति समर्पण, एकनिष्ठता का इसमें निर्वाह होता है। वस्तुतरू प्रेम सृष्टि एवं उसके प्राणियों को एक सूत्र में बांधने वाला तत्व है। जिससे अपने–पराए, तेरे–मेरे आदि का भेद समाप्त हो जाता है। दशरूपक के अनुसार श्रृंगार रस में हमारे चित्त का विकास होता है। हृदय में जब प्रेम का उदय होता है, तब हमारी अन्तरात्मा भी कोमल हो जाती है।

रामायण भारतीय संस्कृति का वाहक ग्रन्थ है। इसमें भारतीय आचार–दर्शन, जीवन–मूल्य, आदर्शवादिता, भक्ति, सामाजिक–समरसता, प्रकृति–प्रेम, उपजीव्यता प्रचुरता में विद्यमान है। राम और सीता कथापरक वाल्मीकि–रामायण जनजीवन में लोकप्रिय एवं समादृत है। इसमें राम और सीता का प्रेम उदात्त कोटि का है। यह लौकिक प्रेम के रूप में आरम्भ होता है और इसकी परिणति अलौकिक प्रेम के रूप में होती है। पति–पत्नी के प्रेम के अतिरिक्त प्रेम के विविध रूप भी होते हैं, जैसा कि रामायण में वात्सल्य–परक प्रेम, भ्रातृ–परक प्रेम, सखा–परक प्रेम, स्वामी–सेवक–परक प्रेम आदि। इसके अतिरिक्त प्रेमीजनों के आकर्षण एवं अनुराग के भी अनेक मंजुल चित्र रामायण में उपलब्ध हैं।

वात्सल्य-परक प्रेम :-

राजा दशरथ, कौशल्या, केकैयी और सुमित्रा अपने चारों पुत्रों से बहुत प्रेम करते हैं और राम से तो ये सभी बहुत ज्यादा प्रेम रखते हैं। यहां तक कि दशरथ तो उनके बिना जीवित रहना ही नहीं चाहते हैं। राम भी अपने माता–पिता से बहुत अधिक प्रेम करते हैं और उन्हें हमेशा प्रसन्न रखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

चित्रकूट में राम अपने पिता के प्रति प्रेम के कारण भरत का अनुरोध स्वीकार नहीं करते और पिता की प्रतिज्ञा का त्याग न करने का निश्चय व्यक्त करते हैं–

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयातू सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।

भ्रातृ-परक प्रेम :-

भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भ्रातृ–प्रेम के आदर्श है। भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता राम से बहुत अधिक प्रेम करते हैं और राम के अनुगत होने में अपनी सार्थकता अनुभव करते हैं। भरत राम को भाई, पिता और बन्धु कहते हैं और स्वयं को उनका प्रिय दास मानते हैं–

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।

तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः।।

अपनी माता कैकेयी की स्वार्थपरता उन्हें बहुत पीड़ित करती है। राम के प्रति भरत इतने समर्पित हैं कि राम के वन गमन को सुनकर उन्हें आत्मग्लानि होती है और अपनी माता कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहते हैं, यदि तेरे प्रति राम सदा अपनी माता जैसा भाव नहीं रखते तो पाप निश्चय वाली तुझे मैं त्याग देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता–

न मे विकांक्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत् सदा।।

चित्रकूट में राम और भरत का मिलन होता है, जो अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। वस्तुतः भरत जैसे भ्रातृत्व के निर्वाह का कोई दूसरा उदाहरण नहीं हो सकता। स्वयं राम भी कहते हैं सभी भाई भरत जैसे नहीं होते –

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

राम भी भरत से बहुत प्रेम करते हैं।वन गमन के समय में सीता से कहते हैं – भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। राम का भरत के प्रति उत्कृष्ट भ्रातृ–प्रेम उस समय परिलक्षित होता है जब वे चित्रकूट में भरत का आगमन सुनकर लक्ष्मण से कहते हैं– तुम भरत से कोई निष्ठुर तथा अप्रिय वचन मत कहना। उसके प्रति प्रयुक्त अप्रिय वचन मेरे प्रति कहा गया समझा जायेगा–

नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिय कृते।।

भरत से मिलते ही राम की आंखों से अश्रुधारा बहने लगती है–

तावुभौ च समालिंग्य रामोऽप्यश्रुण्यवर्तयत्।

भरत के प्रति राम के प्रेम का चरमोत्कर्ष उस समय विशेष रूप से प्रकट होता है जब वे लंका–विजयोपरान्त एक क्षण भी वहां नहीं ठहरते हैं। वे विभीषण से कहते हैं कि मेरा मन भरत से मिलने के लिए व्याकुल हो रहा है। यह राम का भ्रातृ–प्रेम ही है जो भरत को अनुपम त्याग की प्रेरणा देता है। भरत ने अनायास प्राप्त राज्य को बड़े भाई के सम्मान और प्रेम के कारण ग्रहण नहीं किया और चौदह वर्षों तक राज्य का पालन एक धरोहर की भांति किया। उसे राम के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। वह सभी राजकीय सुखों का परित्याग कर, जटा–वल्कल धारण करके मुनि – वेश में नन्दीग्राम में रहता है।

लक्ष्मण का राम के प्रति अनन्य प्रेम है। वह राम के प्रति होने वाले किसी प्रकार के अन्याय को सहन नहीं कर पाते। पिता द्वारा राम को बनवास दिए जाने पर लक्ष्मण कौशल्या से कहते हैं कि मेरा भ्राता राम के प्रति हार्दिक अनुराग है। स्वयं राम भी अपने प्रति लक्ष्मण के प्रेम को स्वीकार करते हैं–

तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम्।

इसी प्रेम के कारण वे राम के साथ वन में जाने के लिए आग्रह करते हैं। लक्ष्मण ने भाई के प्रेम में राज्य, परिवार, पत्नी–सभी को पीछे छोड़कर चौदह वर्षों तक वनवास का कष्ट सहा और लंका युद्ध में अग्रणी रहकर सर्वतः भाई की रक्षा की। राम के बिना लक्ष्मण के लिए स्वर्ग, अमरता और सम्पूर्ण लोकों का ऐश्वर्य भी तुच्छ है। जब राम कष्ट में हैं तो लक्ष्मण सुखों को नहीं भोग सकते –

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा।।

राम युद्ध में शक्ति से लक्ष्मण के आहत होने पर अपने मूर्छित भाई को हृदय से लगा लेते हैं। राम का हृदय क्रन्दन

कर उठता है। युद्ध करने का साहस टूट जाता है। वे अत्यन्त शोकपरायण होकर विलाप करते हैं –

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।

तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।

राम ने जो उद्‌गार व्यक्त किए हैं उससे उन दोनों का आपस में सहज प्रेम व्यक्त हुआ है। लक्ष्मण को चेतनावस्था में आया देखकर राम का मन हर्ष से प्रफुल्लित हो जाता है। भाई को गले लगाते ही उनकी आंखों में आंसू छलक आते हैं, क्योंकि लक्ष्मण उन्हें अति प्रिय हैं। सुख–दुःख में राम और लक्ष्मण का सहगमन उनके अनुपम भ्रातृ–स्नेह को दर्शाता है शत्रुघ्न के प्रति राम के उत्कट प्रेम के दर्शन लवणासुर वध के प्रसंग में होते हैं। वे अपने अनुज को लवणासुर के वध के लिए दिव्य अमोघ बाण भी देते हैं और लवणासुर को मारने की विधि भी बताते हैं। लवणासुर का वध करके, बारह वर्ष के पश्चात जब शत्रुघ्न राम से मिलता है तो राम अपने अनुज को हृदय से लगा लेते हैं।

स्वामी–सेवक–परक प्रेम :–

राम के हित में संलग्न रहना, अनेक कष्टों, बाधाओं को उठाते हुए विशाल समुद्र को लांघना, भूख–प्यास से पीड़ित हो कर भी सीता अन्वेषण और अपनी पूंछ में राक्षसों के द्वारा आग लगाए जाने पर दाहकता को सहन करना यह सब कुछ हनुमान का राम के प्रति भक्ति एवं प्रेम ही है। सीता का कुशल–समाचार लेकर लौटे हुए हनुमान के प्रति राम का प्रेम हृदय स्पर्शी है। राम अत्यन्त हर्षित मन से हनुमान को हृदय से लगा लेते हैं। हनुमान हर मुसीबत में राम के लिए सहायक बन जाते हैं। यहां तक कि जब लक्ष्मण शक्ति लगने से मूर्छित हो जाते हैं, तो संजीवनी बूटी लाने में भी वे अपनी तत्परता दिखाते हैं और लक्ष्मण के प्राणों को बचा लेते हैं। यह सब स्वामी और सेवक का एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव ही तो है।

सखा–परक प्रेम :–

राम के परम मित्र गुहराज राम से बहुत अधिक प्रेम करते हैं। जब अपने मित्र राम को वल्कल वस्त्रों में देखते हैं तो अत्यन्त दुःखी होते हैं और उन्हें अपना सम्पूर्ण राज्य अर्पित करना चाहते हैं। इसी प्रकार राम और सुग्रीव की परस्पर मित्रता और प्रेम भी प्रशंसनीय है। सुग्रीव अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ राम–रावण युद्ध में अपना पूरा सहयोग देता है, तो वही श्रीराम भी सुग्रीव को बाली के द्वारा छीना हुआ राज उसे वापस प्राप्त करने में सहायक बनते हैं।

प्रकृति–परक प्रेम :–

जड़–चेतन, पशु–पक्षी सभी राम से प्रेम करते हैं। राम के वनगमन का प्रभाव केवल प्रजा पर ही नहीं पड़ता अपितु पशु–पक्षी एवं समस्त प्रकृति पर भी दिखायी देता है। हाथी मुँह में लिया हुआ चारा छोड़ देते हैं तथा गायें बछड़ों को दूध पिलाना छोड़ देती हैं। (रात्रि में) नक्षत्रों की कान्ति फीकी पड़ जाती है, समस्त दिशाएँ व्याकुल हो जाती हैं तथा चारों ओर अन्धकार छा जाता है। वृक्ष फूल, अंकुर एवं कलियों सहित सूख जाते हैं, नदियों, जलशयों तथा सरोवरों का जल गर्म हो जाता है। राम के शोक से पीड़ित सारा वन नीरव हो जाता है। राम को छोड़ कर लौटे हुए अश्व भी आँसू बहाते हैं। वे भी राम के वनवास से दुःखी होते हैं। इस प्रकार रामायण में प्रेम कहीं भक्ति के रूप में है तो कहीं सेवक के रूप में है तो कहीं कर्तव्य के रूप में तो कहीं प्रतिज्ञा के रूप में भी है।

दाम्पत्य–प्रेम :–

राम और सीता का दाम्पत्य प्रेम रामायण के चित्रपट पर बहुत ही स्फुटता के साथ अभिव्यक्ति पाता है। राम और सीता का दाम्पत्य प्रगाढ़ था। राम के व्यक्तित्व के विकास में सीता का सर्वाधिक योगदान है। पत्नी की महत्ता पति के सुख–दुःख में साथ देने में है। रामवन–गमन में सीता वन में साथ चलने का आग्रह करती है। सीता एक अर्धांगिनी की भांति अपने पति की सफलता में अपनी सफलता मानती है और उनके कुशल–क्षेम के लिए देवी–देवताओं के समक्ष मनौती

करती है। यहां तक कि राम–लक्ष्मण के साथ नाव से गंगा पार करते समय गंगा से कहती हैं, वन से सकुशल लौटने पर मनोरथ के पूर्ण होने पर प्रसन्नता से आपकी पूजा करूंगी। सीता द्वारा मायावी मृग की प्राप्ति हेतु आग्रह करने पर, सीता के प्रति प्रेम होने के कारण राम सब कुछ जानते हुए, लक्ष्मण के मना करने पर भी चल देते हैं। जब सीता हा सीते, हा लक्ष्मण की ध्वनि सुनती है, तो वह राम पर आए संकट की कल्पना से आशंकित होकर, राम की सहायता के लिए लक्ष्मण को जाने को कहती है किन्तु लक्ष्मण के मना करने पर क्रोध करती हुई मार्मिक वचन बोल जाती हैं और कहती हैं कि राम के बिना एक क्षण भी पृथ्वी तल पर जीवित नहीं रहूंगी – **'रामं विना क्षणमपि नैव जीवामि भूतले'** निश्चय ही सीता के मुख से इस प्रकार के मार्मिक वचन के पीछे राम के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम ही था। सीता राम से ही प्रेम करती हैं और अपने मन, वाणी और कर्म से निरन्तर उनका ही चिन्तन करती रहती हैं। लंका में पहुंचाकर रावण सीता को बहुत प्रलोभन देता है, किन्तु राम के प्रति एकनिष्ठ प्रेम होने के कारण उन प्रलोभनों का सीता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह राम के प्रति अपना पूर्ण अनुराग व्यक्त करती हुई कहती है कि मुझे ऐश्वर्य अथवा धन से प्रलोभित नहीं किया जा सकता, क्योंकि मैं सूर्य से प्रभा की भांति राम से अलग नहीं की जा सकती। रावण के बार–बार याचना करने पर भी सीता रावण का तिरस्कार करते हुए कहती हैं कि इस निशाचर रावण से प्रेम करने की बात तो दूर रही, मैं तो इसे अपने बायें पैर से भी नहीं छू सकती–

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।

रावण–वध के पश्चात जब राम लोकापवाद के भय से सीता को स्वीकार नहीं करते तब वे बहुत दुःखी होती हैं और कहती हैं कि मेरा हृदय तो आप में ही लगा है। राम भी सीता से बहुत अधिक प्रेम करते हैं। वे उससे दूर नहीं रहना चाहते। यहां तक कि विरह के समय वायु से कहते हैं कि हे पवन! तुम उसी स्थान पर जाकर बहो जहां सीता है, और उसे छूकर मुझे छुओ–

वाहि वात यतः कान्ता स्पृष्ट्वा तां मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शचन्द्रे दृष्टिसमागमः।।

विरही राम को सब कुछ सीतामय दिखाई देता है। वर्षा काल में आकाश राम को कामातुर जैसा दिखाई देने लगा और धर्म से प्रतप्त तथा नये जल से भीगी पृथ्वी उन्हें शोकसन्तप्त सीता की भांति वाष्प छोड़ती प्रतीत होती है। वाल्मीकि ने राम और सीता के पारस्परिक प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। राम को सीता के वियोग में बहुत अधिक पीड़ा हो रही है। वे कहते हैं कि लोगों का शोक समय बीतने के साथ–साथ धीरे–धीरे कम होता चला जाता है। मेरा शोक सीता को न पाकर प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। राम कहते हैं–

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते।।

सीता–अन्वेषण के पश्चात जब हनुमान सीता की चूड़ामणि राम को देते हैं तब उनका हृदय और भी अधीर हो उठता है और हनुमान से कहते हैं, उसी स्थान पर मुझे भी पहुंचा दो, जहां तुमने मेरी प्रिया को देखा है, उसका समाचार पाकर है मैं अब एक क्षण भी रुक नहीं सकता।

लौकिक प्रेम के उदाहरण भी रामायण में प्राप्त होते हैं। अंग देश के राजा रोमपाद द्वारा भेजी गई गणिकाओं के प्रति विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृंग की आसक्ति तथा रोमपाद की कन्या के साथ विवाह वर्णन, कुशनाभ की सौ कन्याओं के प्रति वायुदेव की प्रणय–याचना का प्रसंग, अंजनी नामक अप्सरा के प्रति वायुदेव की अनुरक्ति का प्रसंग आदि लौकिक प्रेम के उदाहरण रामायण में सन्निविष्ट हैं। इस प्रकार रामायण में एक ओर प्रेम का लौकिक स्वरूप है, जो सम्पूर्ण जीव–

जगत को परस्पर जोड़े रखता है, तो दूसरी ओर यह लौकिक प्रेम समय के अनुसार प्रगाढ़ होता हुआ, विश्वास की कसौटी को पार कर अलौकिकता को प्राप्त कर लेता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची :-

1. रामायण–कालीन समाज – शांति कुमार, नानूराम व्यास
2. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
3. संस्कृत – वाङ्मय का बृहद् इतिहास – आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य
5. साहित्य – संस्कृति – चिन्तन – डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी
6. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका – डॉ. रामजी उपाध्याय
7. वाल्मीकि रामायण (हिन्दी टीका सहित) – गीता प्रेस गोरखपुर
8. देश के इस दौर में संस्कृत, संस्कृति और सांस्कृतिक अस्मिता की चुनौतियां– डॉ. हुकम सिंह
9. वाल्मीकि रामायण में राज्य, समाज एवं अर्थव्यवस्था– शान्ति स्वरूप गुप्त, श्रीनिवास मिश्र

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 173-176

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर समाज में प्रेम की पुकार

-विकास

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

समाज का स्वरूप :-

भारतीय समाज की सामाजिक सरंचना को देखा जाए तो उसमें विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं, आस्थाओं और मान्यताओं का योगदान रहा है। इन्हीं सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण भारतीय समाज में अनेकता में एकता का स्वरूप दिखाई पड़ता है। भारतीय समाज में सहस्त्रों वर्षों की सतत् विकास की यात्रा को पार करते हुए अपने आपको समकालीन दौर तक पहुंचाया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज एक ऐसा निकाय जिसमें प्रत्येक प्राणी अपनी पहचान के लिए किसी खास तरीके का व्यवहार करते हैं। समाज व्यक्ति की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली एक ऐसी संस्था है जिसमें जीवन, समरूपता और विषमता होती है और यही बात भारतीय समाज पर भी लागु होती है। भारतीय समाज अनेकता में एकता का सन्देश देने के बावजूद भी इसमें अनेका स्तर पर असमानता देखी जा सकती है। भारतीय समाज में स्त्री व पुरूष की भागेदारी को परस्पर समान बताया गया है परन्तु केन्द्र में प्राचीन काल से पितृसता का वर्चस्व रहा है। जिसने हजारों वर्षों से स्त्री को घर की चारदिवारी में व भोग्य वस्तु के समान समझा। इन दो लिंगों के मध्य एक तृतीय लिंग का अस्तित्व भी हमारे समाज में रहा है। जिसकी पहचान हिजड़ा, किन्नर, बूचरा, छक्का आदि नामों से किस जाती रही है। पहले जिस लिंगपूजक समाज में लिंग के आधार पर स्त्री जाति के साथ इतना भेदभाव रहा हो वहां लिंग विहीन तृतीय प्रकृति के लोगों की क्या दशा रही होगी? जिसका परिणाम यह रहा है कि इस तृतीय लिंगी वर्ग के मानवीय अस्तित्व को भी नकार दिया गया। समाज के बीच यह वर्ग मात्र उपहास का पात्र बनकर रह गया।

एतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किन्नर :-

किन्नरों के इतिहास को देख जाए तो उनका वर्णन हमारी संस्कृति और साहित्य में प्राचीन काल से ही मिलता आ रहा है। पौराणिक युग को देखा जाए रामायण और महाभारत काल में भी किन्नरों का उल्लेख अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भगवान राम के बनवास के समय जन सामान्य लोगों के बीच किन्नरों की उपस्थिति दर्ज की जा सकती है। महाभारत की बात की जाए तो अर्जुन का बृहन्नलला रूप व शिखण्डी के रूप में किन्नरों का उल्लेख मिलता है।

''शिखंडिन तमासाध भरतानां पितामहः।
अबर्थतजज संयाम स्त्रीत्वं तस्पात्रुसंसस्मरन्।।''

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में किन्नरों का सम्बन्ध हरमों में एवं गुप्तचरों के रूप में देखने को मिलता है। अलाउद्दीन खिलजी व मलिक काफूर के बारे मं युनिवर्सिटी ऑफ मोटाना की प्रोफेसर वनिता एवं रूट लिखती है– ''सुल्तान खिलजी मलिक काफूर की सुन्दरता पर फिदा था और उसे खम्भात की लड़ाई के बाद बतौर गुलाम खरीदा भी

गया था। इससे पता चलता है कि खिलजी के मलिक काफूर के साथ वाकई में समलैंगिक सम्बन्ध थे, इसी कारण उसको प्रधान सेनानायक भी नियुक्त किया गया।''

विविध पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रंसगों एवं सन्दर्भों का अध्ययन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि आज के समाज में अपमान, अवहेलना, अमानवीय दृष्टिकोण से देखे जाने किन्नरों का इतिहास समृद्ध है। रामायण व महाभारत में उनकी उपस्थिती का उल्लेख देवताओं के साथ किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय समाज में किन्नरों का सम्बन्ध राजघरानों के साथ देखने को मिलता है।

किन्नरों में प्रेम भाव :-

किन्नरों में प्रेम के भाग को जानने से पहले हमारे लिए प्रेम के अर्थ एवं स्वरूप को जानना आश्यक है। 'प्रेम' शब्द अपने आप में बड़ा व्यापक शब्द है। प्रेम शब्द का व्यवहार अनेक अर्थों में होता है जैसे– रूप, गुण, काम–वासना, स्नेह, प्रीति, अनुराग आदि। प्रेम एक अनुभूति का विषय है जिसे स्थूल अर्थों में समझना मुश्किल हे। प्रेम अहसास की वस्तु अधिक है और व्याख्या की कम। प्रेम उस फूल की तरह है जिसकी खुसबू को सुंघा तो जा सकता है छुआ नहीं जा सकता। सम्पूर्ण वाड़मय वैदिक काल से ही प्रेम की प्रधानता रही है। चाहे वो प्रकृति प्रेम, भक्ति प्रेम, वात्सल्य प्रेम या दाम्पत्य प्रेम अनेक रूपों में हमारे बीच प्रेम का विचरण रहा है। वेदों में धर्म स्वीकृत प्रेम को ही आदर्श प्रेम माना गया है। कबीर, जायसी आदि भक्तिकालीन कवियों ने भी प्रेम को ईश्वर तक ले जाने वाला बताया है। किसी ने प्रेम को ईश्वर–प्राप्ति का साधन माना है तो किसी ने आध्यात्मिक, अभौतिक तत्व का रूप माना है। प्रेम वाणी का विषय नहीं, गूंगे के स्वाद की भांति अनिर्वचनीय होता है। कबीरदास की मान्यता है कि मानवता के विकास में प्रेम का ही अहम् योगदान है जिस हृदय में प्रेम का संचरण नहीं होता उसे घट या हृदय को श्मशान के समान समझना चाहिए–

''जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनुप्रान।।''

प्रेम की परिभाषा :-

डा. बच्चन सिंह ने प्रेम की परिभाषा देते हुए कहा है– ''प्रेम अनुकूल वेदनीय मनोवृति है जो किसी व्यक्ति अन्य जीव या पदार्थ के सौन्दर्य, गुण, शील, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न होती है।'' इसी प्रकार महामता गांधी ने प्रेम के महत्व को स्वीकारते हुए कहा है–

'जहाँ प्रेम है वहां दया है, प्रेम में दोष की गुंजादश ही नहीं, प्रेम में अहम भाव नहीं, प्रेम में भेद नहीं, प्रेम में आयोग्यता नहीं, प्रेम स्वार्थी नहीं, प्रेम सत्य से ही प्रसन्न रहा है। प्रेम आशामय है।'

मानविकी पारिभाषिक कोष– ''किसी के प्रति प्रसन्नतामय गम्भीर आकर्षण का भाव प्रेम कहलाता है।'' इस प्रकार सभी विद्वानों ने प्रेम की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। उदात्त प्रेम को जीवन के लिए श्रेयस्कर माना गया है।

किन्नर समाज में प्रेम के स्वरूप को देखा जाए तो हमारे हाथ निराशा ही लगेगी क्योंकि आधुनिकता का दंभ भरने वाले सभ्य समाज में किन्नरों के लिए प्रेम की जगह उपेक्षा का भाव ही देखने को मिलता है। हिन्दी उपन्यासों में जिस प्रकार किन्नरों का जीवन चरित्र उभरकर पाठकों के सामने आता है वह समान्य पाठक व समाज को झकझकोर कर रख देने वाला है। जिस भारतीय संस्कृति में प्रत्येक नर में नारायण का वास माना गया, जहां तैतीस करोड़ देवी–देवता हो, जहां विभिन्न गुणों के आधार पर वृक्षों को पूजा जाता हो वहां केवल एक जननांग दोष के कारण किन्नरों को हाशिए के ही हाशिए पर धकेल दिया गया है। भारतीय संस्कृति के मूल भाव में उदात्त प्रेम निहीत रहा है वही किन्नरों के जन्म के साथ ही उन्हें अपने घर–परिवार से सिर्फ अपमान, तिरस्कार और अकेलापन ही मिलता है। किन्नरों का सम्पूर्ण जीवन प्राकृतिक प्रताड़ना के साथ–साथ घर, परिवार व समाज की प्रताड़ना को झेलते हुए बीतता है। जन्म के साथ ही उनका

दुर्भाग्य उनके साथ जुड़ जाता है। इस सन्दर्भ में नीरजा माधव के यमदीप उपन्यास में लिखा है– ''नहीं छुटती उसके प्रदीप्त होने पर फुलझड़ीयां और पटाखे, नहीं होती पूजा–अर्चना या चढ़ते थाल पर भोग पर काली रात के विरोध में वह टिमटिमाता रहता है चुपचाप निशब्दः। सूखता रहता है अंतसरस बूँद–बूँद–बूँद।''

इसके साथ लेखिका यह भी लिखती है– ''घर के एक दीये को केवल यम से संवाद करने के लिए उठाकर घूर (कूड़ा–करकट) पर रख देना और फिर उधर मुड़कर भी न देखना कि वह कब जलते–जलते बूझा, सत्य से विमुख होना है।'' लेखिका ने यमदीप के प्रतीक के माध्यम से किन्नर लिंग में जन्में बच्चे की व्यथा को उसके जन्म के साथ ही माना है और इसी अभिशप्त व्यथा को झेलते हुए सम्पूर्ण जीवन की यात्रा ही यमदीप है। जिस बाल्य अवस्था में माता–पिता का स्नेह एवं वात्सल्य और भाई–बहनों का साथ मिलना चाहिए परन्तु किन्नरों के साथ होता इसका विपरीत है। ऐसा ही मार्मिक वर्णन 'मैं पायल' उपन्यास में देखने को मिलता है– ''जब कभी पिता जी दारू के नशे में कोसते, गाली देते, ये जुगनी ! हम क्षश्रिय वंश में कंलक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है आदि जाने क्या–क्या वे बकते रहते थे। 'हिजड़ा' यह शब्द सबसे पहले मैंने उन्हीं के मुख से सुना था, पर तब मायने से बिल्कुल अनभिज्ञ थी।'' इस कथन से जान पड़ता है की एक नादान बालक को जहाँ सहानुभूति की जरूरत थी वहीं अपने पिता के द्वारा सर्वप्रथम प्रताड़ित होता है।

इसी प्रकार लेखक आगे लिखता है– ''पिता जी ने पास रखी बालटी में भरे पानी से मुझे नहला दिया फिर वहीं रखी चप्पल को टब में भरे पानी में डुबा–डुबाकर मेरे नग्न शरीर की चमड़ी उधेड़ने लगे।'' जिस घर को मंदिर की संज्ञा दी जाती है, जिस बाप को सिरजनहारा के रूप में देखा जाता है परन्तु वही बाप अपने तृतीय लींगी बच्चों के लिए हैवान कैसे बन जाता है? शायद इसके पिछे झुठी सामाजिक प्रतिष्ठा, पूर्वाग्रह से युक्त मानसिकता ही किन्नरों के लिए असमानता की दीवार खड़ी कर देती है। किन्नरों में भी प्रेम, संवदेना तथा मातृत्व भाव अन्य लोगों जैसा ही होता है वे भी रिश्ते चाहते है। किन्नर बचपन में मातृत्व प्रेम से वंचित होने के कारण ये अपने डेरे के किन्नरों में ही मातृत्व प्रेम की तलाश करते हैं। तीसरी ताली उपन्यास में सुनयना एक ऐसी पात्र है जिसको डिम्पल में अपनी मां की ममता दिखाई देती है।

इस सन्दर्भ में इन पक्तियों को देखा जा सकता है– ''डिम्पल में उसे अपनी माँ दिखती थी। बचपन से उसने ही उसे पाला–पोसा था, उसकी जरूरत पूरी की थी।'' इसी प्रकार विनीता जो पैदाइशी किन्नर थी। जो अपने अकेलेपन को झेलते हुए प्रेम की तलाश में थी। विनीता में प्रेम की गहराईयों का पता हमें विजय के माध्यम से चलता है उनके प्रेम को लेखक ने बड़ी गम्भीरता से दिखाया है– ''आज वह विजय को अपनी अदाओं से नहीं, अपने भीतर के भावों से आकर्षित करना चाहती थी। उसके मन में हमेशा विजय को जीतने की चाह थी। पर आज वह विजय के सम्मुख पराजित होने में सुख का अनुभव कर रही थी। दरअसल, विजय जिस दिन उसको कमरे में उसे अकेली छोड़कर बाहर निकल गया था, उस दिन उसका अहम आहत हुआ था, उसके भीतर की औरत जाग गयी थी।'' यहाँ यह साफ जाहिर है कि समाज से उपेक्षित समझा जाने वाला यह तबका स्त्री और पुरूष की तरह प्रेम सम्बन्ध को निभा सकने में समर्थ है, बेशक रूढ़िवादी समाज उसे इस प्रेम और स्नेह से वंचित कर देता है।

निष्कर्ष :-

अन्त में कह सकते हैं कि किन्नर भी स्त्री और पुरूष के समान इन्सान ही होते है, उसमें भी दया, ममता, करूणा आदि संवेदनाएँ होती है। जिस प्रकार आम लोग संवेदनाओं को ठेस पहुंचाने वाले को सजा देते हैं, किन्नर भी अपनी संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ करने पर उसे मुकम्मल दण्ड देते हैं। किन्नर वात्सल्य भाव से भरे होते हैं। उनमें में प्रेम का उद्‌गार फूटता है। वे भी पति, बच्चे व परिवार का सपना देखते है शायद इसी वजह से यह वर्ग रिश्तों की तलाश में अपने ही समुदाय के लोगों से झूठे रिश्तों का निर्वाह कर खुश रहने की कोशिश करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. ऋषि कुमार : महाभारत–भीष्मपर्व, उनहतरवां सर्ग, भाषानुवाद सहित, सनातन धर्म यंत्रालय, काशी
2. डॉ. नगेन्द्र : सम्पा. मानविकी परिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
3. नीरजा माधव : यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017
4. प्रदीप सौरभ : तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018
5. बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
6. महेन्द्र भीष्म : मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016
7. शरद सिंह : थर्ड जेंडर विमर्श, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
8. श्यामसुंदर दास : सम्पा. कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, पेपर बैक, 2019

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 177-182

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पारिवारिक संबंधों में प्रेम एक भावना

–डॉ. विनोद श्रीराम जाधव

हिंदी विभाग, मत्स्योदरी शिक्षण संस्था संचालित
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, अम्बड, जिला जालना, महाराष्ट्र।

जो साहित्य अपने युग का चित्र खींचता है और भावी पीढ़ी के लिए सांकेतिक मार्गदर्शन भी करता है। वहीं साहित्य अपने समय की अमिट छाप जन हृदय पर अंकित कर पाता है। हमारे देश में राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पारिवारिक क्षेत्र की समस्याएं एक–दूसरे से गुथी हुई हैं। इसीलिए किसी एक क्षेत्र में बदलाव या ऊँच–नीच आने से प्रायः सभी क्षेत्र गहराई से प्रभावित होते हैं या उनमें भी परिवर्तन आने लगते हैं, जिससे समस्त मानव जीवन झंकृत हो उठता है। साहित्य में भाषा का भी अत्यंत महत्व होता है। भाषा श्री का ऐसा अदृश्य अंग है जिसमें इंसान का सब कुछ दिखाई देता है।

आलेख के शीर्षक के अनुसार हमें आलेख के जरिये पाठकों को प्रेम के बारे में और परिवार के बारे में गहराई से मार्गदर्शन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक संबंधों में अलग–अलग प्रकार के प्रेम को भी दर्शाना है। "प्रेम के प्रभाव में या अभाव में" किस तरह से परिवार बनते हैं या बिगड़ते हैं...इस मुद्दें को भी आलेख की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए अल्पांश में समझाना आवश्यक है।

प्रेम/प्यार एक एहसास है जो दिल और दिमाग दोनों से बारी–बारी उत्पन्न होता है और जिसमें अनेकानेक कोमल भावनाएं निहित होती हैं। प्रेम एक स्नेह से लेकर खुशी की तरफ धीरे–धीरे बढ़ता है। यह एक मज़बूत आकर्षण और निजी जुड़ाव की भावना है जो सब कुछ भूल कर उसके साथ जीने के लिए प्रेरित करती है, जिसके साथ प्रेम होता है। सच्चा प्रेम वह होता है जो सभी हालातों में आपके साथ हो, आपके दुःख को अपना दुःख माने आपकी खुशी में खुश हो जाए। कहते हैं किसी को जब किसी से प्यार/प्रेम होता है तो जिंदगी बदल जाती है, जिंदगी में मानों चार चाँद लग जाते हैं। प्रेम का मतलब यह नहीं की दों लोग एक–साथ रहे कभी जुदा ना होवे बल्कि प्रेम तो दूर रहकर भी समाप्त नही होता है। प्रेम शब्द में वो एहसास है जिसे हम कभी खोना नहीं चाहते हैं। इस शब्द में सकारात्मक शक्ति छुपी है। प्रेम हमसे वो सब कुछ करवा सकता है जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। प्रेम में हम असंभव काम भी संभव कर देते हैं। प्राचीन समय में ग्रीक लोगों ने प्रेम के चार भाग बताये हैं – रिश्तेदार, दोस्ती, रोमानी इच्छा और दिव्य प्रेम। प्रेम एक रसायन है, क्योंकि यह यन्त्र नहीं बल्कि विलयन है, दृष्टा और दृष्टि का। प्रेम में सौंदर्य और आसक्ति होती है। स्त्री–पुरुष के बीच जो प्रेम है उसके आरम्भ होने में सात चरण होते हैं – आकर्षण, ख्याल आना, मिलने की चाह, अधिक से अधिक समय साथ रहने की चाह, उसे निहारने की और उससे बातें करने की इच्छा, इज़हार करने की चाह और अंत में...जीवन साथी बन जाने की चाह। विद्वानों ने प्रेम समाप्त होने या मिट जाने के भी सात लक्षण बताये हैं– एक–दूसरे के विचारों को या कार्यों को पसंद नही करना, झगडे करना, नफ़रत करना, दोनों में दूरी बना कर रखना, सम्बन्ध ख़त्म

करने के ही विचार करना, अलग होने के प्रयत्न करना और अंत में अलग हो जाना।

प्रेम के बिना ना तो इंसान जिवित रह सकता है और ना ही परिवार की निर्मिती कर सकता है। यह भी सच है कि व्यक्ति प्रेम करना भी अपने परिवार से ही सीखता है। "प्यार दों–प्यार लो" इस सिद्धांत के अनुसार बालक जब जन्म लेता है तब से बड़ा होने तक परिवार के सभी सदस्य उसे किसी न किसी रिश्ते के अंतर्गत प्रेम करते ही रहते है और वह बालक भी उनके प्यार के रंग में रंग जाता है और धीरे–धीरे वह बड़ा होने लगता है। प्रेम पाने की इस प्रक्रिया में वह भी अब अपने हम उम्र विरुद्ध लिंगी के आकर्षण में जुड़ने लगता है और इस तरह से वह अपने लिए एक जीवनसाथी चुनता है और उसके साथ मिलकर अपने परिवार के जैसा ही एक और परिवार का निर्माण करता है। बस अंतर केवल इतना है कि उस परिवार में वह किसी का बच्चा था और इस परिवार में उसका कोई बच्चा है और वह पिता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि प्रेम के बिना परिवार की निर्मिती अकल्पनीय है। प्रेम एक खास और विशेष जटिल भावना है, जिसे समझना कठिन है। बहुत से विद्वानों का मानना है कि यह दिल और दिमाग से संचालित होने वाली प्रक्रिया है। हमारा दिमाग एक तरह का रासायनिक संकेत उत्पन्न करता है जिससे हम प्रेम का मतलब समझ सकते हैं। प्रेम के कई रूप हैं –

1. अवैयक्तिक प्रेम :–

यह प्रेम एक व्यक्ति का दूसरों के प्रति किये गये व्यवहार में निहित होता है। यह प्रेम सामान्य प्रेम के जैसा नहीं होता है, बल्कि यह तो इंसान की आत्मा का नजरिया है, जिसमें दूसरों के प्रति शांतिपूर्ण मानसिक रवैया उत्पन्न होता है जो दया, करूणा, संयम, माफ़ी और अनुकम्पा जैसी भावनाओं से व्यक्त किया जाता है। इस तरह के प्रेम में इंसान किसी जानवर, किसी कार्य, किसी तत्व या किसी लक्ष्य से भी प्रेम कर सकता है।

2. पारस्परिक प्रेम :–

यह प्रेम दो मनुष्यों के बीच उत्पन्न होता है। यह न सिर्फ एक चाह है बल्कि एक शक्तिशाली भाव भी है। इसमें भावनाओं का विनिमय नहीं किया जाता है। यह प्रेम परिवार के सदस्यों, दोस्तों और प्रेमियों के बीच पाया जाता है। इस प्रेम के अंतर्गत दों मनुष्यों के रिश्तें में गहराई आती है। यह प्रेम नियमित बातचीत या सामाजिक प्रतिबद्धता, एकजुटता और नियमित व्यापार से आरम्भ होता है। यह प्रेम समाज और परिवार का आधार स्तम्भ है। यह प्रेम सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य कारकों से प्रभावित होता है। इसे आरम्भ करने में और फलने–फूलने में कईं प्रसंग जिम्मेदार रहते हैं जैसे–परिवार, रिश्तेदार, दोस्ती, शादी, सहकर्मी, काम, पड़ोसी और धार्मिक स्थल।

प्रेम के कई आधार होते हैं :–

1. जैविक आधार :– इस आधार में प्रेम को भूख और प्यास की तरह माना है। हेलेन और फिशर विशेषज्ञों ने प्रेम के तजुर्बे को तीन भागों में बांटा है– हवस, आकर्षण, आसक्ति। हवस में यौन इच्छा होती है। आकर्षण यह निर्णय लेता है कि आपके साथी में आपको क्या अच्छा लगता है। और आसक्ति में माँ–बाप के कर्तव्य, आपसी रक्षा और घर में ही साथी के साथ मन लगना।

2. मनोवैज्ञानिक आधार :–

रॉबर्ट स्टर्नबर्ग ने प्यार को त्रिभुजाकार में सूत्रबद्ध किया है– "आत्मीयता, प्रतिबद्धता और जोश। आत्मीयता में दों व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ अपनी सभी व्यक्तिगत बातों को बाँटते हैं। प्रतिबद्धता एक उम्मीद है, एक प्रण है, एक वचन है–कि रिश्ता सदैव बना रहेगा। और आखिर में जोश होता है जो रिश्ते को किसी भी परिस्थिति में आगे लेकर

चलता है। रोमानी प्रेम में आत्मीयता और जोश शामिल है और साथी के प्रेम में आत्मीयता और प्रतिबद्धता शामिल है। अथवा हम ये भी कह सकते हैं कि प्रेम में जुनून/शारीरिक आकर्षण, घनिष्ठता/निकटता की तीव्र इच्छा जागृत होना। 3. प्रतिबद्धता/बनाये गए संबंधों को आजीवन निभाने का प्रण, साहस और मनोबल।"[9] प्रेम को व्यक्त करने के अलग–अलग रूप हैं। जो इस तरह से हैं – (१) एरोस (२) भण्ड़ारण (३) अगापे (४) फिलिओ।

एरोस :–

इस प्रकार के प्रेम में व्यक्ति में रोमांटिक भावनाएं तीव्रता से पनपती है। यह भावनात्मक यौन प्रेम है जो विवाह के तुरंत बाद वैवाहिक सम्बन्ध मज़बूत बनाने के लिए आवश्यक होता है तथा जीवन भर वैवाहिक रिश्तें निभाने के काम में आता है। किन्तु यह प्रेम कुछ ही समय के लिए दिमाग में रहता है। अगर एक व्यक्ति जो प्यार में हैं और वह अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट है तो वह अपने उसी साथी को प्यार करना बंद कर देता है।

भण्ड़ारण :–

यह प्रेम पारिवारिक और दोस्ती का परिचायक है। यह प्रेम बिना शर्त के होता है, जिसमें माफ़ी का मुख्य स्थान होता है। क्योंकि इसमें प्रेम करने वाला व्यक्ति अपने प्रेम पात्र को उसके गुण और दोषों के साथ स्वीकार करता है। हाँ इतना जरूर है कि दोषों को धीरे–धीरे दूर किया जाता है। त्याग व समर्पण के साथ यह प्रेम अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचता है।

अगापे :–

यह प्रेम भी बिना किसी शर्त के होता है। इस प्रकार के प्रेम में प्रेमी को अधिकतर उसकी प्रेमिका या प्रेमी नहीं मिलते हैं यानी की उन्हें प्रेम में विछोह दुःख झेलना ही पड़ता है।

फिलीओ :–

यह प्रेम अगापे के प्रेम को जीवन्तता प्रदान करता है। यह गर्म व नर्म, स्नेही व अध्यात्मिक प्रेम का प्रतिक होता है।

सच्चा प्रेम तो कभी भी किसी भी संयोगों से या किसी भी कारणों से टूटना नहीं चाहिए। इसलिए सच्चा प्रेम उसी को कहते हैं जो टूटे नहीं यही है प्रेम की कसौटी। प्रेम की व्याख्या शब्दों में करना कठिन है। यह शब्दों से परे है, इसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है। प्रेम किया नहीं जाता है, हो जाता है। प्रेम हर युग में था, है और रहेगा। प्रेम इबादत है, प्रेम पूजा है। इसीलिए कबीरदास जी कहते हैं :–

"पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।"

कुछ लोगों ने तो लड़का–लड़की के आकर्षण तक ही प्रेम को सिमित कर दिया है जबकि ऐसा नही है त्रेता में भरत को राम से असीम प्रेम था। द्वापर में राधा कृष्ण से अंतहीन प्रेम करती थी। तुलसी को इष्ट राम से प्रेम था। मीरा, रसखान, सूरदास और चौतन्य महाप्रभु को कृष्ण से प्रेम था। श्रवणकुमार को माता–पिता के प्रति प्रेम था। भगतसिंह का मातृभूमि के प्रति प्रेम था। लैला–मजनू, हीर–रांझा रोमियो–जुलियेट ये सब स्त्री–पुरुष प्रेम के प्रतिक हैं। मदर टेरेसा का दीन–हीन इंसानों के प्रति प्रेम तो बिलगेट्स का कंप्यूटर के प्रति प्रेम था। हम कह सकते हैं कि प्रेम एक ऐसा अटूट बंधन है जिसके सहारे न सिर्फ परिवार या समाज टिका हुआ है बल्कि सारे संसार की आधारशीला यही प्रेम बना हुआ है।

इसीलिए कबीरदास जी कहते है :–

"प्रेम ना बारी उब्जे, प्रेम ना हाट बिकाय।
राजा–प्रजा जेहि रुचे, शीश देई ले जाय।।"

हर एक इंसान को किसी न किसी से प्रेम होता है। सोच–समझ कर प्रेम का अभिनय किया जा सकता है सच्चा प्रेम कदापि नहीं। किसी को डराकर या भय दिखा कर भी प्रेम नहीं किया जा सकता है। प्रेम की शक्ति से ही चलती है अनगिनत जिंदगियां। प्रेम के विराट स्वरूप और उसके अनंत छोर तक फैले असीमित विस्तार सहित मानव जीवन के लिए इसकी अनिवार्यता का अंदाजा महज इसी बात से लगाया जा सकता है कि तब से अब तक इसके बारे में इतना लिखने–पड़ने सुनने और जानने के बाद भी ऐसा लगता है मानो कुछ और बाकी है। हम कह सकते हैं कि जब तक धरा पर मानव रहेगा तब तक प्रेम का वजूद पल्लवित होता रहेगा। सारे शब्दों का अर्थ जहाँ जाकर अर्थहीन हो जाता हैं वही से प्रेम प्रस्फुटित होता है। इसीलिए तो बेजुबान जानवर भी प्रेम की भाषा समझ लेते हैं। प्रेम को शब्द रुपी मोतियों से भावना की डोर में पिरोया जरूर जा सकता है किन्तु इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। प्रेम का अस्तित्व सर्वत्र है। प्रेम के बिना जीवन कोरी कल्पना है। सच्चा प्रेम समर्पण में निहित होता है। अपनापन और समर्पण ये दोनों भाव प्रेम की उपज के लिए उपजाऊ मिट्टी की तरह हैं।

हम प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करते हुए इतना ही कहेंगे कि जिसे भी प्रेम की दौलत मिल जाए उसका तो जीवन इन्द्रधनुषी हो जाता है। बचपन में माँ–पिता, भाई–बहन का स्नेह सहित प्रेम, स्कूल–कोलेज में दोस्तों की दोस्ती का प्रेम, दाम्पत्य जीवन में जीवन साथी का अंतरंग प्रेम/प्यार और बुढापे में बच्चों का अपनत्व वाला प्रेम इन सभी प्रकार के प्रेम से मानव जीवन तृप्त हो जाता है। इस धरती पर प्रेम का अस्तित्व चिरकाल से बना हुआ है। इसी से पारिवारिक और सामाजिक स्थिरता आती है। मानव जीवन के प्रत्येक पल में प्रेम का महत्व है। वास्तव में प्रेम मानव ह्रदय की एक उदात्त भावना है। साथ ही यह मानव की एक समर्थ अनुभूति है। प्रेम ना तो रहस्यमयी भावना है और ना ही पाशविक भोग बल्कि यह तो सर्वोच्च भावों का गुणनफलक है। प्रेम शब्द का अर्थ स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अलग–अलग होता है। वायरन के अनुसार – "पुरुष का प्रेम उसके जीवन का एक हिस्सा भर होता है जबकि स्त्री का प्रेम उसका सम्पूर्ण जीवन और पूरा अस्तित्व होता है।"[२] प्रेम की क्षमता मानवी संबंधों को गहराई प्रदान करती है, भावनात्मक तथा शारीरिक रूप से करीब लाती है। और लोगो को स्वयं तथा संसार के प्रति एक दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती है।"[३]

रॉबर्ट स्टर्नबर्ग के अनुसार – "अगर किसी व्यक्ति में जूनून, घनिष्ठता और प्रतिबद्धता तत्वों की उपस्थिति है तो यह स्थिति प्रेम की पराकाष्ठा को दर्शाती है जो चिरकालीन रहती है। इस पराकाष्ठा से सामाजिक और पारिवारिक स्थिरता और मजबूती बनी रहती है। जूनून की उपस्थिति वैवाहिक संतुष्टि को तथा प्रतिबद्धता की उपस्थिति संबंधों की संतुष्टि को दर्शाती है। और इस तरह से ये प्रेम सम्बन्ध दीर्घकालीन प्रेम संबंधों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे संबंधों में आत्म–सम्मान और आत्म सामर्थ्य भी शामिल हो जाते हैं।"[४]

परिवार व्यक्ति का वह सुरक्षा कवच है जिसमें रहकर वह सुख, शांति और सुरक्षितता का अनुभव करता है। परिवार एक मौलिक सामाजिक संस्था है, जो सदियों से चली आ रही है। मनुष्यों ने खाना–बदोश जीवन व्यतीत करने के बाद परिवार का महत्व जाना और समझा। और तब से ही परिवार प्रथा समाज की अटूट कड़ी सी बन गयी है। परिवारों में परिवर्तन आने से निश्चित ही समाज भी परिवर्तित होता है। संयुक्त परिवार अब मुक्त, छोटा और एकल परिवार में बदले हैं। परिवार चाहे छोटा हो या बड़ा परिवार की सुस्थिति और स्वस्थ पड़ाव तब ही आता है जब परिवार के सभी सदस्यों में आपसी सामंजस्यता, एकता, अपनापन, प्रेम, समर्पण और त्याग जैसे तत्वों की कोई कमी ना हो। यानीकि पारिवारिक

संगठन में यह अनिवार्य है कि परिवार में रहने वाले सभी लोगों के उद्देश्यों की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और अभिरुचियों में एकता होना अत्यंत आवश्यक हैं अन्यथा परिवार बेमेल और कलह युक्त हो जायेगा और ऐसे परिवार को बिखरने में जरा सी भी देर नहीं लगेगी। भारतीय परिवारों में राम राज्य के परिवारों को आदर्श माना है। हम कह सकते है कि परिवार साधारणतया पति, पत्नी और बच्चों के समूह या रक्त सम्बन्धियों के समूह को कहते हैं। कुछ लोगों ने विवाह के बाद आये हुए तथा दत्तक लिए हुए सभी सदस्यों को भी परिवार ही माना है।

सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन–पोषण परिवार में ही होता है। बच्चों को संस्कारित करने और आचार–व्यवहार में दक्ष करने में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा केवल और केवल परिवार से ही निर्धारित व नियंत्रित होती है। नर–नारी के यौन सम्बन्ध मुख्यतः परिवार के दायरे में ही निबद्ध होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का मूल परिचय उसके परिवार, कुल, गोत्र और उपनाम से ही होता है। परिवार में सभी सदस्य एक पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था के अतिरिक्त पति–पत्नी, भाई–बहन, पितामह और पौत्र, चाचा–भतीजा तथा सास और पुत्रवधू, जैसे संबंधो, कर्तव्यों और अधिकारों से परस्पर आबद्ध, अन्य सामाजिक समूहों के सन्दर्भ में एक घनिष्ठतम अंतरंग समूह के रूप में रहते हैं। विवाह के रूपों से परिवार के रूपों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेविस मार्गन आदि विकासवादियों ने कहा है कि मानव समाज की प्रारंभिक अवस्था में विवाह प्रथा नहीं थी और सर्वत्र कामाचार फैला हुआ था। इसके बाद सामाजिक विकासक्रम में यूथ विवाह की प्रथा आई जिसमें कई पुरुष और कई स्त्रियों का सामूहिक रूप से पति–पत्नी होना रहता था। फिर धीरे–धीरे बहु पति और बहु पत्नी प्रथा आई और आज हम देखते है कि कानूनन एक पति और एक पत्नी की ही प्रथा चल रही है। कुछेक समाजों को छोडकर आज यह जरूरी हो गया है कि एक पति को या एक पत्नी को तलाक दिए बिना दूसरा पति या दूसरी पत्नी नहीं बना सकते हैं। परिवार के प्रकार विवाहों के प्रकारों पर निर्भर करते हैं। मातृ स्थानीय विवाह में पत्नी के घर पति आता है और पितृस्थानीय विवाह में पत्नी पति के घर जाती है।

परिवार को बनाने में "विवाह प्रथा" अपनी मत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव जीवन के १६ संस्कारों में से एक "पाणिग्रह संस्कार" को हम विवाह कह सकते हैं। विवाह मानव समाज की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रथा या समाज शास्त्रीय संस्था है। यह समाज का निर्माण करने वाली सबसे छोटी इकाई परिवार का मूल है। यह मानव प्रजाति के सातत्य को बनाये रखने का प्रमुख रूप से जीव शास्त्रीय माध्यम है। विवाह के कई प्रकार होते हैं– अनुलोम विवाह, अंतरजातीय विवाह, अंतरधर्मीय विवाह, ब्रम्ह विवाह, देव विवाह, आर्ष विवाह, प्रजापत्य विवाह, गंधर्व विवाह, असुर विवाह राक्षस विवाह और पैशाच विवाह। सामाजिक स्वास्थ्य के अनुसार यौन संबंधों में असंगतियाँ नहीं होना चाहिए और इन असंगतियों को रोकने का विवाह एक सर्वोत्तम उपाय सिद्ध हुआ है। प्रेमचंद के अनुसारः– विवाह स्त्री–पुरुष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएं एक–दूसरे में समाविष्ट हो जाती है।"[५] किन्तु स्वतन्त्रता के बाद के इस अति आधुनिक समय में विवाह प्रथा भ्रष्ट और कलंकित सी हो गई है। दांपत्य जीवन में न तो पति–पत्नी को दैहिक सुख है और न ही मानसिक। बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज़ की अनिवार्यता के साथ विवाह इन कारणों से विवाह में मिलन कम और अलगाव ज्यादा नजर आ रहे हैं। वैवाहिक जीवन अब जटिल से अति जटिल बना है। अब कितने ही युवक और युवतियां विवाह करने से डरते हैं। वे बस अविवाहित रहकर ही सारे सुखों को प्राप्त करना चाहते हैं। और बाकायदा कर भी रहे हैं–– "लिव इन रिलेशनशिप" इस पाश्चात्य सभ्यता की नक़ल के तहत। इसीलिए विवाह संस्था के मज़बूत पैर अब डगमगा रहे हैं।

और अंत में...

हम कह सकते हैं कि परिवार के बिना प्रेम नहीं और प्रेम के बिना परिवार नहीं। दोनों एक–दूजे से जुड़े हैं। परिवार की नींव ही प्रेम है। परिवारों में एक प्रकार की पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था रहती है। इसके तहत अंतरंगता के, खून के, वात्सल्य के, स्नेह, ममता, दया, माया, परोपकारिता, सम्मान, इत्यादि रिश्तें जन्म लेते हैं, फलते–फूलते और विकसित होते हैं। जैसे :– पति–पत्नी, माता–पिता, भाई–बहन, पिता–पुत्र, माँ–बेटा, दादा–दादी, काका–काकी, मामा–मामी, नौकर–मालिक, सास–बहु, भाभी–ननंद, देवर–भाभी, जेठ–जेठानी, साली–जीजा, ससुर–दामाद, इत्यादि। इन सभी संबंधों को मनुष्य अपने अनेक उदात्त गुणों से तथा पारिवारिक व सामाजिक दायरों में रहकर इन अति दक्षता से निभाता है। इन दायरों में कुछेक कार्यशैलियाँ भी रहती है, जिन्हें स्त्री–पुरुष अत्यंत कुशलता से निभाते हैं। समाज में वांछित और अवांछित दोनों प्रकार के लोग रहते हैं। जो व्यक्ति नीति–नियमों का सुसंस्कारों का और कानून–कायदों का उल्लंघन करते हैं वे समाज में अवांछित तत्वों को फैलाते हैं और अनैतिक कार्यों को अंजाम देते हैं।

ऐसा करने में उनके शरीर में अतिकामुकता, घमंड, इगो, अहम्, और गैर जिम्मेदारी के तत्व मौजूद रहते हैं। कुछेक लोग मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होकर भी गैर व्यवहार और अनैतिक कार्य करते हैं। और स्वयं को, परिवार को तथा सम्पूर्ण समाज को पतन की ओर ले जाते हैं। किन्तु हम कह सकते हैं कि प्रेम, वात्सल्य, माया, दया, करूणा, लगाव, सम्मान और ममत्व जैसे ईश्वर प्रदत्त तत्वों के साथ मनुष्य अगर मान मर्यादा और सामाजिक व पारिवारिक नीति नियमों से अपना आचरण रखे तो वह एक दिन जरूर सुगठित परिवार व सुगठित समाज का निर्माण कर सकता है। अंत में हम कह सकते हैं की परिवार की निर्मिती प्रेम से ही होती है और प्रेम का जन्म परिवार में ही हो सकता है। दोनों एक–दूसरे के बिना एकाकी है या दोनों एक–दूसरे के लिए पूरक है।

सन्दर्भ सूची :–

1. मानवीय शक्तियों के वैज्ञानिक और व्यावहारिक अन्वेषण : थाउजंड ओक्स, केलिफोर्निया, सेज प्रकाशन २६७३२१ (अंतर्जाल से)
2. सीमोन द बोउवार : अनुवाद : डॉ. प्रभा खेतान : स्त्री– उपेक्षिता, पृष्ठ संख्या ३३१
3. स्नायडर सी. आर. और लोपेज़, शेन, जे. (२००७) सकारात्मक मनोविज्ञान (अंतर्जाल से)
4. मानवीय शक्तियों के वैज्ञानिक और व्यावहारिक अन्वेषण : थाउजंडओक्स, केलिफोर्निया, सेज प्रकाशन २६७३२१ (अंतर्जाल से)
5. प्रेमचंद – प्रेमाश्रम – पृष्ठ संख्या १६६

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 183-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक समाज और मीडिया विमर्श के आयाम

–डॉ. विपिन कुमार वी

अतिथि आध्यापक, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,
पन्मना कैंपस, कोल्लम, केरल।

समकालीन साहित्य में विमर्श की प्रतिक्रिया और तीव्रता ज़ोर पकड़ती जा रही है। विभिन्न विधाओं और माध्यमों से विमर्श के अलग–अलग मुद्दे सामने आ रहे हैं। साहित्यिक रचना का संसार आजकल ऐसे ही विमर्श की कसौटी पर आधारित है। वैज्ञानिक उन्नति के साथ ही देश, प्रांत, स्थान आदि सभी से जुड़ी अनेक समस्याएँ हरेक कोने तक पहुँच रही है और हम जानते हैं कि इसमें सबसे बड़ा हाथ मीडिया का है। भाषा का स्थान भी मीडिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। "आज मीडिया को सबसे अधिक ज़रूरत भाषा के जानकारों की है। आज आवश्यकता से अच्छे संपादक, अनुवादक, संवाददाता, प्रूफ रीडर, डॉक्यूमेंटरी रायटर, पटकथा–लेखक, संवाद लेखक, गीतकार और कॉमेंटर की है, लेकिन योग्य व्यक्तियों के अभाव के कारण मीडिया का काम यूँ ही निपट रहा है।" (डॉ. अर्जुन चौहान, मीडिया का सीन हिंदी स्वरूप एवं संभावनाएँ, पृ.9) मीडिया जगत का जाल आज इतना व्यापक हो चला है कि आधुनिक मानव जीवन का इससे बाहर निकलना बड़ा मुश्किल है।

कंप्यूटर, टेलिविज़न, मोबाइल फोन इत्यादि आज जन–जीवन के एसे माध्यम बन गए हैं जिन्हें विकास के इस काल में अलग रख पाना असंभव है। समाचार, विज्ञापन आदि के बलबूते पर मीडिया आज सभी देशों की खबरों को प्रत्येक मानव के जीवन से जोड रहा है। हिंदी सिनिमा भी आज समकालीन मुद्दों को साथ लेते हुए मनुष्य और सामाजिक जीवन से जुड़ी परिस्थितियों को उजागर करने में सक्षम नज़र आ रही है। सिनिमा जगत का क्षेत्र विस्तार पकड़ता जा रहा है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका क्षेत्र समाज के उच्च वर्ग से लेकर आम लोगों की ज़िंदगी तक को प्रभावित कर रहा है। इसका अहम कारण कहीं न कहीं इन फिल्मों, सीरियलों और आधुनिक युग के बोंब 'वेब सीरीज़' में ऐसे सभी वर्ग से जुड़ी कुंठाओं और समस्याओं का चित्रण विभिन्न रूपों में देखने को मिलता है। वस्तुतः फिल्म अथवा सिनेमा, आधुनिक सीरियल, वेब सीरीज़, इत्यादि फैंटेसी, कल्पना, रोमानियन, यथार्थ, हास्य, शोक, त्रासदी, इतिहास, वर्तमान, भविष्य इन सभी भावनाओं तथा संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, पैंटिंग, अभिनय, नृत्यकला आदि कलाओं की रंगभूमि है। आज का यह क्षेत्र अत्यधिक विकसित एवं वैज्ञानिक और तकनीकी प्रणाली से युक्त है।

यथार्थ मुद्दों, क्षेत्र तथा वहाँ की भाषा आदि को ध्यान में रखते हुए आज की फिल्मों को रूप दिया जा रहा है। जैसा समाज, जैसा मनुष्य, जैसी वहाँ की परिस्थितियाँ इन सब को हू–ब–हू फिल्मों में उतारा जा रहा है। हॉलीवुड के प्रशस्त निर्माता एवं निर्देशक अनुराग कश्यप की बेहतरीन फिल्म 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' में आज के भारतीय समाज में व्याप्त प्रत्येक मुद्दों एवं समस्याओं को बखूबी से ढाला गया है। निम्न वर्ग, मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के आपसी संबंधों और संघर्षों को बड़ी ही बारीकी से फिल्म में उतारा गया है। कहा जा सकता है कि गुंडों, नशीले व्यापारियों और राजनीतिक व्यवस्था तक को प्रश्न की नोक पर रखा गया है। भाष से लेकर दृश्यों तक को सामाजिक यथार्थ की कोटी में रखा गया है।

अश्लीलता और निचले दर्जे तक के संवादों को बड़ी ही बारीकी से उभारा गया है। जो साधारण समाज के अति साधारण वर्ग तक को प्रभावित करते हैं, जो इस फिल्म की प्रसक्ति का एक कारण भी है। यह फिल्म भी किसी मशहूर बॉलीवुड फिल्म की तरह प्रतिशोध की कहानी बयान करती है। मगर बदले की कहानी का विस्तार किसी उपन्यास की तरह फैलाव लिए है। ढेर सारी घटनाएँ, चरित्र, उनके आपसी संबंध और बैकड्रॉप में चल रही राजनीतिक उथल–पुथल।

ये घटनाएँ आज़ादी के पहले से लेकर मौजूदा सदी के शुरुआती वर्षों तक फैली हुई है। अनुराग ने बिहार के धनबाद जिले में कोयला खदान माफिया की आपसी रंजिश की इस कहानी को बयानकरते वक्त परिवेश और चरित्र की छोटी से छोटी बारीकियों को पर्दे पर उतारा है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' के दो भाग हैं जिसमें बहुत से किरदारों ने भाग लिया है। फिल्म का दूसरा भाग ठीक वहीं से शुरू होता है जहाँ पहला खतम होता है 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' दो परिवारों की आपसी दुशमनी की कहानी है, जिसमें अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए एक दूसरे के परिवार के लोगों की हत्या की जाती है 'बदला' बॉलिवुड का पुराना फॉरमुला है और जब अनुराग कश्यप ने अपनी पहली कमर्शियल फिल्म (जैसा कि वे कहते हैं) बनायी तो इसी फॉर्मूले को चुना।

अनुराग का बचपन उत्तर भारत के एक छोटे शहर में बीता है। बी और सी ग्रेड फिल्म देखकर वे बड़े हुए और उन्होंने अपनी उन यादों को फिल्म में उतारा है। वासेपुर की युवा पीढ़ी संजय दत्त और सलमान खान बनने के सपने देखती रहती है, जैसा आज के प्रत्येक समाज में हो रहा है। एक रूटीन रिवेंज ड्रामा इसलिए दिलचस्प लगता है क्योंकि छोटे शहर की आत्मा कहानी और किरदारों में नज़र आती है, साथ ही धनबाद और वासेपुर के माहौल से भी बहुत कम दर्शक परिचित हैं। भले ही कहानी में काल्पनिक तत्व हों, लेकिन उनकी प्रेरणा वहाँ घटे वास्तविक घटनाक्रमों से ली गई है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' अनुराग कश्यप की महाभारत है, जिसमें ढेर सारे किरदार हैं और उन्हें बड़ी सफाई से आपस में गूँथा गया है। हर किरदार की अपनी कहानी है। एक पीढ़ी द्वारा की गई गलती को कई पीढ़ियाँ भुगतती रहती हैं। पहले भाग की जान मनोज बाजपेयी थे, तो दूसरे की नवाजुद्दीन सिद्दिकी। दोनों ही बहतर अभिनेता हैं, जिसकी बदौलत फिल्म में अच्छा प्रभाव छोडा गया है। दूसरा भाग पहले का दोहराव लगता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर कहानी शिफ्ट होती है और वही खून–खराबा होता रहता है। सबका क्या हाल होनेवाला है, यह पहले से दर्शक को मालूम रहता है, दिलचस्पी इसमें रहती है कि यह कैसे होगा। सामाजिक धरातल पर फैले आतंक और माहौल को बारीकी से दर्ज किया गया है। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' को आकर्षित बनाने का बड़ा कारण है निर्देशक अनुराग कश्यप। उनका प्रस्तुतीकरण लाजवाब है। बतौर निर्देशक उन्होंने छोटे से छोटे डीटेल का ध्यान रखा है। कुछ सेकंड्स के दृश्य बहुत कुछ कह जाते हैं। ऐसेकई दृश्य हैं। गैंग्स ऑफ वासेपुर की कहानी भले ही रूटीन हो, लेकिन जबरदस्त अभिनय और निर्देशन इस फिल्म को देखने योग्य बनाते हैं।

फिल्म की तरह ही वेब सीरीज़ का दौर भी आज जोर पकड़ता जा रहा है। इसलिए इसे आधुनिक युग का बोंब भी कहा जाता है। अमेरिका जैसे विदेशी राज्यों में इसका बोलबाला है। मगर कुछ वर्षों से इसका प्रचलन भारत में भी तीव्र होता दिखाई पड़ता है। नेटफ्लिक्स, एचबीओ, आमाज़ोन प्राइम इत्यादि चौनलों में विभिन्न प्रकार के वेब सीरीज़ ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। फिल्मों और सीरियलों के ही प्रसिद्ध और जाने–माने अभिनेता वेब सीरीज़ों में नज़र आते हैं। जिसकी वजह से इसे 'छोटा पर्दा बड़े सितारे' के नाम से भी संबोधित किया जाता है। प्रत्येक सीरीज़ में अलग–अलग कडियां होती हैं, जिसकी रोचकता इतनी बनी रहती है कि दर्शक बड़ी ही बेताबी से अगले सीज़न का इंतज़ार करता है। प्रत्येक सीज़न कई भागों में बटा होता है, जिसकी दीर्घता शोर्ट फिल्मों की तरह चालीस पचास मिनट या करीबन एक घंटे की होती है। जिसकी वजह से दर्शक कम समय व्यतीत कर प्रत्येक भाग देख सकता है। अपने समय के मुताबिक दर्शक इसका आस्वादन करता है। यह मीडिया जगत का एक और बड़ा आविष्कार है। भारत में भी इंटरनेट के जरिए मोबाइल

फोन, टेलिविशन और कंप्यूटर, लैपटोप आदि पर इसको अत्यधिक इस्तेमाल किया जा रहा है। नेटफ्लिक्स पर भारत की पहली वेबसीरीज़ है अनुराग कश्यप द्वारा निर्देशित 'सेक्रड गैंस'। यह वेब सीरीज़ अत्यंत रोचक है। स्वतंत्रता के बाद का भारत, उस समय की राजनीतिक स्थिति, हिंदू–मुस्लिम विद्वेष, बाबरी मस्जिद कांड आदि स्थितियों और समस्याओं को सीरीस के बीच में बयान किया जाता है। उस समय से प्रभावित गुंडे और माफिया लोग किस तरह अपना ग्रूप और कारोबार बढ़ाते हैं, इसके हेतु आपसी बेर, खून–खराबा आदि सबकुछ बड़ी ही बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। सेफ अलीखान और नवाज़ुद्दीन सिद्दिकी प्रमुख रूप से नज़र आते हैं। नवाज़ इस सीरीस की जान है। उन्हीं के जीवन से गुज़रती हुई पूरी सीरीस आगे बढ़ती है। मुम्बई और महाराष्ट्रा की गलियों तथा महानगरों के इर्दगिर्द इसकी पूरी दास्तान है। सटीक भाषा में सारी परिस्थितियों का बयान है। गाली–गलौज, अश्लीलता, हिंसा सभी बातों को यथार्थ रूप देने की भरकश कोशिश की गई है।

स्वाभाविक है कि आज की फिल्म तथा मीड़िया सामाजिक परिवेश को हू–ब–हू प्रस्तुत करने की कोशिश में है। "भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सीमाओं को लाँघते हुए आधुनिक तंत्रों के सहारे संचार माध्यम संसार के जन समूह के जीवन में परिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं।" (डॉ. माधव सोनटक्के, मीडिया और हिंदी बदलती प्रवृत्तियाँ, पृ. 115) आम नागरिक की भाषा एवं संवेदनाओं को ऐसी फिल्मों एवं सीरीज़ों में इस तरह उकेरा गया है कि, उसे भी लगता है कि विकास की इस दुनिया में उसका भी एक अहम स्थान है। उसकी संवेदनाओं को भी समझने की कोशिश की गई है, जिसमें न भाषा अश्लील लगती है न ही दृश्य। सिर्फ प्रत्येक परिस्थितियों और ज़िंदगियों को उजागर करने की कोशिश है।

विस्तृत रूप से कह सकते हैं कि आज की मीडिया, फिल्में तथा वेब सीरीस सामाजिक स्थिति का एक यथार्थ कच्चा चिट्ठा है। जिसमें कुछ भी छिपाने की ज़रूरतनहीं रह गई है। समाज, परिवेश, भाषा, संस्कृति सभी से परिचित होना आधुनिक मनुष्य की आवश्यकता है। मीडिया और फिल्मों के इस तरह के बदलाव काफी हद तक समाज के लिए लाभदायक हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि इन सबको देखने और विचार करने का तरीका मनुष्यहित के लिए होना चाहिए। तभी यह नया यथार्थ बड़ा बदलाव ला सकेगा।

संदर्भ :–

1. मीडिया का सीन हिंदी स्वरूप एवं संभावनाएँ– डॉ. अर्जुन चौहान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. मीडिया और हिंदी, बदलती प्रवृत्तियाँ– सं. रवींद्र जाधव, केशव मोरे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2016
3. इंटरनेट, सोशल मीडिया और कई वेबसाइट्स।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 186-188

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'बिना अभिव्यक्ति के प्रेम' की झलक : 'आओ तनिक प्रेम करें' नाटक के संदर्भ में

–डॉ. मंजु रामचंद्रन

असोसिएट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम – 695 034, केरल।

आधुनिक हिन्दी नाट्य जगत् में अपनी प्रतिभा तथा जीवनानुभव की शक्ति के आधार पर नाटक रचना करने वाले महिला नाटककारों में विभा रानी का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साँस्कृतिक जगत् के विविध विषयों पर विचार किया है।

विभा रानी के द्वारा सन् 2006 में लिखित नाटक है 'आओ! तनिक प्रेम करें।' मोहन राकेश पुरुस्कार से सम्मानित इस नाटक में मानवीय संबंधों में, विशेषकर पति–पत्नी संबंधों में आये दरारों पर विशदरूप से नज़र ड़ाला गया है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से मानव जीवन का कोई भी कोना अछूता नहीं है। ''वर्तमान जीवन में वैज्ञानिक प्रगति के साथ–साथ मानव जीवन की वृत्तियों में भी परिवर्तन हो रहा है। आज चारों ओर एक आतंकमयी वातावरण व्याप्त है।''[1] अब मशीनीकरण के असर से मानव मन प्रेम, आत्मीयता, अपनापन आदि बातों से दूर भाग निकला है। ''मानव में संत्रास, निराशा, व्यथा, रिक्तता आदि का बोध–गहराता जा रहा है। इस युग में प्रेम, स्नेह तथा आस्था का स्थान घृणा एवं अनास्था ने, विश्वास का स्थान अविश्वास ने, सद्भावना का स्थान दुर्भाव ने और श्रद्धा का अश्रद्धा ने ले लिया है। ये सभी बातें आज रिक्तता बोध के मूल में मानी जाती है।''[2] मानव केवल मशीन की तरह यानि की पैसा कमाने की चक्कर में अपनों को तथा अपने आप को भी भूलकर रह जाता है। यह स्थिति उस समय तक रह जाएगी जब उसके दिमाग से पैसे की नशा उतरेगा तभी वह अपने परिवार के बारे में, दुनियादारी की कीमत के बारे में सोचना शुरु करेंगे। ''आज मनुष्य का जीवन जितना आधुनिक और भौतिक सुख सुविधाओं से युक्त हो रहा है, उतना ही उसका भावात्मक विश्व उजाड़ हो रहा है। उसके सामने एक ओर भौतिक विकास की गंगा है तो दूसरी ओर भावनात्मक स्तर पर टूटते रिश्तों का विशाल रेगिस्तान है।''[3]

'आओ! तनिक प्रेम करें' नाटक में एक ऐसा आदमी का चित्रण है, जो अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की जिद्दोजहद में अपनी पत्नी तथा बच्चों के लिए समय निकालना आवश्यक नहीं समझता है। ज़िन्दगी की भागदौड़ में वह अपने लिए जीना भी भूल जाता है। परिवार के लिए वह सब कुछ करता है। लेकिन बीवी बच्चों से आत्मीयता का बर्ताव नहीं रखने से एक तरह का अजनबीपन उसके जीवन में छा जाता है। उन्होंने अपनों से ज्यादा महत्व अपनी नौकरी को दिया था, जिससे वह अपने परिवार से तथा रिश्ते–नाते से बहुत दूर रह जाता है।

'आओ! तनिक प्रेम करें' नाटक में केवल दो ही पात्र हैं जो पति–पत्नी है। दोनों नौकरी पेशा है। लेकिन पति अपनी नौकरी में इतना तल्लीन हो गया है कि परिवार के बारे में सोचने तक के लिए उसके पास समय नहीं था। उसका पूरा दिन अपने काम के सिलसिले में व्यतीत होता है। असल में नौकरी के शिकंचे में वह अपनी ज़िन्दगी जीना ज़रूरी नहीं समझता है। इसका परिणाम तब होता है जब वह रिटायर होकर घर वापस आता है। उन्हीं दिनों अकेलेपन से वह

बुरी तरह परेशान हो जाता है। पत्नी तो नौकरी करती है साथ ही वह घर परिवार की सारी ज़िम्मेदारियों को एक साथ निभाती भी है। परिवार के सभी कार्य वह अकेले ही करती थी। घरेलू मामलों में पति का कोई मदद न मिलने के कारण आदि से ही वह अपनी पूरी लगन से घर तथा बच्चों की देखभाल करती थी। इसी बीच पति जो पैसे की चमक में परिवार से दूर रह गये थे उनके लिए पत्नी के मन में जगह नहीं रह गया था। इसलिए रिटायरमेंट के बाद पति जब घर बैठने लगे तो उसका जीवन अकेलेपन में घुटता रहता है। पति–पत्नी के बीच का संबंध इतना शिथिल पड़ गया था कि वे एक दूसरे के मन को नापने के लिए असमर्थ हो जाते हैं।

असल में ये दंपति का जीवन एक दूसरे के लिए समर्पित था। लेकिन पति जो नौकरी में इतना डूबा था कि पत्नी से प्यार करने का उन्हें अवकाश नहीं मिला था। दरअसल वह इसकी आवश्यकता भी महसूस नहीं करता था। इसलिए पति–पत्नी के संबंध की जो स्वाभाविकता है, वह इन के जीवन से दूर रह गयी थी। एक प्रकार की कृत्रिमता दोनों के संबंध में छा जाती है। प्रेम की अभिव्यक्ति के अभाव में जीवन नीरस तथा रिक्त हो जाता है। इस प्रकार की रिक्तता जीवन तथा रिश्तों को खोखला बना देती है। ''इस खालीपन से शुरू होती है तलाश, वह तलाश है प्रेम की और प्रेम की अभिव्यक्ति की जो नाटक में देखने को मिलती है।''[4]

'आओ! तनिक प्रेम करें' नाटक के पति नौकरी से रिटायर्ड होकर घर में अपने आपको अकेला महसूस करता है। इस अकेलेपन की परेशानी में वह तड़पता रहता है। बच्चे भी बड़े हो गये थे। सब अपने–अपने काम में व्यस्त रहते हैं। बच्चों को जब पिता के प्यार की आवश्यकता थी तब पिता अपने काम में व्यस्त रहते थे। बच्चे या परिवार के लिए उनके पास समय नहीं था या वह उसकी आवश्यकता को महत्वपूर्ण नहीं समझता। बचपन में बच्चों को पढ़ाई में या खेलों में वह कभी साथ या मदद नहीं देता था। इसलिए बड़े होते–होते बच्चे पिता से दूर रहते रहे। माँ ही हमेशा बच्चों की देखभाल करती थी। उनके सभी कार्यों को अन्य पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के साथ वह अकेले निभाती रहती थी। नौकरी के साथ घरेलू मामलों को भी एक साथ संभालती हुई वह बुरी तरह पिस जाती थी। पति की ओर से जो उपेक्षा का भाव भी। यहाँ नौकरी पेशा नारियों के जीवन की समस्याओं को नाटककार ने सही ढंग से अभिव्यक्ति दी है।

शुरू से ही बच्चों को अपने पापा से कोई सहारा नहीं मिला था। इसलिए वे हमेशा उनसे दूर रह जाते थे। किसी भी कार्य को पापा से वे शेयर नहीं करते थे क्योंकि मानसिक तौर पर एक प्रकार का अलगाव इनके रिश्ते में भरा हुआ था। इसलिए बड़े होने पर बच्चे अपनी ज़िन्दगी के फैसले खुद लेते हैं। बेटी निकी अपनी पसंद के लड़के से शादी करती है, और बेटा अनिमेश उच्च शिक्षा पाकर विदेश चला जाता है। घर खाली पिंजरे के समान शून्य रह जाता है।

नाटक के नायक अकेलेपन की नीरवता में गत कार्यों को सोचने लगता है। उसमें जीने की अभिलाषा, प्यार मिलने की आकांक्षा जाग उठती ही है। अपनी पत्नी से वह प्रेम करना चाहता है। ज़िन्दगी भर उन्होंने नौकरी की है लेकिन इसी बीच बह जीना या प्यार करना, भूल गया था। इसलिए जो पाना था, जिसका अनुभव करना था, हमेशा वह उससे वंचित रह गया। वह चाहता है कि पत्नी उसके लिए समय निकालें, उससे प्यार करें लेकिन पत्नी अपने उत्तरदायित्वों में इतनी फंस गयी थी कि उसको तनिक भी समय नहीं मिल रहा था और उसे उस प्रकार की ज़िन्दगी का ही आदत पड़ गया था। ऊपर से रिटायर्ड होने में उसे पाँच साल बाकी भी था। घर के सारे कामों को निपटाने के बाद वह नौकरी पर चली जाती है। पति घर में अकेलेपन से घुटता जा रहा था। वह पत्नी से कहता भी है ''दरअसल..... जी चाहता है कि तुम यहाँ..... मेरे पास आओ, इधर बैठो। मुझे देखो, मुझे छुओ..... ।''[5] लेकिन पति के इस प्रकार के व्यवहार से पत्नी शंकाकुल हो जाती है। उसे लगता है कि पति को बुढ़ापे का शौक चढ़ा है। उसे अपने पति के व्यवहार से क्रोध भी आता है। उसे तो हफ़्ते में एक दिन की छुट्टी जो मिलती है, उस दिन घर के कामकाज में व्यतीत करना है। पति के बार–बार स्नेह के लिए अपेक्षा करने के बावजूद भी उसके लिए समय निकालने में वह असमर्थ रहती है क्योंकि जिन्दगी भर

कूटती–कूटती उसका यह आदत हो गया था कि बाहर जाके नौकरी करना, घर के सारे कार्यों को बिना किसी की सहायता से संभालना। प्रस्तुत नाटक के द्वारा विभा रानी नारी के संघर्षों को वाणी देने का प्रयास करती है।

घर में अकेले बैठते–बैठते नायक को धीरे–धीरे अपनी गलतियों का एहसास होता है। वह कहता है, ''जीवन में साठ साल और उससे ये तीस साल यूँ ही कैसे नीरस और बेजान से निकल गए। प्रेम के बारे में रोमांस के बारे में पल भर के लिए भी नहीं सोचा। लगा ही नहीं कि जीवन में उसकी भी जगह है। अपने काम में इतना महरूफ रहा कि प्रेम ही जीवन से छूट गया है, सपने। सब मेरा ही कसूर है।''[6] पत्नी का सामिप्य वह इतना चाहता है कि उसकी अनुपस्थिति के क्षणों को वह बेचैनी से पार करता है। वह सिर्फ़ अपनी पत्नी का प्रेम पाना चाहता है। उसको लगा कि ज़िन्दगी की सार्थकता अपनी पत्नी के प्यार मिलने में है।

नाटक के आखिरी पन्नों में हम यह भी पा सकते हैं कि पति–पत्नी उस सुख का अनुभव कर रहे हैं जिसे वे वर्षों पहले से पाना चाहते थे। स्त्री का उलाहना था कि पति क्यों उसे ज़िन्दगी भर रुलाते रहे। ''क्यों इतना रुलाया मुझे, तडपाया, तरसाया क्यों? क्या कसूर था मेरा?''[7] अपनी जवानी के दिनों में वह जिन अनुभूतियों से वंचित थे, उसे वापस मिलकर पति–पत्नी दोनों हर्षोल्लास में डुबकी लेते हैं। ''आओ अभिव्यक्ति के इस गहरे सागर में डूब जायें। गहरे और गहरे। कामना की सीपी में उमंगों की स्वाति की बूँद भरे, भावनाओं की ओस से भीगी दुब को सुनकर उसका धागा बनाए और इन जीवित इच्छाओं को उसमें पिरोकर उसकी माला बनाएँ और हम दोनों उसे पहन लें।''[8]

दांपत्य जीवन में प्रेम की अभिव्यक्ति के अभाव में जागृत रिक्तता या खालीपन विभा रानी के ''आओ! तनिक प्रेम करें'' नाटक में स्वर प्राप्त है। अभिव्यक्ति के अभाव में मानव जीवन अधूरा है। रिश्तों को बनाये रखने में प्रेम का बहुत बड़ा महत्व है। बिना अभिव्यक्ति के प्रेम से कोई मतलब नहीं है। प्रस्तुत नाटक आजकल के पति–पत्नी संबंधों के विशेषकर नौकरीपेशा दंपतियों के जीवन में मौजूद विसंगतियों को अन्तसंघर्षों को उजागर करने में सफल निकला है। जीवन के यथार्थ को बड़ी सच्चाई के साथ नाटक में उभारा गया है। मंचीयता की कसौटी पर भी यह नाटक खरा उतरता है। इसका कई जगह सफल मंचीकरण हुआ भी है। भाषा सुडौल और पात्रोचित है। शिल्प की नवीनता भी नाटक की और एक खूबी है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :–

1. कुसुम अंसल के काव्य साहित्य में चित्रित नारी जीवन के विमर्श, डॉ. आर.पी. भोसले, पृ. 101
2. वही।
3. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य, डॉ. राजेन्द्र खैरनार, पृ. 96
4. हिन्दी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान, डॉ. दीपा कुचेकर, पृ. 162
5. आओ! तनिक प्रेम करें, विभरानी, पृ. 12
6. वही, पृ. 164
7. वही, पृ. 164
8. वही, पृ. 166

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 189-196

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेम संदेश को मजबूत करती भारतीय सिनेमा की फिल्म 'गाइड'

–विकास बेरवाल, शोधार्थी
–डॉक्टर सुनैना, शोध निर्देशिका
सहायक प्रोफेसर, मीडिया अध्ययन संकाय, गुरु जंभेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार।

भूमिका :–

सिनेमा जनसंचार का एक लोकप्रिय माध्यम है यह दृश्य–श्रव्य के साथ–साथ संगीत, भाव, रंग, संवाद आदि तकनीक का उपयोग कर दर्शकों को अपने प्रति आकर्षित करता है। जिस तरह साहित्य समाज का दर्पण होता है, उसी तरह सिनेमा भी समाज को प्रतिबिंबित करता है। फिल्मों के ऐसे अनेकों संवाद हमारी जिंदगी का हिस्सा स्थाई रूप से हिस्सा बन चुके हैं, जिन्होंने हमारे मतिष्क पर अमिट छाप छोड़ी है। समाज में होने वाले घटनाक्रम से प्रेरित होकर सिनेमा बनता है, जिसमें दर्शक अपना अक्स देख कर उसे आत्मसात करता है। स्क्रीन पर लिखे जाने वाली कहानी, संगीत, भाव, अभिनय एक जीता जागता साहित्य रूप ले लेता है। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि फिल्म के पास अभी व्यक्ति के जितने उपकरण हैं, उतने अन्य किसी विधा के पास नहीं।

सत्यजीत राय के शब्दों में कहें तो 'फिल्म एक चित्र है, फिल्म एक शब्द है, फिल्म एक आन्दोलन है, फिल्म नाटक है, फिल्म संगीत है, फिल्म एक कहानी है, फिल्म हजारों अभिव्यक्ति पूर्ण श्रव्य एवम् दृश्य आख्यान है।'

प्रेम एक अनुभूति है एक एहसास है, जो विभिन्न रूपों में हमारी जिंदगी को प्रभावित करता है यह प्रकृति, भगवत, व्यक्ति, पशु–पक्षी आदि के प्रति हो सकता है, जो हमारी भावनाओं को आंदोलित करता है, जिसका असर हमारे फीलगुड हार्मोन पर सीधा होता है, जो तनाव, अवसाद और थकान को मिटा कर हमारे अंदर ऊर्जा का संचार करता है।

प्रिया दत्त शर्मा द्वारा इंडिया टाइम्स पर लिखें एक लेख के अनुसार "अगर इंसान खुश होगा तो तनाव जीवन में अपने आप कम होगा लिहाजा सेरोटोनिन अगर ज्यादा है तो आप डिप्रेशन से भी ग्रस्त नहीं होंगे, खुश रहने के चांस ज्यादा होंगे।"[1]

देव आनंद की फिल्म 'गाइड' दोस्ती, सफलता, प्रेम, आत्म–मंथन और जीवन–दर्शन के साथ समाज–प्रेम और भगवत–प्रेम तक की यात्रा का वर्णन करती है। इस फिल्म द्वारा स्थापित किए गए कीर्तिमानों और मंत्रमुग्ध करने वाले संदेशों के आधार पर इसे भारतीय सिनेमा की एक बेहतरीन रचना माना जाता है।

मुख्य शब्द :– भारतीय सिनेमा, प्रेम, फिल्म, देवानंद

सिनेमा और प्रेम का संबंध :–

सिनेमा और प्रेम का संबंध एक दूसरे से इतना गहरा है कि एक दूसरे के बिना इसका होना ना होने के बराबर है। सिनेमा में प्रेम के अनेक रूप जैसे मातृ प्रेम, पितृ प्रेम, भाई या दोस्ती का प्रेम, प्रेमिका प्रेम, समाज प्रेम, देश प्रेम, पशु प्रेम आदि के रूप में हमारे सामने झलकता है। सिनेमा चाहे हमें किसी भी श्रेणी का बनाना हो प्रेम के तत्वों की मौजूदगी उसमें स्थाई रूप से रहेगी। भारतीय सिनेमा की बात करें तो आरंभिक फिल्मों में भगवत प्रेम, पुराण–कथाएं और

लोक–कथाओं को ही केंद्र में रखा जाता था। जिनके उदाहरण के रूप में हमें दादा साहेब फाल्के राजा हरिश्चंद्र, कृष्ण–जन्म, बजरंगबली, अयोध्या का राजा आदि देखने को मिली। इस तरह की फिल्मों के पीछे दो कारण थे, एक तो पूरे भारतीय समाज के मन में बसे विषय और दूसरा धार्मिक और पौराणिक फिल्मों में कड़े सेंसर की कोई बाधा भी नहीं थी। किसी भी फिल्म के ऊपर नजर डालें तो वहां पर विभिन्न तरह के प्रेम रूपों को देखने का हमें अवसर मिलता है, परंतु इस प्रकार की फिल्में देखने में कम ही मिली जिनमें प्रेम भावनाओं के इतने स्वरूपों का वर्णन हो, लेकिन 1965 में नवकेतन फिल्म्स और देवानंद की पहली रंगीन फिल्म गाइड में भारतीय सिनेमा के इतिहास में अपने को इस तरीके से प्रस्तुत किया कि जिसमें हमें विभिन्न प्रकार के प्रेम रसों का अनुभव करने को मिलता है और यह अपनी तरह की इकलौती और अनूठी फिल्म है।

10 अक्टूबर 2018 द हिंदू के लेख जर्नी ऑफ 'द गाइड' में बालाजी विट्ठल और अनिरुद्ध भट्टाचार्य द्वारा जिक्र किया गया कि "यह एक बेहतरीन फिल्म थी। इसके बारे में कहा जाता है कि 'गाइड' एक बार ही बनी और कभी दोबारा नहीं बन सकती।'[2]

गाइड का आधार :–

फिल्म बनाने के निर्णय को 1961 में मिले 'द गाइड' उपन्यास को साहित्य अकादमी अवार्ड से जोड़कर भी देखा जाता है। साहित्य अकादमी अवार्ड जीत चुके आर.के. नारायण के लिखे उपन्यास 'द गाइड' 1958 पर आधारित यह फिल्म 1965 में 2 भाषाओं में बनी अंग्रेजी और हिंदी। जिसमें अंग्रेजी भाषा के लिए 'पर्ल बक' ने लेखन किया जो एक नोबेल पुरस्कार विजेता थी और अंग्रेजी फिल्म का निर्देशन 'टेड डेनियल व्हिस्की' ने किया जो बुरी तरह फ्लॉप हुई। ज्यादातर फिल्में अगर हम देखें तो वह किसी ने किसी कहानी या नाटक के ऊपर आधारित होती हैं।

जॉन हैरिंगटोन ने अपनी पुस्तक फिल्म 'एंड/एज आर्ट' 1977 में भी बताया है कि "सभी तरह की फिल्मों पर नजर डालें तो दो तिहाई फिल्में किसी न किसी उपन्यास नाटक या कहानी के ऊपर आधारित होती हैं।'[3]

अंग्रेजी भाषा में बनी फिल्म की असफलता के बाद भी देवानंद जी ने हिंदी में इस फिल्म को बनाने का निर्णय लिया। फिल्म लेखन और निर्देशन की जिम्मेदारी अपने छोटे भाई विजय आनंद को सौंपी।

देवानंद का व्यक्तित्व :–

देव साहब सदाबहार हिरो रहे, जो 'ग्रेगरी पेक' के अंदाज में अभिनय किया करते थे उनके हिलने–डुलने चलने का अंदाज, मंद मुस्कान के साथ संवाद अदायगी ने उनको लोकप्रियता की चोटी पर पहुंचा दिया था।

प्रभासाक्षी न्यूज (2018) पर प्रगति सक्सेना के लिखे लेख के अनुसार देवानंद 20वीं सदी के फैशन आइकॉन भी थे। देवानंद की दीवानगी लोगों के सिर चढ़कर बोलती थी और लोग उनकी एक झलक पाने के लिए बेकरार रहते थे। श्देवानंद' सफेद शर्ट और काले कोर्ट में बेहद कमाल दिखते थे इसलिए फिल्म 'काला पानी' (1960) के बाद कोर्ट ने उन पर काला कोट पहनने की पाबंदी लगा दी थी।[4]

गाइड का प्लॉट :–

फिल्म की शुरुआत जेल के दृश्य से होती है जिसमें राजू (देवानंद) की रिहाई होती दिखाई जाती है।

इस पहले दृश्य को केवल 15 सेकंड में निर्देशक 'विजय आनंद' ने पेड़ से उड़ते पक्षियों के झुंड से इस खूबसूरती के साथ दर्शाया की कैद से रिहा होने की खुशी को दर्शकों ने दिल से महसूस किया।

फिल्म में राजू (देवानंद) अपनी पुरानी जिंदगी को याद करता है। फिल्म फ्लैश बैकमें राजू की पुरानी जिंदगी को दिखाती है, जहां वह गाइड के रूप में सैलानियों को घुमाता राजस्थान के उदयपुर का एक मस्त मौला और खुशमिजाज किस्म का गाइड दिखाया गया है। जो अपनी मां के साथ रहता है और सभी का ख्याल रखने वाला बेहतरीन इंसान है।

तभी वर्तमान में उसके मन में चल रही बातचीत से आवाज आई कि 'जो शहर कल तक तेरे कदमों में झुकता था, आज वह कहीं तुझे चोर ना समझे क्योंकि आज तो जेल से छूटा है हो सके तो छोड़ कर ये शहर, कहीं और बसा ले अपनी दुनिया।'

महज 4 मिनट में वर्तमान और भूत के साथ फिल्म की आगे की कहानी का रुख साफ कर प्लॉट बना चुकी फिल्म में टाइटल को 'शैलेंद्र' के लिखे और 'एस. डी. बर्मन' के गीत–संगीत और उनकी आवाज से सजे गीत 'वहां कौन है तेरा, मुसाफिर जाएगा कहां' से बहुत ही सुंदरता से कवर किया गया है। गीत में खुशियों के दिन बीत गए हैं और उसके दर्द को कोई और समझ नहीं सकता को बड़ा मार्मिक रूप दिया गया है। जिसमें दिखाया गया कि दयनीय, दर्द भरे और लूट चुके देवानंद की परिस्थिति को समझने में दर्शकों को देर नहीं लगती। गीत की अंतिम पंक्तियों में पूरी फिल्म और जिंदगी का सार खूबसूरती से बताया गया है कि 'दुनिया है पानी, पानी पर लिखी कहानी' जो किसी के हाथ ना आनी यहां कुछ ना तेरा है, ना मेरा है, तो ठहर जा, दौड़ना बंद कर और गीत के खत्म होते ही देवानंद वहां पहुंचता है जहां पहुंचने के बाद पहुंचने की उसकी दौड़ खत्म हो जाती है।

एक मंदिर में गांव का भोला एक साधु के रूप में राजू को देखता है और उनके पास दौड़कर आता है, अपना परिचय देकर राजू से परिचय पूछता है तो परिचय में राजू जिंदगी और किस्मत के खेल को बतलाता है और यहीं से भोला को राजू में महान आत्मा के दर्शन होते हैं। राजू की मदद से भोला की बहन शादी के लिए मान जाती है और भोला की समस्या का हल हो जाता है, अब तक गांव में राजू को महात्मा के रूप में स्वीकार कर लिया था।

निर्देशक द्वारा प्रेम और आस्था के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को गांव वालों के व्यवहार से बड़ी सुगमता के साथ दर्शाया गया, जिसे हम भारत के किसी भी कोने में अक्सर पाते हैं। भारत की यह प्रेम और आस्था की परंपरा विश्व विख्यात है।

कहानी की शुरूआत :–

जहां नायिका रोजी (वैजयंती माला) की एंट्री होती है जो एक देवदासी की लड़की है। उसकी मां उसे इस माहौल से दूर रखना चाहती है तो ऐसे में एक इतिहासकार मारको से उसकी शादी हो जाती है, मारको से रोजी की अनबन ही रहती है, उनके बीच दूरियां निरंतर बढ़ती जाती हैं। मारको गुफाओं के अध्ययन के लिए राजस्थान के उदयपुर में आता है और वह गाइड के रूप में राजू को चुनता है, जहां रेलवे स्टेशन पर राजू और रोजी पहली बार मिलते हैं। रोजी और मारको के बीच चल रही अनबन के चलते राजू, रोजी को शहर घुमाता है, तभी रोजी नाग–बस्ती में नृत्यांगना के बारे में पूछती है, जहां सम्मोहित होकर रोजी भी नाचने लगती है और राजू को उसके अंदर छुपी प्रतिभा का एहसास और दर्शन होता है।

नायक और नायिका के संगम के दौरान ही फिल्म में नवविवाहित युवती को प्रेम और अपनी भावनाएं सांझी ना कर पाने से तंग होकर नर्क जैसा जीवन व्यतीत करती दिखाया। जो दर्शकों में हिरोइन के प्रति सहानुभूति इक्कठी करने का सफल प्रयास रहा। निर्देशक द्वारा दिखाया जा चुका था कि इंसान के लिए रुपया, पैसा और दौलत उसको सुख नहीं दे सकते या यूं कहें प्रेम की पूर्ति नहीं कर सकते। प्रेम का ना होना इंसान को किस प्रकार दुखी और मजबूर कर देता है, यह एहसास दर्शक सुगमता से समझ पाते हैं और हिरोइन के प्रति दयनीय भाव भी अपना लेते हैं।

अनकही दोस्ती :–

फिल्म में नायक और नायिका की अनकही दोस्ती को निर्देशक ने बड़ी ही बेहतरीन वजह के साथ दर्शाया है कि नायिका का पति मारको गुफाओं के अध्ययन में डूबा रहता है, रोजी लड़ाई–झगड़े से तंग होकर जहर की गोलियां खा लेती है, राजू उसका ख्याल रखता है और राजू के समझाने और उसकी संगत में रोजी की उड़ान को पंख मिलते

हैं। 'आज फिर जीने की तमन्ना है' में शैलेंद्र के लिखे और लता मंगेशकर की आवाज के माध्यम से एक युवा लड़की के सपनों की और उसकी जिंदगी की असीम ऊंचाइयों को पाने की चाहत नजर आती है। राजू की उत्साहवर्धक बातें रोजी के इरादों को और भड़का देती हैं और आखिरकार मारको की बेवफाई से दुखी होकर बगावत कर बैठती है। जिसके चलते मारको की औरतों को लेकर घटिया सोच ने रोजी को तोड़ दिया और फिल्म में कहे संवादों के अनुसार राजू की दिखाई चिंगारी पाकर रोजी ने अपना आशियां फूंक डाला। अब राजू और रोजी एक दूसरे की भावनाओं को बयान करते हुए मोहम्मद रफी का गीत 'तेरे मेरे सपने अब एक रंग हैं' के माध्यम से सुख–दुख और राहे साझा करते स्पष्ट नजर आए।

इस प्रस्तुति में और आज के दौर में भी जब प्रेम परिस्थिति से गुजरता है तो यह गीत अंतर्मन की गहराई में कुछ ऐसे उतरता है, जिसमें दर्शक अपने को प्रेम के सागर में डुबाए बिना नहीं रह सकते, प्रेम की इन्हीं भावनाओं को 'मोहम्मद रफी' जी की आवाज ने हर दिल अजीज बना डाला।

राजू को चुकानी पड़ी दोस्ती की कीमत :–

पति का घर छोड़ कर आई रोजी और उसके सपने पूरे करने के लिए राजू को भी अपने घर परिवार और समाज सभी के साथ दुश्मनी मोल लेनी पड़ती है क्योंकि समाज पति का घर छोड़ कर आई रोजी और नाचने वाली को अपना नहीं पा रहा था, आखिरकार उसका दोस्त गफ्फूर भी उसका साथ छोड़ देता है।

नायक ने नायिका से जो वादा किया था कि 'लाख मना ले दुनिया साथ नहीं छूटेगा आकर मेरे हाथों में हाथ नहीं छूटेगा' को निभाया नायिका के पंखों को उड़ान दी देवानद की प्रतिबद्धता दोस्ती की महानतम ऊंचाइयों को प्रकट करती है क्योंकि एक बेसहारा के प्रति अपनी दया और करुणा को नायक कठिन से कठिन हालात में भी जिंदा रखता है और दोस्ती में किए वायदे को निभाने के लिए अपनी मां, दोस्त और समाज से दुश्मनी मोल लेकर भी अडिग रहता है। नायक की इस त्यागमय दोस्ती के प्रति दर्शकों की कायलता होनी स्वाभाविक है।

सफलता का मुकाम :–

राजू ने अब रोजी को मिस नलिनी के रूप में प्रस्तुत कर शास्त्रीय नृत्य का कार्यक्रम तय किया। 'पिया तोसे नैना लागे रे' में शास्त्रीय नृत्य की अनोखी झलक मिलती है देखते ही देखते रोजी प्रसिद्धि की ऊंचाइयों पर पहुंच जाती है। चेतन आनंद जी ने फिल्म की कहानी और संवादों में दुनिया और समाज की हकीकत के साथ कुछ इस तरीके से संजोकर दिखाया जो कहानी भी बढ़ाती है, संवादों की तारतम्यता और निरंतरता को संजोए रखती है। अब तक की कहानी दोस्त के प्रेम का सुंदरता से वर्णन करती है कि अच्छी दोस्ती मुश्किल से मुश्किल तूफान में भी अपनी नाव को किनारा दिलाने में काफी होती है। अकेले पड़े नायक के सामने तमाम चुनौतियां आने पर भी वह अपने दोस्त के सपने को साकार करने में तहे दिल से मदद करता है।

प्रेम का प्रस्ताव :–

फिल्म के 60 फीसदी हिस्सा पूरा होने और रोजी को सफलता के मुकाम पर पहुंचाने के बाद राजू अपना जीवनसाथी बनाने के लिए रोजी के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है और रोजी उसे सहर्ष स्वीकार करती है और कहती है कि 'किसी ने मुझे अपने काबिल समझा उसके लिए बड़ी बात है।'

समाज से उपेक्षा सहने के बाद जब किसी को अपनापन मिलता है तो उस खुशी को वहीदा रहमान ने बेहद प्यारे भाव के साथ अपने अभिनय के माध्यम से दर्शाया। फिल्म का पहला प्रेम गीत या यूं कहें युगल 'गीत गाता रहे मेरा दिल' जो किशोर कुमार और लता मंगेशकर की आवाज से सजा है। पहले के गीतों की तरह शैलेंद्र के लिखे बोल और एस. डी. बर्मन का संगीत परिस्थितियों के अनुरूप गीत की सजावट बढ़ाता है। विजय आनंद ने रोमांच के भरे इस समय को

पहाड़, वादियों, फूल, पेड़–पौधे, धुंध का बेहतरीन प्रयोग कर दिखाया।

गाइड हुआ मिसगाइड :-

शिखर पर पहुंचने के बाद इंसान के व्यवहार में आए बदलाव ने नायिका के मन में डर को जगह दी। एक दिन जब मारको प्रसिद्धि मिलने के बाद रोजी से मिलने आता है, यह दृश्य समाज के स्वार्थी होने का अहसास करवाता है। उधर मारको को देखकर राजू के मन में उसके प्रति नफरत दिखाई देती है। जिसमें राजू मारको को रोजी से मिलने नहीं देता। रोजी भी लगातार काम के चलते काम से उबती और राजू को सिर्फ पैसे के पीछे भागता देख राजू के संगत में भी रोजी को मारको की याद आती है। रोजी अभी– भी कला को महत्व देती है और राजू ऊंची सोसायटी के लोगों से दोस्ती करने में डूबा रहता है, जिसके चलते वह नशे और जुए को गले लगाता है। रोजी और राजू की कहासुनी शुरू हो जाती है तभी मारको का पार्सल आता है जिसमें वह गुफा पर लिखी अपनी पुस्तक भेजता है। एक बैंक प्रतिनिधि को भी मारको द्वारा भेजा जाता है, लॉकर में रखे गहने निकालने और कागजात पर रोजी के हस्ताक्षर करवाने के लिए। राजू और रोजी के बीच चल रही कहासुनी राजू के डर को बढ़ाती है कि कहीं मारको के लिए रोजी का प्यार फिर से ना जग जाए। प्यार को लेकर इंसान में सामान्यतः एकाधिकार हावी हो ही जाता है, जिसके चलते राजू रोजी के नकली हस्ताक्षर कर देता है।

अपने नायक और नायिका के बीच दूरी बहुत बढ़ जाती है। जिसका अंदाजा दर्शक सहजता के साथ लगा पाते हैं। निर्देशक द्वारा दिखाया गया कि जब भावना और प्रेम का स्थान काम ले लेता है तो हमारा मन बैठने लगता है उदासी हमारे चारों और रहती है और हम हताशा की तरफ चलने लगते हैं। तो दर्द के बादशाह 'मोहम्मद रफी' की आवाज में एक इंसान के टूटे दिल का हाल 'दिन ढल जाए हाय' से सुना डाला। हमारे साथ बैठकर कोई हमसे सुख दुख की बात जब तक ना कर ले, तब तक निराशा के सिवा इंसान के हाथ कुछ नहीं लगता। दुनिया का बड़े से बड़ा आराम में भी हमें सुख नजर नहीं आता है। रिश्तो में प्रेम की कमी किस कदर खलती है और हमारे रिश्ते को तोड़ देती है आसानी से समझा जा सकता है।

त्यागी गाइड :-

राजू और रोजी की कहासुनी के बाद अगले दिन शो पर जाने के लिए रोजी तैयार होती है। मगर राजू सब कुछ छोड़ कर वापस लौटने का फैसला कर चुका है, जो अपने पुराने कपड़ों में गाइड के रूप में रोजी के दरवाजे पर बैठा था।

रोजी कहती है तमाशा छोड़ो कपड़े बदलो राह देखती हूं।
राजू प्रति उत्तर देता है बहुत राह देखी एक ऐसी राह पर जो तेरी रह–गुजर नहीं।
रोजी कहती है आज मालूम होता है साथ आने की नीयत नहीं।
राजू जवाब देता है नीयत तो ठीक थी साथ निभा नहीं और बात है।

'विजय आनंद' ने स्पष्ट कर दिया कि सब होते हुए भी हम वहां नहीं रुक सकते, जहां प्रेम खत्म हो चुका हो या ना रहा हो। प्रेम की मानव जीवन में सर्तकता या जरूरत हर वस्तु से बड़ी है क्योंकि किसी भी चीज के लिए प्रेम की कुर्बानी नहीं दी जा सकती और प्रेम ही नहीं है तो जिंदगी में तो सब छोड़ा जा सकता है, अपना नायक भी कुछ ऐसा ही करता है।

मां बेटे का प्यार :-

सब छोड़ने के बाद राजू अपनी मां को चिट्ठी लिखता है कि मैं घर आ गया हूं, जहां आप नहीं हो और आपकी याद आती है। चिट्ठी पढ़कर मां और मामा दोनों भावुक हो जाते हैं और अपने बेटे से मिलने के लिए चलते हैं।

'विजय आनंद' ने अपनी कलम और निर्देशन दोनों के साथ न्याय करते हुए बहुत ही सुंदर तरीके से बताया कि सब कुछ हारने के बाद इंसान के लिए सबसे सुरक्षित और अपना अधिकार जताने का ठिकाना मां ही होती है। बेटा चाहे जो भी हो मां का दिल सागर है जो आपकी सभी गलतियों को अपने अंदर समा लेने की ताकत रखता है मां बेटे के इस प्रेम को दर्शाने वाला ऐसा दृश्य जहां पर मां और बेटा सामने नहीं है लेकिन फिर भी दर्शक भावुक हुए बिना नहीं रह सकते। मां की गोद और आंचल एक ऐसा आसरा है, जहां हर दुख दर्द दूर हो जाते हैं, जिसके आंचल के साए में कोई भी बेटा हमेशा रहना चाहेगा। मां बेटे के प्रेम की स्क्रीन पर टाइमिंग जितनी कम है उतना ज्यादा प्रभावी प्रेम संदेश दर्शक के अंतकरण में उतरता है।

राजू के किए नकली हस्ताक्षर परेशानी लेकर आते है। रोजी भी नकली हस्ताक्षर के कारण को समझने की कोशिश ना करके राजू को गलत समझती है, जिसके चलते राजू को 2 साल की सजा मिलती है।

समाज प्रेम :-

फिल्म वर्तमान में लौटती है राजू गांव की भलाई के लिए सरकार से स्कूल, हस्पताल और डाकघर खुलवा देता है। राजू गांव का भला करने वाला महात्मा बन जाता है। गांव में अकाल की समस्या आ जाती है और लोग भूख के मारे आक्रोश से भर जाते है। इसी आक्रोश से भरे लोगों ने बनिए की दुकान को लूटा कर खून खराबा शुरू हो गया। बात जब राजू तक पहुंची और राजू ने झगड़ा रोकने के लिए जो संदेश दिया था, उस संदेश से गांव वालों में भ्रम फैल जाता है कि जब तक बारिश नहीं होगी स्वामी जी खाना नहीं खाएंगे। राजू की सुनाई कहानी को आधार बनाकर गांव वालों ने राजू में श्रद्धा दिखाई और राजू के सब सच बताने पर भी गांव वाले नहीं माने ऐसे में राजू गांव छोड़कर भागना भी चाहता है, जो आत्म प्रेम की झलक देता है, मगर परिस्थितियां ऐसा नहीं होने देती। राजू की ख्याति दूर तक जाती है, एक ऐसे स्वामी के रूप में जो बारिश के लिए 12 दिन का अनशन कर रहा था।

भूख इंसान को क्रोधी बना देती है, गांव वालों में भुखमरी की स्थिति से समझाया गया कि अपनों की जान और पेट की खातिर कोई भी खूनदृखराबे पर उतर सकता है। फिल्म का यह भाग जन धारणा को भली–भांति से परिभाषित करता है। इंसान खुद को जब भी मुसीबत में फंसा पाता है तो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भागने की होती है। प्रत्येक इंसान में हर घटना के दौरान अंतर्द्वंद होता है, यही फिल्म 'गाइड' की खूबसूरती भी है। इंसान के स्वभाव और शरीर के अंतर्द्वंद को बखूबी दिखाया गया जहां शरीर खाने के लिए तड़प रहा है और दिल लोगों की आस्था को तोड़ नहीं पा रहा। श्रामामेघ दे, पानी दे' को 'मन्ना डे' की आवाज से सजाया गया है जो बेहद भावनात्मक अनुभूति के दर्शन करवाता है।

गाइड राजू पर गांव वालों को विश्वास हो चला कि वही उनको इस अकाल से मुक्ति दिला सकते हैं। राजू की ख्याति फैलने के बाद मां, रोजी, गफ्फूर सभी धीरे–धीरे करके राजू के पास आ पहुंचते हैं, लेकिन राजू के अंदर जो तूफान और अंतर्द्वंद चलना शुरू हुआ कि एक तरफ स्वार्थी लालची गाइड राजू था और दूसरी तरफ आम जन का स्वामी जिसे वह प्रभु का बेटा समझ रहे थे।

कभी–कभी हम महान होते हैं और कभी–कभी महानता हम पर थोप दी जाती है यह वही दूसरे किस्म की महानता थी, जो राजू गाइड पर स्वामी या महात्मा के रूप में थोंपी जा चुकी थी। राजू के मन में अंतर्द्वंद चल रहा था, आत्म प्रेम के रूप में राजू गाइड और और मानव प्रेम के रूप में राजू स्वामी। जहां राजू गाइड आम आदमी की तरह महत्वाकांक्षी था, जबकि स्वामी के ऊपर परम–सत्य और अध्यात्म के रूप में सत्य को परिभाषित करने का एक सफल प्रयास दर्शकों को अंदर से हिला देता है।

आत्म प्रेम से परमात्मा प्रेम की अनुभूति :-

राजू की ख्याति बहुत दूर तक फैल जाती है और बहुत बड़ा जनसैलाब राजू के पास उम्र जाता है और जब एक अमेरिकी पत्रकार राजू से पूछती है कि क्या आप मानते हैं कि आपके भूखा रहने से बारिश होगी तो राजू स्वामी उत्तर देता है कि 'लोगों को मुझ में विश्वास है और अब मुझे इनके विश्वास पर विश्वास होने लगा है।'

इंसान के अंदर चल रहे अंतर्द्वंद को विजय आनंद ने इतनी सुंदरता से दर्शाया है कि जहां नकारात्मकता के प्रतीक के रूप में नीली रोशनी को एक काले साए के रूप में चित्रित किया है, वही सकारात्मकता को प्रकाशमान और उज्जवल रूप में चित्रित किया गया जहां राजू स्वामी देखना चाहता है कि 'इस दुनिया को चलाने वाला है या नहीं, नहीं है तो परवाह नहीं, जिंदगी रहे या मौत आए, और अगर है तो देखना यह है कि वह अपने मजबूर बंदों की सुनता है या नहीं। नास्तिकता और आस्तिकता को बेहद कम समय में भगवत प्रेम की तरफ मुड़ता पाया गया।

फिल्म के क्लाइमेक्स में राजू गाइड एक व्यक्ति के रूप में हार जाता है और मरने लगता है जबकि राजू स्वामी को नई जिंदगी और नई ऊर्जा का आभास होता है जहां अंतिम शब्द कुछ इस तरीके के हैं 'नासिक है, ना दुख है, ना दीन है, ना दुनिया, ना इंसान, ना भगवान, सिर्फ मैं हूं, मैं हूं, मैं हूं, सिर्फ३. मैं। अंत में हिरोकी मौत के साथ बारिश होती है। फिल्म में राजू गाइड से मानवता के आध्यात्मिक गाइड बनने का सफर बहुत प्यारे तरीके से दिखाया गया है।

फिल्म के अंत के बारे में आर के नारायण जी के देहांत पर 2001 में देव आनंद ने कहा कि 'अगर हम फिल्म के सिर्फ व्यवसायिक दृष्टिकोण को नजर अंदाज कर पाते तो यह फिल्म सिनेमा जगत के इतिहास में मील का पत्थर स्थापित करती तो लेखक और ज्यादा खुश इंसान होता।'[5]

सिनेमाई नजर से :-

स्वतंत्रता के बाद दो दशकों की फिल्मों को भारतीय सिनेमा का स्वर्णिम काल कहा जाता है। उस दौर में 'गुरुदत्त', 'राज कपूर' और 'महबूब खान' की फिल्मों का प्रभाव दर्शकों के सिर चढ़कर बोलता था। भारतीय सिनेमा के पहले शो मैन कहे जाने वाले 'राज कपूर' ने 'आवारा' (1951), 'श्री 420' (1955), 'जागते रहो' (1956) से सामाजिक हालात और समाज व्यवस्था के साथ एक आम इंसान की भावनाओं को, देश और समाज प्रेम पर आधारित 'जिस देश में गंगा बहती है' (1960) और त्रिकोणीय प्रेम पर आधारित 'संगम' (1964) जैसी फिल्में पर्दे पर सफलता से दिखा रहे थे। वही क्राइम थ्रीलर के उस्ताद कहे जाने वाले 'बाजी' (1951) और 'जाल' (1952) जैसी फिल्मों से अपने आपको साबित कर चुके 'गुरुदत्त' का झुकाव इंसान के अंतर्मन की उदासीनता और व्याकुलता को अपने फिल्म 'प्यासा' (1957), 'कागज के फूल' (1959) और 'साहब बीवी और गुलाम' (1962) के माध्यम से दिखा रहे थे। 'महबूब खान' रिश्तों पर आधारित फिल्मों के माहिर ने 'मदर इंडिया' (1957) में मां के संघर्ष की कहानी और 'सन ऑफ इंडिया' (1962) महत्वाकांक्षी इंसान की कहानी बताई। अब गौर करें तो उस दौर की फिल्मों ने प्रेम के किन्ही एक–दो पक्षों को मजबूती के साथ पकड़ के रखा। फिल्म 'गाइड' अपने दौर की बहुत आधुनिक फिल्म थी, जो नवकेतन फिल्म्स और देव आनंद की पहली रंगीन फिल्म भी रही। इस फिल्म के बहुत सारे कलाकारों के करियर को ऊंची उड़ान दी और एक अभूतपूर्व सिनेमा सबके सामने रखा। अमर दत्ता के 'द गाइड एडेप्टेशन फ्रॉम नवल टू फिल्म' के अनुसार शविजय आनंद की फिल्म सिनेमा के लिए मील का पत्थर साबित हुई, जिसने बिंदास तरीके से विवाहोत्तर संबंधों को उस समय के भारतीय समाज के सामने रखा, जिसे समाज कभी अपना नहीं सकता था और फिल्म उद्योग नायक और नायिका दोनों को नकारात्मक रूप में ले सकता था।'[6]

गाइड फिल्म में समय अंतराल को दिखाने के लिए एडिटिंग की विभिन्न तकनीक जैसे कट, डिजॉल्व, फेड इन और आउट से चीजें और समय अंतराल को समझने में मदद मिली। फिल्म के संगीत और सेट में भव्यता के दर्शन होते हैं। फिल्म का अभिनय और निर्देशन बहुत प्यारा और सुगम है। जो गाइड को एक बेहतरीन सिनेमा साबित करता है।

सभी पहलुओं पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि 13 नेशनल फिल्म अवार्ड और 14 फिल्म फेयर अवार्ड 1967 यूं ही नहीं दिए गए। पंकज शुक्ला द्वारा 6 फरवरी 2021 अमर उजाला के लेख आधी दुनिया में घूम कर देवानंद को मिली थी गाइड : 'विजय आनंद' निर्देशित गाइड फिल्म की पहली स्क्रीनिंग 6 फरवरी 1965 को अमेरिका में हुई ऑस्कर में भी पहुंचे मगर अंतिम सूची में जगह नहीं बना पाई। 1966 में रिलीज के बाद 1967 में फिल्मफेयर पुरस्कारों में 9 नामांकन पर 7 पुरस्कार जीतने में सफल रही।[7] फिल्म की कहानी का हर करैक्टर अपने पात्र के साथ ईमानदारी दर्शाता हुआ प्रतीत होता है, चाहे वह दोस्त है, एक गाइड है, एक मां है, एक मामा है या कोई दूसरा अन्य पहलू है तो भी। फिल्म में राजू, रोजी और मारको को तथाकथित हीरो, हिरोइन या विलेन नहीं बल्कि सभी पात्रों में तीनों गुणों का मेल सुंदरता से दिखाया है। किसी भी फिल्म की सफलता की बात होती है तो संवाद के ऊपर बात किए बिना हम नहीं रह सकते इस फिल्म के कुछ चर्चित संवाद रहे जैसे :–

'जब मतलब से प्यार होता है, तो प्यार से मतलब नहीं रहता।'
'काम उसका, नाम तेरा।'
'दुख वह अमृत है जिससे पाप धुलते हैं।'
'याद में नशा करता हूं और नशे में मैं याद करता हूं।'
'कहते हैं मुसीबत और जिंदगी का साथ चिता तक रहता है।'

निष्कर्ष :–

भारतीय सिनेमा के 100 वर्षो से भी अधिक के इतिहास पर नजर डालकर देखा जाए और उनमें से 10 प्रमुख फिल्मों का चयन करना हो तो 'गाइड' को छोड़ा नहीं जा सकता। जिसने 'देवानंद' और फिल्म से जुड़े अन्य कलाकारों के करियर को सफलता की ऊंचाइयों पर पहुंचाया और भारतीय सिनेमा में मील का पत्थर साबित हुई। 'महबूब खान', 'राज कपूर' और 'गुरूदत्त' जैसे फिल्मकार अपनी–अपनी फिल्मों से समाज के अलग–अलग पक्षों को केंद्रित कर फिल्म बना रहे थे। भारतीय सिनेमा के इस स्वर्णिम काल में सबकी अपनी महत्ता भी है, लेकिन फिर भी 'गाइड' फिल्म में आत्मप्रेम, मां और बेटे का प्रेम, दोस्त, प्रेमिका, समाज, आमजन और भगवत सभी तरह के प्रेम को दिखाने का मार्ग प्रशस्त किया है। फिल्म में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके जवाब भी मिलते हैं, जो हमें हमारे बारे में, हमारे सच के बारे में ज्ञान देते हैं और दर्शक के अंतर्मन में उतरते हैं। जीवन जीने के दृष्टिकोण और आत्ममंथन की प्रक्रिया को 'गाइड' फिल्म में जिस तरीके से दर्शाया और सजाया गया है। शायद ही हिंदी सिनेमा की किसी फिल्म में आत्ममंथन की प्रक्रिया का इतना सुंदर वर्णन हो। इस फिल्म का अनूठापन सभी को एक संदेश भी देता है कि 'गाइड' फिल्म को अपने जीवन के गाइड के रूप में चुना जा सकता है।

संदर्भ :–

1. Sharma, Priya Dutt. (20th March 2021). Ye hai feelgood hormone, jo hamesha aapko rakh sakta hai khush. India Times.
2. Bhattacharya, Anirudh. Vitthal, Balaji. (10th October 2018). Journey of The Guide. The Hindu.
3. Harrington, John. (1977). Film And / As Literature. New Jersey: Prentic Hall.
4. Saxena, Pragati. (26th September 2018). Prabhasakshi News.
5. The Sunday status man. (28th may 2001). Literary supplement. Kolkata.
6. Dutta, Amar. (January 2016). The Guide: Adaptation from Novel to Film. Postscriptum : An Interdisciplinary Journal of Literary Studies, Vol: 1. Pp 22-34.
7. Shukla, Pankaj. (6th February 2021). Aadhi dunia mein ghoom kar Dev Anand ko mili thi Guide. Amar Ujala.
8. Guide. Dir. Vijay Anand. Perf. Dev Anand, Waheeda Rehman, Kishor Sahu, Leela Chitnis, Gajanan Jagirder, Anwar Hussain. Navketan International, 1965. Film.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2021 Page No. : 197-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कृत 'आनन्द सतसई' में प्रेम के विविध स्वरूपों का चित्रण

–डॉ० नरेश कुमार सिहाग

विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक, हिन्दी–विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर।

सारांश :–

'प्रेम' का फलक बड़ा व्यापक होता है। प्रेम के भाव को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह अनुभूति विषयक भाव है, जिसके जागृत होने के पश्चात संसार की सभी वस्तुएँ अलौकिक दिव्य तथा चैतन्य प्रतिभासित होती हैं। प्रेम एक ऐसा भाव है, जिसमें एक वस्तु के प्रति आकर्षण या रति प्रेरक के रूप में कार्य करती है। प्रेम का सम्बंध केवल सुन्दर व्यक्ति या वस्तु से नहीं, अपितु प्रेमी जिस व्यक्ति या वस्तु से प्रेम करता है, वह वस्तु उसे संसार की सबसे प्रिय वस्तु लगती है।

प्रेम शब्द एक भाववाचक संज्ञा है। प्रेम शब्द का प्रयोग संस्कृत भाषा में नपुंसकलिंग तथा हिन्दी भाषा में दोनों लिंगों में किया जाता है। स्नेह, प्रीति, गुण, काम–वासना जनित रति, अनुराग, अनुरक्ति, लगाव, सम्बंध, भाव–साम्य आदि अर्थों के रूप में प्रेम शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु प्रेम शब्द का कोई भी पर्याय इसके सही स्वरूप को प्रकट करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि प्रेम शब्द का पर्याय स्वयं प्रेम ही है।

बीज शब्द :– प्रेम, सतसई, अनुराग, चेतन, मानस, राष्ट्र।

युवा साहित्यकार डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कृत 'आनन्द सतसई' आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक नूतन एवं नवीन रचना है। इस सतसई में डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने प्रेम के विवध स्वरूपों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में कुल सात सौ दोहे हैं, जिनमें से कुछ दोहे प्रेम की पृष्ठभूमि पर आधरित हैं। इस सतसई के दोहों में प्रेम के माँसल स्वरूप का चित्रण नहीं है, अपितु प्रेम के उस शाश्वत स्वरूप का चित्रण है, जो कभी भी समाप्त नहीं होता है। प्रेम के माँसल स्वरूप के तेग की धार को समय के थपेड़ों की आँधियाँ कुंद कर देती हैं। कोई शारीरिक विकार आ जाने पर भी माँसल प्रेम के भाव में कमी आ जाती है, परन्तु कविवर डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने प्रेम के जिस स्वरूप का चित्रण किया है, उसकी धारा का प्रवाह कभी भी मन्द नहीं होता, अपितु प्रेम की यह धारा उत्तरोत्तर अधिक वेगवती होकर प्रवाहित होती है।

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि जिस मानव की चेतना का विकास हो चुका है, जिस मानव की चेतना जाति–पाति, धर्म, राष्ट्र आदि की सीमाओं को पार करके विस्तृत फलक पर व्याप्त हो चुकी है, वह मनुष्य सभी प्रकार के बंधनों को तोड़कर प्रेम–प्यार का उपहार ही बाँटता हैं। जिस मानव की चेतना में प्रेम का तत्त्व भर जाता है, वह मानव विध्वंस की बात नहीं करता, अपितु वह व्यक्ति सर्जन तथा निर्माण की बात करता है।

नर के चेतन का हुआ, जब–जब भी विस्तार।
प्रेम–प्यार ही बाँटता, दिया प्रेम उपहार।।[1]

जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम का वास है, उस व्यक्ति का जीवन बड़ा व्यवस्थित होता है। प्रेम से भरे हुए हृदय वाला प्राणी सभी स्थितियों में प्रेम–तत्त्व को खोज लेता है, जिसके कारण वह व्यक्ति सुखपर्वक अपना जीवन निर्वाह करता है–

जो मानुस सब से रखे, प्रेम भाव का मेल।
उसके जीवन में नहीं, मचती रेलम पेल।।[2]

जैसे–जैसे व्यक्ति की चेतना का विकास होता जाता है, वैसे–वैसे मानव में प्रेम भाव का विकास होता जाता है। इस प्रकार का व्यक्ति संसार के जड़ तथा चेतन वस्तुओं से प्रेम करने लगता है, उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है, कि संसार का कोई भी व्यक्ति उसका जन्मजात शत्रु नहीं है, अपितु मानव ने अपनी अन्तरात्मा में वैर–भाव का निवास स्थल बना रखा है। जिस दिन मानव को इस अखण्ड सत्य का ज्ञान हो जाता है, उसी दिन मानव की वैर–भावना समाप्त हो जाती है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' इसी भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं–

तेरा दुश्मन कौन है, तेरा खुद से बैर।
खुद का मानस देखिये, यही बना है गैर।।[3]

प्रेम की अगन की तपन भी सुखदायक होती है। जैसे ज्योति की लौ पर कोई पतंगा अपनी जान को न्योछावर कर देता है, उसी प्रकार मानव भी अपने प्राणों का लोभ विस्मृत करके, अपने प्रेमी के लिए अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है। मानव की तुलना एक पतंगे से करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि जिस प्रकार किसी दीपक की लौ में जलकर कोई पतंगा अपनी जान दे देता है, उसी प्रकार प्रेम से भरे हुए हृदय वाला व्यक्ति अपने प्राणों की आहूति दे देता है–

प्रेम–अगन में जल रहा, मानव शलभ समान।
मोह त्यागकर प्राण का, देता अपनी जान।।[4]

प्रेम ऐसा भाव है, जो प्रेमी के हृदय–उत्स से लगातार बहता रहता है। इस स्रोत की धारा कभी भी मन्द नहीं होती है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' प्रेम की तुलना एक नदी से करते हुए कहते हैं कि प्रेम रूपी नदी निरन्तर बहती रहती है। जहाँ–जहाँ इस नदी के प्रवाह में कमी आती है, वहीं पर खार (खटास) बड़ जाती है–

प्रेम नदी बहती रहती, रुकती ना ये धार।
जहाँ–जहाँ ये रुक गई, वहाँ–वहाँ हो खार।।[5]

प्रेम की रीति बड़ी अनुपम है। प्रेम की धारा में शीतलता के साथ–साथ अग्नि–सा तेज विद्यमान है। प्रेम के इसी स्वरूप का चित्रण करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि प्रेम की नदी में कुशल से कुशल तैराक भी बह जाते हैं। यह नदी आग से परिपूर्ण है, जो भी व्यक्ति इस प्रेम–नदी में गोता लगाता है, उसका स्वत्व नष्ट हो जाता है।

प्रेम नदी में बहे गये, बड़े कुशल तैराक।
इस नदिया में आग है, हो जाओगे खाक।।[6]

इस संसार में प्रेम की धारा अनेक रूपों में बहती है। यह प्रेम जब माता के हृदय से उमड़ता है, तो ममत्व बन जाता है। पिता के हृदय से उमड़ता है, तो वात्सल्य का रूप धारण कर लेता है। भक्त के हृदय में उमड़ता है, तो ईश–विषयक रति बन जाता है। गुरु के हृदय में प्रकट होता है, तो शिष्य–विषयक स्नेह बन जाता है। प्रेमी के हृदय से उमड़ता है, तो रति का रूप धारण कर लेता है बहन के हृदय में प्रकट होता है, तो स्नेह तथा अपनत्व का रूप धारण कर लेता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' की 'आनन्द सतसई' में प्रेम के इन सभी स्वरूपों का चित्रण भी किया है। माता के प्रेम का चित्रण करते हुए वे कहते हैं–

सच्चे–सच्चे प्रेम का, माता ही प्रतिरूप।
झूठ रूप ना धारता, मात का दिव्य रूप।।[7]

माता के प्रेम के साथ ही पिता का प्रेम–भाव भी विशेष होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में उसका पिता ही सर्वाधिक महत्व रखता है। परन्तु पिता का प्रेम ऊपर से दिखाई नहीं देता है। संसार के लोग पिता के प्रेम को शुष्क–प्रेम मानते हैं, किन्तु एक सच्चाई यह भी है कि पिता अपने प्रेम को शब्दों के माध्यम से प्रकट नहीं करता, परन्तु वह अपनी संतति को अपनी जान से भी बढ़कर चाहता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने पिता के प्रेम को प्रकट करते हुए कहा है–

बच्चों का मुख देखकर, बढ़े पिता का राग।
अपने दुखड़े भूलता, भूले अपने दाग।।
अपनी बाँहों में झुला, पिता झुलाते झूल।
याद रखो ये झूलना, ना जाता तू भूल।।[8]

हमारे जीवन में माता–पिता के अतिरिक्त गुरुओं का स्थान भी अति महत्वपूर्ण माना गया है। प्रत्येक गुरु यह चाहता है कि उसका शिष्य उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचे। अपने शिष्य की सफलता से सर्वाधिक खुशी उसके गुरुवर को ही होती है। गुरु तथा शिष्य का प्रेम अनिर्वचनीय होता है। इस प्रेम को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने गुरुओं के प्रेम को बरसात के समान माना है, जिस प्रकार बादलों के बरसने पर सब–कुछ निर्मल तथा शीतल हो जाता है, उसी प्रकार गुरुओं का प्रेम भी निर्मल तथा शीतल करने वाला होता है–

जैसे–जैसे बढ़ रहा, मेरे गुरु का नेह।
वैसे–वैसे भाव का, बरस रहा है मेह।।[9]

प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रेम भाव केवल सम्बंधी जनों तक सीमित नहीं रहता है, इसका फैलाव बड़ा विशद एवं व्यापक है। प्रेम कभी भी संकीर्णता को स्वीकार नहीं करता है। जाति, धर्म, राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण करने में यदि कोई सक्षम है, तो वह प्रेम का भाव ही है। प्रेम किसी भी रूढ़ि तथा परम्परा का संवाहक नहीं है। प्रेम मानव–मानव के भेद को स्वीकार नहीं करता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि अज्ञान के कारण ही मानव–मानव में विभेद नजर आता है। जब मानव की दृष्टि वैश्विक स्वरूप को धारण कर लेती है, तो उसका प्रेम भाव बढ़ जाता है। इस स्थिति में मानव की संकीर्णताएँ समाप्त हो जाती हैं तथा वह मानव मात्र से प्रेम करने लगता है।

सारी दुनिया एक है, सारे मानव एक।
अज्ञानों के भाव से, धरते रूप अनेक।।[10]

वर्तमान समाज के मानवीय–मूल्य बड़ी तेजी से विघटित हो रहे हैं। आज के युग में प्रेम–प्यार के भावों को उनका उचित स्थान नहीं मिल पा रहा है। यदि कोई व्यक्ति निस्वार्थ प्रेम की भावना से भरा हुआ है, तो उस व्यक्ति को भी स्वार्थी मान लिया जाता है। प्राचीन काल में सम्बंधों का आधार 'प्रेम–भाव' होता था, परन्तु वर्तमान समय में सभी प्रकार के सम्बंधों के मूल में 'अर्थ' या 'धन' ही कार्य करता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने प्रेम–विषयक इस विसंगति को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। वे कहते हैं कि–

प्रेम–प्यार की बात को, भूला है जग आज।
अपने धन पर कर रहा, फूल–फूल कर नाज।।[11]

निष्कर्ष :-

हम कह सकते है कि प्रेम एक ऐसा भाव है, जो मानव के हृदय में उमड़कर, मानवीय हृदय को शीतलता तथा निर्मलता प्रदान करके, सारे संसार को अपने ही शीतल भावों में रमा लेना चाहता है। प्रेम असीम है। अतः इसे सीमाओं

में नहीं बाँधा जा सकता। प्रेम किसी भी बंधन को स्वीकार नहीं करता है। प्रेम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रेम शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति का विषय न होकर हृदय में स्थित अनुभूति का नाम है।

प्रेम की अनुभूति सभी को होती है। मानवेतर प्राणी भी प्रेम की इस अनुभूति को समझते हैं। प्रेम की यह अनुभूति ही मानवीय सम्बंधों का आधार है। यह अनुभूति जितनी पुष्ट होगी, वह सम्बंध भी उतना ही मजबूत होगा।

प्रेम का भाव निस्वार्थ भाव है। जहाँ पर स्वार्थ का भाव आ जाता है, वहाँ प्रेम का निवास नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रेम का भाव किसी औपचारिकता को स्वीकार नहीं करता है, यह नैसर्गिक भावों को ही मान्यता देता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने 'आनन्द सतसई' नामक पुस्तक में प्रेम के सब स्वरूपों के चित्रण के साथ–साथ प्रेम की भावुक स्थितियों तथा सम्बंधों का चित्रण भी किया है। प्रेम के अनेक स्वरूपों का चित्रण करते हुए उसके आदर्श स्वरूप का चित्रण ही बहुतायत में किया गया है। इनके प्रेम चित्रण की अन्यतम विशेषता यह है कि इनका प्रेम 'सात्त्विक प्रेम' की अनुभूतियों पर आधारित है। इनके प्रेम चित्रण में सभी प्रकार की कृत्रिमताओं तथा बनावटी मूल्यों से दूर रहने की माँग की गई है। अतः डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' का प्रेम विषयक चित्रण सार्थक, भावुक, तथा सात्त्विक प्रेम–सम्बंधों की वकालत करता है।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1. डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', आनन्द सतसई, समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, 2021, पृष्ठ–19
2. वही, पृष्ठ–42
3. वही, पृष्ठ–41
4. वही, पृष्ठ–59
5. वही, पृष्ठ–78
6. वही, पृष्ठ–100
7. वही, पृष्ठ–87
8. वही, पृष्ठ–92
9. वही, पृष्ठ–97
10. वही, पृष्ठ–53
11. वही, पृष्ठ–15